* उपहार *

समर्पण

जिन्हें हम बड़े प्रेमकी दृष्टिसे देखते हैं,
जिन्हें हम भारतके भविष्यके विधाता और
विधात्री समझते हैं, जिन्हें हम सत्यसंध
और नीति-कुशल देखना चाहते हैं,
जिन्हें हम भारतका प्राचीन गौरव
जताना चाहते हैं,
और
जिन्हें हम सच्चा भारतवासी बनाना चाहते हैं,
उन्हीं
बालकों और बालिकाओं
❀ के ❀
कोमल करों में
('निज धर्मपत्नी 'बुन्देलबाला' के स्मारक-स्वरूप)
यह प्रेमोपहार
सप्रेम
समर्पित है।

—भगवानदीन।

क्या आप जानते हैं, कि यह कविताएँ कैसे बनीं ? सुनिये। जब मैं छतरपुरके हाई-स्कूलमें सेकेण्ड मास्टर था, तब एक दिन मेरी द्वितीय धर्म-पत्नीने (जिसे आप शायद 'बुन्देलाबाला' के नामसे जानते हों; क्योंकि वह स्वयं इस नामसे कविता करती थी और एक विदुषी तथा काव्य प्रेमिका स्त्री थी) मुझसे प्रार्थना की, कि समयानुकूल नये ढंगकी कुछ ऐसी कविताएँ बननी चाहिये, जिनके पढ़नेसे बालक-बालिकाओंपर प्राचीन भारतका वीरत्व प्रकट होजाये। साथ ही (हँसते-हुए) यह भी कहा था, कि यदि आप ऐसी कविताओंके बनाने में संकोच करेंगे, तो मैं समझूँगी कि आपने अपनी माताके गौरवको नष्ट करना विचारा है।

उस प्रेममयी विदुषी बालाका ऐसा व्यंगपूर्ण कथन मुझसे अस्वीकार न किया जा सका और मैंने फौरन लिखना आरम्भ कर दिया। चूंकि मैं 'लक्ष्मी' नामकी मासिक पत्रिकाका सम्पादक भी था, अतः वे कविताएँ क्रमशः उसी पत्रिकामें निकलती रहीं। 'वीर प्रताप', 'वीर क्षत्राणी' और 'वीर बालक' नामकी कविताएँ पुस्तकाकार अलग-अलग भी छप गयीं और बुन्देलाबालाने अपनी आंखो देख भी लीं। तदनन्तर १६२० ई० में उक्त बालाजीका देहान्त हो गया। बहुत दिनों तक मैंने उस प्रकार की कविताएं लिखना प्रायः बन्द ही कर दिया; पर कुछ मित्रोंके अनुरोधसे तथा बालाजीकी आत्माको सुख और शान्ति प्रदानके हेतु मैंने—'वीर-माता' तथा 'वीर पत्नी' नामक दो पुस्तकें और तैयार कीं।

अब इन्हीं पाँचों पुस्तकोंको एकत्र करके और 'वीर-पंचरत्न' नाम देकर कितनी ही पुस्तकोंके लेखक और प्रकाशक, सुप्रसिद्ध 'आर० एल० बर्म्मन एण्ड कम्पनी' तथा 'बर्म्मन प्रेस' के मालिक, हिन्दी-हितैषी बाबू रामलाल वर्माको इसके प्रकाशनका कुल अधिकार सदैवके लिये दे दिया है।

ये कविताएं कैसी हैं, यह बताना मेरा काम नहीं है। मैं केवल इतना ही कहता हूं कि इस पुस्तकको पढ़कर यदि एक भी भारतीय बालक वा बालिका सुपथपर चलकर भारतके गौरवका कारण बन सके, तो आशा है, कि स्वर्गीय बुन्देलाबालाकी आत्माको शान्ति प्राप्त होगी और मैं भी अपने परिश्रमको सफल समझूंगा।

नागरी-प्रचारिणी सभा,
काशी।

भगवानदीन,
'लक्ष्मी' सम्पादक।

धन्यवाद

हमारे यहांसे 'रमणी-रत्न-माला' नामकी स्त्रियोंके उपयुक्त एक सर्वाङ्ग-सुन्दर सचित्र पुस्तकमाला आज कई वर्षोंसे निकल रही है, जिसमें अबतक १२ ग्रन्थ-रत्न प्रकाशित होकर हिन्दी साहित्यमें युगान्तर उपस्थित कर चुके हैं। हिन्दी-समाचार पत्रोंने मुक्त-कण्ठसे इन ग्रन्थोंकी प्रशंसा की है और हिन्दी-प्रेमियोंने इन्हें अपनाकर हमें परम उत्साहित किया है. परन्तु "रमणी-रत्न-माला" की पुस्तकोंसे जितना लाभ स्त्रियोंको हुआ है, उतना पुरुषोंको नहीं। इसी अभावकी पूर्तिके लिये बहुत दिनोसे हमारा विचार एक ऐसी 'ग्रन्थमाला' निकालनेका हो रहा था, जिसमें उत्तमोत्तम सर्वोपयोगी 'आदर्श ग्रन्थ' निकाले जा सकें और जिससे बालक-बालिका, स्त्री और पुरुष बूढ़े-बच्चे सभी समान भावसे आदर्श शिक्षा प्राप्त कर सकें। परन्तु उस 'ग्रन्थमाला' के उपयुक्त कोई अच्छा ग्रन्थ न मिलनेके कारण हमें बहुत दिनो तक अपना इरादा मन ही मन दबा रखना पड़ा। अन्तमें लक्ष्मी-सम्पादक श्रीयुक्त लाला भगवानदीनका लिखा यह 'वीरपंचरत्न' पसन्द आया और हमने इसे सर्वाङ्ग सुन्दर पाकर अपनी नवप्रकाशित "अदर्श-ग्रन्थ-माला" का पहला ग्रन्थ बनाया। परन्तु उस समय हमें स्वप्नमें भी ऐसी आशा न थी, कि हिन्दी संसार इसका इतना आदर करेगा। यही कारण था, कि छपाई, सफाई और चित्रों आदिकी बहुलता रहते हुए भी, इसके प्रथम संस्करणकी केवल १००० प्रतियाँ छापी गई परन्तु पुस्तक छपते न छपते समय ने पलटा खाया, भारत की मोह-निद्रा टूट गयी और चारों ओर लुप्तप्राय प्राचिन कीर्तिकी खोज होने लगी। बस फिर क्या था? डूबतेको तीनकेका सहारा बहुत होता है; हिन्दी संसारने इस ग्रन्थ रत्नको सब तरहसे अपने अनुकूल पाया और ईश्वरकी कृपासे इसकी १००० प्रतियां ६ महीनेके भीतरही हाथोंहाथ बिक गयीं और हजारों आर्डर काटने पड़े।

इस स्थानपर हम 'वीर-पञ्चरत्न' के रचयिता लाला भगवानदीनको हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने यह पुस्तक देकर हमारा उत्साह बढ़ाया। साथ ही हम उन परम कृपालु हिन्दी-पत्र-सम्पादकों और ग्राहक-अनुग्राहकोंको धन्यवाद देना भी अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं, जिन्होंने इसके प्रथम संस्करण की प्रचुर प्रशंसा और अत्यन्त आदर कर हमें चिर कृतज्ञ बना लिया है। पाठकोंके अवलोकनार्थ हमने इसी ग्रन्थमें अन्यत्र प्रसिद्ध पत्रों की सम्मतियां संक्षिप्त रूपसे प्रकाशित कर दी हैं।

संवत् १९७८ में 'वीर-पञ्चरत्न' के दूसरे संस्करणकी ३००० प्रतियां छापी गयीं और वे दो ही वर्षमें हाथों-हाथ बिक गयीं। फिर कई महीनों तक 'वीर पञ्चरत्न' का बाजारमें मिलना दुर्लभ हो गया और प्रतिदिन सैकड़ों आर्डर काटने पड़े। अतएव हमने इसका तीसरा संस्करण भी हिन्दी जनताके सामने ला रखा। यह संस्करण भी तीन हजारका था। पुस्तककी रोचकताके कारण तीसरा संस्करण भी कुछ ही समयके अन्दर ख़तम हो गया। तीसरे संस्करण में टाइप हेडिंगोंकी जगह सुन्दर-सुन्दर, ब्लाक इत्यादि तो लगा ही दिये गये थे और कागज़ भी पहले संस्करणों की अपेक्षा अच्छा लगाया गया था। इसके बाद ही तीसरे, चौथे और पांचवे संस्करणकी ८००० प्रतियां भी हाथों हाथ बिक गयीं। आज इसका छठा संस्करण आपके सामने उपस्थित है, आशा है पाठक इसे भी और संस्करणोंकी भांति ही अपनायेंगे। इस महंगीके समयमें जबकि न सिर्फ कागजका ही दाम दुगना हो गया है वरन् और सब सामानोंके भी दाम बढ़ गये हैं, हमने पुस्तक की सजावटमें किसी भी प्रकारकी कमी नहीं की है।

अन्तमें हम मध्यप्रदेश, युक्तप्रदेश, बिहार और पञ्जाबके शिक्षा-विभागोंको भी धन्यवाद देना नहीं भूल सकते, जिन्होंने इस पुस्तकको अपने स्कूलोंमें पारितोषिक बांटने तथा स्कूली लाइब्रेरियोंमें रखनेके लिये निर्वाचितकर हमें अत्यन्त उत्साहित किया है। अब युक्त प्रदेशके कितने ही स्कूलोंमें यह ग्रन्थ कोर्सकी भांति पढ़ाया भी जाने लगा है।

—प्रकाशक।

समालोचना

इस वीर-पंचरत्नकी प्रशंसामें बड़े-बड़े नामी समाचार-पत्रों ने क्या लिखा है, वह हम संक्षिप्त रूपसे नीचे उद्धृत किये देते हैं, जिसे पढ़कर आप स्वयं समझ लेंगे, कि वास्तवमें यह कैसी अपूर्व पुस्तक है:—

'हिन्दी-केसरी' अपने ११ मई, १९२० के अंकमें लिखता है :— 'वीर-रसकी कविता लिखनेमें सिद्ध-हस्त लाला भगवानदीनजी-रचित कविताओंका यह संग्रह है। इस वीर-पंचरत्नमें पांच विभाग हैं। पहलेमें हिन्दू-पति महाराणा प्रतापकी हल्दीघाटीकी लड़ाईका वर्णन है। दूसरेमें राम-लक्ष्मण, कृष्ण-बलराम, लव-कुश, अभिमन्यु, बभ्रुवाहन, आल्हा-ऊदल, और रणजीतसिंह आदिकी कथा वीर-बालकके नामसे है। तीसरे में तारा, पन्ना, कलावती, वीराबाई, कर्मादेवी, रूपादेवी, किरणदेवी, वीरमती, दुर्गावती, आदि वीर-क्षत्राणियोंकी वीरता वर्णित है। चौथेमें सुमित्रा, कुन्ती, अलूपी, रेणुका, बिन्दुला आदि वीर-माताओंकी कीर्त्ति है। पांचवेंमें रायमती, जसमा, नीलदेवी और कमला नामकी वीर-पत्नियों का हाल है। सुन्दर सुन्दर २१ चित्र हैं।...कवितायें कड़खा-छन्दमें बड़ी ओजस्विनी हैं। पढ़नेसे नसें फड़क उठती हैं और शरीरमें वीरता का संचार हो जाता है। जिस कविताको पढ़ते हैं, उसका दृश्य आंखोंके सामने नाचने लगता है। प्रत्येक स्त्री और पुरुषको यह पुस्तक लेकर पढ़नी और सुननी चाहिये। बालकों और बालिकाओंके लिये तो यह पाठ्यपुस्तक ही नहीं, नित्य पाठ्य बनाने योग्य है।......हम लोगोंमें और ख़ासकर स्त्रियोंमें—वीरताका फिरसे संचार करनेके लिये इस पुस्तकका जितना ही अधिक प्रचार हो, उतना ही अच्छा है। जैसी कवितायें मनोहारिणी हैं, वैसे ही चित्र भी बड़े सुन्दर, वीरताद्योतक और भावपूर्ण हैं। हम ऐसी उत्तम पुस्तक, ऐसी सज-धज और खूबसूरतीके साथ प्रकाशित करनेके लिये श्रीयुत बाबू रामलाल वर्म्माको बधाई देते हैं।'

हिन्दी-वङ्गवासी' अपने १७ मई, १९२० के अंकमें लिखता है—

'बड़ी आनन्दकी बात है, कि कागज तथा छपाईके सभी सामानोंकी ऐसी भीषण मंहगीमें भी कलकत्तेकी सुप्रसिद्ध 'आर० एल० बर्म्मन एण्ड कम्पनी' के मालिक श्रीयुत बाबू रामलाल वर्म्मा महाशयका ध्यान रंग-बिरंगे नयनाभिराम चित्रोंसे सुसज्जित हिन्दी-पुस्तकें प्रकाशित कर हिन्दी साहित्यको समलंकृत करनेकी ओर आकर्षित हुआ है।... अबसे पहले आपने अपने यहांकी प्रकाशित 'सावित्री-सत्यवान्' तथा 'नलदमयन्ती' नाम्नी पुस्तकोंकी अपूर्व सजावटसे हिन्दी-साहित्यको मुग्धकर दिया है। प्रस्तुत पुस्तक (वीर-पञ्चरत्न) भी आप ही द्वारा प्रकाशित हुई है। इसके रचयिता हैं, हिन्दी-संसारके सुपरिचित श्रीयुक्त लाला भगवानदीन महाशय। यह पुस्तक खड़ी बोलीकी कवितामें लिखी गयी है। विषय-संकलन इस प्रकार किया गया है—वीर-प्रताप, वीर-बालक, वीर-क्षत्राणी, वीर-माता तथा वीर-पत्नी और येही 'पञ्चरत्न' के नामसे अभिहित किये गये हैं।......निःसन्देह इन भारतीय वीर-माताओं तथा वीर-पत्नियोंके यश-सूर्य्यका ही यह प्रताप है, कि इस अधःपतित दशामें भी भारतका पूर्व-गौरव अक्षुण्ण है। यह पुस्तक २१ चित्रोंसे विभूषित है और सभी चित्र अतीव उत्कृष्ठ, भावपूर्ण तथा मनोमुग्धकर हैं। इनमें बहुतेरे चित्र रंगीन हैं और कई बहुरंगे तथा दोरंगे हैं। कहें, तो कह सकते हैं, कि इस प्रकार धन व्यय कर इस ढंगसे, इस उत्तमता तथा मनोहारताके साथ पुस्तक-प्रकाशनका श्रेय हिन्दी-संसारमें सबसे पहले श्रीयुत रामलाल वर्म्मा महाशयको ही है।......छपाई-सफाईके सम्बन्धमें इतना ही कह देना पर्याप्त होगा, कि यह पुस्तक सुप्रसिद्ध 'बर्म्मन प्रेस' की छपी हुई है।'

'ब्राह्मण-सर्वस्व' अपने फाल्गुन, सम्वत् १९७६ के अंकमें लिखता है—'वीर-पंचरत्न' लक्ष्मी-सम्पादक, लाला भगवानदीनकी लिखी हुई वीर-रसपूर्ण कविताओंका सुन्दर संग्रह है। इसमें कितनी ही कवितायें ऐसी हैं, जिन्हें पढ़नेसे हृदयमें वीरताका आवेश हो जाता है और साथ ही प्राचीन वीर-नारियोंके वीरत्व-पूर्ण वृत्तान्त पढ़कर हृदय उनकी

तरफ स्वतः आकर्षित हो जाता है।......इसमें कोई सन्देह नहीं, कि प्रस्तुत पुस्तक कविताकी उत्तमता और सुन्दर चित्रोंकी अधिकताके विचारसे हिन्दीकी उत्तम पुस्तकोंमें से एक है। हिन्दी-साहित्यमें इस प्रकारकी उत्तम पुस्तके प्रकाशित करनेके कारण 'आर० एल० बर्म्मन एण्ड कम्पनी' के अध्यक्ष बाबू रामलाल वार्म्मा हिन्दी-प्रेमियोंके धन्य-वादार्ह हैं। आशा है, कि हिन्दी-हितैषी इस पुस्तकका संग्रह कर उनके उत्साहको बढ़ायेंगे।'

'पाटलीपुत्र' अपने २८ मई, १९२० के अंकमें लिखता है— 'लक्ष्मी-सम्पादक लाला भगवानदीनजी हिन्दीके एक प्रतिभाशाली और विद्वान् कवि हैं। आपकी वीर-रसात्मक कवितायें आपकी सम्पादित लक्ष्मी-पत्रिकामें पहले प्रकाशित हो चुकी हैं—अब उन सभी कविताओं को 'वीर-पंचरत्न' नाम देकर नये रङ्ग ढङ्गसे, बड़े ठाट-बाट द्वारा कल-कत्तेकी प्रसिद्ध 'आर० एल० बर्म्मन एण्ड कम्पनी'ने प्रकाशित किया है; ये कवितायें हिन्दी-संसारमें प्रचुर प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है। इसलिये इस पुस्तकके सम्बन्धमें लालाजी की कवितायें है, यही कह देना काफ़ी होगा; पर बहिरङ्गके विषयमें हमारा यह कहना है, कि अब तक ऐसी सजावटके साथ किसी दूसरी कम्पनीने हिन्दीकी पुस्तकें नहीं प्रकाशित कीं। हम इसके लिये बाबू रामलाल वर्म्माको बधाई देते हैं और इस वीर-प्रधान युगमें इस पुस्तकका घर-घर प्रचार चाहते हैं।

'दैनिक भारतमित्र' अपने १३ जुलाई, १९२० के अंकमें लिखता है—'वीर-पंचरत्न' लक्ष्मी-सम्पादक लाला भगवानदीनजी के लिखे हुए २० चरित काव्यका यह संग्रह है। पुस्तक पांच खण्डोंमें विभक्त है। प्रत्येक खण्डोंको रत्नकी संज्ञा दी गई है। पहले रत्न वीर-प्रतापमें, वीर-शीरोमणि, स्वदेश-वत्सल महाराणा प्रतापसिंहकी वीरता, धीरता, गम्भीरता और स्वदेश-हितैषीका बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा गया है। हल्दीघाटीकी इतिहास प्रसिद्ध लड़ाईका दृश्य दिखाना इस छोटेसे काव्यका प्रधान उद्देश्य है; दूसरे रत्नमें, राम लक्ष्मण, राम-कृष्ण लव-कुश, अभिमन्यु, आल्हा ऊदल आदि अनेक ऐतिहासिक और

पौराणिक वीर बालकों की वीरताका वर्णन है। शेष रत्नोंमें तारा, पद्मा, कलावती, वीराबाई, सुमित्रा, कुन्ती तथा भारतकी अन्यान्य कर्त्तव्य-परायणा, आदर्श आर्य-ललनाओंके चरित्र वर्णित हैं। पुस्तक सबके पढ़ने योग्य है। भाषा सरल और सुन्दर है।...आरम्भमें महा-राणा प्रतापसिंहका बड़ा ही अपूर्व तिनरंगा चित्र है। साथ ही भिन्न-भिन्न चरित्रोंके सम्बन्धमें २१ इकरंगे और दोरंगे चित्र भी दिये हैं इतनी चित्रपूर्ण पुस्तक हिन्दीमें अबतक देखनेमे नहीं आयी......'

'स्वार्थ' मासिक पत्र, अपने आषाढ़, सम्वत् १९७७ के अंकमें लिखता है—'वीर-पंचरत्न। यह रचना हिन्दीके सुपरिचित कवि दीनजी की है। यह वीर-रस-प्रधान चरित-काव्य है। वीर-प्रताप, वीर-बालक, वीर-क्षत्राणी, वीर-माता और वीर-पत्नी इस तरह पुस्तकमें पांच रत्न हैं। कुल २६ वीर-चरितोंपर कविता रची गयी है। पुस्तकका उद्देश्य छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं पर भारतका प्राचीन वीरत्व प्रकट करना है। बालकोपयोगी साहित्यमें यह पुस्तक अपने ढंगकी पहली है। अतएव रचयिता और प्रकाशक दोनों धन्यवादके पात्र हैं।......पुस्तकमें २१ चित्र भी हैं......।'

'शिक्षा' अपने ९ जुलाई १९२० के अङ्कमें लिखती है—'वीर-पंचरत्न। हिन्दी भाषा कविताओंके लिये बहुत दिनोंसे प्रसिद्ध है; पर लोग कहा करते हैं, कि इसमें वीर-रसकी कवितायें बहुत कम हैं। बड़े हर्षकी बात है, कि यह पुस्तक वीर-रसकी है और श्रीयुत लाला भग-वानदीनकी लिखी है। उक्त लाला जी वीर-रसके पद्य लिखनेमें बड़े सिद्ध-हस्त हैं। उनके आधार भारतके वीर हैं, जिनकी बातें पुराण, इति-हास तथा भाटोंकी उक्तियों में हैं। वीरोंमें बालक, युवा, वृद्ध तथा महिलायें—सबका चुनाव हुआ है। इसकी एक-एक कविता कायर तथा रोगीकी नसोंमें उत्साह और आत्म-प्रतिष्ठा उत्पन्न करनेवाली है। इसमें बीसों चित्र हैं। छपाई अच्छी है। भाषा मुहाविरेदार तथा सरल है। यदि हिन्दुओंका राजत्व-काल होता, तो कई राजाओंसे प्रकाशक तथा लेखकको 'सिरोपाव' तथा जागीर पुरस्कारमें मिलती।'

चित्र-सूची

विषय-सूची

दूसरा रत्न

तीसरा रत्न

चौथा रत्न

पाँचवाँ रत्न

सब वीर किया करते हैं अभिमान क़लमका।
वीरोंका सुयश-गान है, अभिमान क़लमका॥

भगवानदीन

निज देशकी, निज जातिकी, निज धर्म्मकी मर्य्याद ।
रक्खे, उसे कवि 'दीन' का , सौ बार है जयवाद ॥

भगवानदीन ।

* श्रीः *

सकल-काम-प्रद सिया-राम-पद युग कर जोड़ मनाता हूं।
हिन्दू-पति राना "प्रताप" का वीर-सुयश कुछ गाता हूं॥
हिन्द-देशके रजपूतोंका सच्चा धर्म्म बताता हूं।
केवल तीन शतक पीछेका युद्ध-दृश्य दिखलाता हूं॥ १॥

जै रामकी, जै धर्म्मकी, जै देशकी बोलो।
जै सत्यकी, जै भक्तकी, जै वीरकी कह दो॥
जै उसकी जो पुरुषाओंकी इज्ज़तपै डटा हो।
जै उसकी भी जो देशकी सेवामें मिटा हो॥

निज देशकी, निज जातिकी, निज धर्म्मकी मर्य्याद।
रक्खै, उसे कवि "दीन" का सौ बार है जयवाद॥ २॥

हर चार तरफ हिन्दमें मुग़लोंका था दौरा।
अकबरके विजय-वादका धुक्कारता धौंसा॥
फहराती हर इक कोट पै अकबरको पताका।
और शोर था 'अल्लाह व अकबर' की सदा १) का॥

क्षत्री जो थे सब पिटके निछत्री से बने थे।
बेटी व बहिन ब्याहके मुग़लोंमें सने थे॥ ३॥

(१. सदा—निनाद।

बेटी व बहिन देके कमा खाते थे रोटी!
शरमाते न थे करनेमे करतूत ये खोटी!!
साले व ससुर होनेको अभिलाष थी मोटी।
तज दीनको दुनियाके लिये देते थे चोटी!!
यह हाल था उस वक्तके महिपालवरोंका।
कहना जिसे लजवाना है खुद अपने घरोंका॥४॥

थी फूट यहाँतक, कि जुड़ैले सगे भाई।
रखते थे दिलों मैल, निरखते थे सफ़ाई॥
बूँदीके, बिकानेरके, अम्बरके सवाई।
मुगलोंके लिये मारते अपने सगे भाई!!
राणाके सगे भाई सकतसिंह व सागर।
भाईको दगा देके मिले शत्रुसे जाकर॥५॥

'परताप'ने देखा, कि "वला(१) देशके सर है।
पति-भाँति बुज़ुर्गोंकी बचे, इसका भी डर है॥
निज धर्म्मकी, निज देशकी रक्षा मेरे कर है।
यह देख तो पड़ता है, कि मुश्किलसे गुज़र है॥
पर, देहमें जबतक है रक़्त रामकी नसका।
दम रहते तो हूँगा न मुसलमानके बसका॥६॥

ब्याहूँगा न बेटी, न कभी पाँव परूँगा।
छेड़ेगा तो दिल खोलके मैदान करूँगा॥

(१) वला—विपत्ति।

हो हिन्दका क्षत्रीजो करे नीचकी सेवा।
अच्छा हो जो कालीजी करैं उसका कलेवा ॥
भेजें जा बहिन बेटी मुसलमानके घरमें।
भेजा न रहै रामजी! उस नोचके सरमें" ॥ ७ ॥

अकबरको उधर फ़िक्र थी इस बातकी हरदम,—
"परतापको किस भाँति बना लीजिये हमदम (१)
बेटी व बहिन ब्याहके इज्ज़त न करै कम।
इतनाही फकत कह दे, कि 'मातहत (२) हुए हम' ॥
इस छोटेसे सरदारको वश कर न सके शाह।
धब्बासी मेरी शानमें लगती है यह अफ़वाह" (३) ॥ ८ ॥

परतापके वे देशके औ जातिके भाई।
कर शाहसे सम्बन्ध जिन्हैं लाज न आई ॥
सुन-सुनके कि जग करता है सब उनकी हँसाई।
नित दिलमें रहा करती थी यह बात समाई ॥
"जबतक न मिले हममें उदयपूरका राना।
हम सबकी उड़ावैगा हँसी सारा ज़माना" ॥ ९ ॥

परताप व अकबरमें थी इस वजहसे अनबन्।
दक्खिनके बखेड़ोंसे पै चलता न था कुछ फ़न् (४) ॥
था ताकमें अकबर, कि "बहानेका मिलै कन (५)।
और जाके दबोचूँ (६) कि अचानकमें रहै सन् ॥

---

(१) हमदम—मित्र। (२) मातहत—अधीन। (३) अफ़वाह—ख़बर। (४) फ़न—चालाकी। (५) कन्—ज़र्रा, रंच। (६) दबोचूँ—चढ़ बैठूँ।

शाहाको भी अभिमानका कुछ स्वाद चखा दूं ।

वैसा हूं मुग़लज़ादा मैं दुनियाको दिखा दूं ॥१०॥

परताप भी यह जानते थे, एक न इक दिन ।
कुछ रङ्ग नया लायेगी यह शाहकी अनबन ॥
पर दिलमें यही ठानी थी, टुकड़े हो चहै तन ।
धन-प्राण चले जायें, न छोड़ूँगा मगर पन ॥

निज देशकी, निज धर्म्मकी मर्य्याद रखूँगा ।

आरामकी औलादको दागी न लखूँगा ॥११॥

जिस वंशके वीरोंने बनाया महासागर ।
गङ्गाको बहाया है धरा धाममें लाकर ॥
तोड़ा है महादेवका कोदण्ड(१) उठाकर ।
रीछोंसे, कपीशोंसे बँधाया है समुन्दर(२) ॥

रघु, रामसे पैदा हुए जिस वंशमें भूषन ।

अच्छा नहीं उस कुलमें लगाना कोई दूषन ॥१२॥

क्या डर है अगर फौज नहीं, धन भी नहीं है ।
भैयोंसे भली भाँतिसे कुछ बन भी नहीं है ॥
गल्ला व रसद नामसे इक कन भी नहीं है ।
सेवाके लिये पासमे इक जन(३) भी नहीं है ॥

जिस रामने पानीपै उतरवाये थे पाथर ।

विश्वास है इमदाद(४) करेंगे वही आकर" ॥१३॥

---

(१) कोदण्ड—धनुष । (२) समुन्दर—समुद्र । (३) जन—सेवक । (४) इमदाद—सहायता ।

इस तरहके विश्वाससे परताप निडर थे ।
रन, बनमें भी रहनेको समझते थे कि घर थे ॥
बिल्लेसे उन्हें शेर थे, पिल्लेसे सुवर थे ।
था छत्र कमल-पत्र, तो निज हाथ चँवर थे ॥
था रामका और अपने भुजा-बलका भरोसा ।
भाईका, न बन्धूका न था दलका भरोसा ॥१४॥

देखा है य अक्सर कि करो जिसका अँदेशा ।
होतव्य (१) व आ पड़ती है, आगेही हमेशा ॥
दक्खिनको विजय करके शाहंशाहका साला ।
श्रीमानजी, अम्बरके महाराजका बेटा ॥
दिल्लीको चला राहमें रजथानसे (२) होते ।
परताप व अकबरमें घमासान ला बोते ॥१५॥

श्रीमानका परतापने सत्कार कराया ।
ठहराके भली भाँतिसे भोजनको बुलाया ॥
भोजनके समय अपनेको बीमार बताया ।
सँग मानके खानेको कुँवर अपना पठाया ॥
'क्यों राना नहीं आये ?' यह जब मानने पूँछा ।
'सिर दर्दमे पीड़ित है' य उत्तर मिला छूँछा ॥१६॥

उत्तरको सुने मानको भोजन नहीं भाता ।
मन्त्रीकी तरफ़ हेरके है क्रोध जनाता ॥

---

(१) होतव्य—होनहार ।
(२) रजथान—राजस्थान ।

"परतापसे कह दो कि मैं खाना नहीं खाता ।
सिर-दर्दकी औषधिके लिये दिल्ली हूँ जाता ॥
औषधिको लिये शीघ्र इन्हीं पाँवों फिरूँगा ।
सिर-दर्द मिटा करके तो जल-पान करूँगा ॥१७॥
यह कहके बिना खायेही उठ घोड़ेपै बैठे ।
परताप वहीं आ गए निज मूँछ उमैठे ॥
तब मानजी परतापसे ललकारके बोले ।
"कर मानका अपमान, कोई सुखसे भी सो ले ॥
है नाम मेरा मान, तो परताप! रखो याद ।
अभिमान तेरा दूर, करूँ तुझको भी बरबाद" ॥१८॥
परताप य सुन मानकी अभिमान-भरी बात ।
वीरोंकी तरह मानको दी, बातकी इक लात ॥
जिस बातसे बस मान भी ज़िच खाके हुए मात ।
दिखलाते बनी और अधिक कुछ न करामात ॥
गम्भीर सी आवाज़में रानाने कहा यों,—
"जो करके दिखाना है, व कहते हो भला क्यों? ॥१९॥
क्षत्री हो डरै जातको, कुल-कान (१) मिटावै ।
नाचीज़ से (२) कुछ राज्यके हित लोक हँसावै ॥
आधीन हो सेवा करै, नित शीश नवावै!
इतने पे भी वीरत्वकी कुछ शान जनावै ॥

(१) कान—इज़्ज़त ।
(२) नाचीज़—तुच्छ ।

संग ऐसोंके भोजन नहीं परतापजी करते।
वरना हो सा जा के जिये, तिलभर नहीं डरते" ॥२०॥

परतापने जब मानको यह बात सुनाई।
उड़ने लगी बस मानके चेहरे पै हवाई॥
चलनेके लिये घोड़ेको जब एँड़ लगाई।
इक और भी सरदारने यह तान उड़ाई॥

"वरके कृपा, इस ओरको जब लौटके आना।
सम्भव हो, तो बहनोईको भी संगही लाना" ॥२१॥

दिल्लीमें पहुँच मानने अकबरको सुनाया।
"परतापने यों मुझको महा नीच बनाया"॥
परतापकी इस बातने अकबरको जलाया।
फ़ौरन ही हुआ हुक्म, "करो उसका सफ़ाया"॥

उस काफ़िर हिन्दूको अभी जाके करो क़ैद।
मुद्दतकी (१) लगी पूजे मेरे दिलकी भी उम्मैद" ॥२२॥

बस हुक्मके होते ही हुई फ़ौज भी तैयार।
और 'मान' (२) बनाये गये उस फ़ौजके सरदार॥
थे 'लूनकरन' 'ग़ाज़ी' व 'सैयद' भी मददगार।
मुलतानी, ख़ुरासानी, पठानोंकी थी भरमार॥

थे काबुली, ग़ोरी व बदख़्शानी सिपाही।
इक दममें जो फैलाते थे, मुल्कोंमें तबाही ॥२३॥

---

(१) मुद्दत—बहुत दिन।
(२) 'मान'—राजा मानसिंह

थे मानकी मातहतीमे क्षत्री भी बड़े वीर।
जो युद्धमे थे धीर, बड़े न्यायमें गम्भीर॥
पर लोभके वश धर्म्मको तज, बन गये बेपीर।
निज भाईसे लड़नेको चले, वाह री तक़दीर!

यदि हिन्दमें यह फूटका मेवा न उपजता।
अक़बाल (१) हमारा भी कभी हमको न तजता॥२४॥

ऐ हिन्द! तू सब बातोंमें सब जगसे बड़ा है।
विद्यामें, निपुणतामे, तेरा नाम बढ़ा है॥
दौलतका बड़ा हिस्सा तेरे बाँट (२) पड़ा है।
वीरत्वमे, धीरत्वमें भी सबसे कड़ा है॥

[illegible], फूट व आलस्य तेरे ऐब हैं भारी।
जिससे तेरी खुशहाली सभी जाती है [illegible]॥२५॥

बस फ़ौजके आनेकी ख़बर सुनतेही राना।
इस जोशसे उँमगे कि हुए मानो दिवाना॥
वीरत्व दिखानेका मिला अच्छा निशाना।
कमज़ोर पै चहिये न कभी हाथ उठाना॥

[illegible]का यही धर्म्म है, बलवानसे जुट जाय।
दोनोंमें है यश, मारे चहै आपही कट जाय॥२६॥

पुत-वंशके कुछ वीर थे, जैमलके थे कुछ पूत।
गहलौतके कुछ भील थे, जो थे बड़े मज़बूत॥

---

(१) अक़बाल—सौभाग्य।
(२) बांट—हिस्सा।

परतापके सम्बन्धी थे कुल पाँच सौ रजपूत ।
कुछ झाला थे, जिनके न कभी बलका मिला कूत ॥
परतापने जब अपनी सभी सेन बटोरी ।
ज्यों दालमें पड़ता है नमक, इतनी थी थोरी ॥२७॥
बाईसही हज़्ज़ार थे रानाके इधर ज्वान ।
दो लाखसे ज्यादा थे, उधर सिर्फ मुसलमान ॥
हथियार इधर, भाले, तबर, तीर, धनुष, बान ।
उस ओर अधिक था बड़ी तोपोंका घमासान ॥
पर, देशकी भक्तीसे छके वीर इधर थे ।
तनख़्वाहके लालचसे पके वीर उधर थे ।॥२८॥
जब मानने घाटीपै दिया युद्धका डङ्का ।
थर्रानो हवा, फैल गया शोर अतङ्का ॥
मुँह ढाँक लिया भानुने, कुल-नाशकी शङ्का ।
लहराये धराधर भी सुने वीरोंके हङ्का ॥
मैदानमें हर ओर मुसल्मान पटे थे ।
इक तङ्ग सो घाटीहीमें, परताप डटे थे ॥२९॥
ज्योंही सुनीं परतापने धौंसोंकी धुकारें ।
हथियारोंकी झनकार व करखोंकी पुकारें ॥
जय कालिका, अल्लाह व अकबरकी हुँकारें ।
हिनकार भी घोड़ोंकी, गजोंकी भी चिकारें ॥
और देखी जो परतापने भालोंकी चमाचम ।
आँखें हुई मङ्लयी. हुआ मुँह भी तमातम ॥३०॥

उत्साहसे फूला न समाता था बदनमें ।
भुज-दण्ड फड़कने लगे, बख़्तर तना तनमें ॥
आनन्द हुआ मनमें कि अब रनके सहनमें (१) ।
हथियारसे सँग मानके, खेलेंगे मगनमें (२) ॥
सब वीरोंको ललकारके इक बात सुनाई ।
"यह आख़िरी बिनती मेरी, सुन लो मेरे भाई ! ॥३१॥
पैदा हुआ संसारमें इक रोज़ मरैगा ।
मरना मुक़द्दम (३) है, न टारेसे टरैगा ॥
फिर इससे भला मौका कहौ कौन पड़ेगा ?
रजपूतीकी क्या गोटका पौ रोज़ अड़ैगा ?
पाँसे करौ तलवार, तबर तीरके यारो !
रण-खेल मरदका है नरद (४) शत्रुको मारो ॥३२॥
पुरखोंके बड़े बोलकी इज़्ज़तको बचाना ।
माता व बहिन, बेटीका सत्-धर्म्म रखाना ॥
निज धर्म्म व सुर-धामोंका सम्मान बढ़ाना ।
तीरथ व महाधामोंका सत्कार कराना ॥
इन कामोंमें यदि जानका डर हो तो न डरिये ।
क्षत्रीका परम धर्म्म है यह ध्यानमें धरिये ॥३३॥
ललकारके यदि कोई निकल सामने आवै ।
ब्राह्मणको, गऊ, दीनको यदि कोई सतावै ॥

---

(१) सहन—मैदान ।
(२) मगन खुशी ।
(३) मुकद्दम—अटल ।
(४ नरद—चौपड़की गोटी ।

आकरके जनम भूमि पै उत्पात(१) मचावै ।
समझानेसे मानै नहीं और शान दिखावै ॥
इन मौक़ोंपै कहो जो करे जानकी परवाह ।
बस जान लो, माताका नहीं उसकी हुआ ब्याह ॥३४॥

इस मानके ईमानकी सब तुमको ख़बर है ।
फूफू व बहिन इसकी मुसल्मानके घर है ॥
दुनियाकी न है लाज, न भगवानका डर है ।
फिर रामकी सन्तानसे लड़नेकी उमर है !!
क्या इसकी बड़ी फ़ौजसे डर जाओगे यारो ?
इस दुष्टकी हत्यासे मुकर जाओगे यारो ? ॥३५॥

बहिनोंकी व कन्याओंकी इज़्ज़तकी हो कुछ दर(२) ।
यश लेनेका कुछ ध्यान हो, निन्दाका हो कुछ डर ॥
दिलमें जो हो इकलिङ्गजी(३) भगवानका आदर ।
बप्पा (४) व साँगाके (५) हों उपकार सिरोंपर ॥
श्रीरामकी औलादकी इज़्ज़तपै नज़र हो ।
तो भाइयो ! यह वक्त है, बस बाँधो कमरको" ॥३६॥

'बस बाँधो कमर' सुनते ही सब वीर उमँगकर ।
फड़काते अधर, ले गये कर, अपनी कमरपर ॥

---

(१) उत्पात—उपद्रव ।
(२) दर—मूल्य, आदर ।
(३) इकलिङ्ग—उदयपुरके राणाओंके कुल-पूज्य देवता ।
(४) बप्पा—राणा कुलके आदिपुरुष "बप्पारावल" ।
(५) साँगा—राणा सङ्ग्रामसिंह ।

तेगापै पड़ा एक, तो इक हाथ सिपरपर (१) ।
मालेपै नज़र डाली, कभी तीर, तबरपर ॥
"सब ठीक हैं सामान", यही सबने पुकारा ।
"इकलिङ्गकी जय, रामजी है तेरा सहारा ॥२७॥

इक बूँद भी इस तनमें रकत बाक़ी है जबतक ।
इक फाल भी चलनेकी सकत (२) बाकी है जबतक ॥
इक लोहकी कणिका भी रहै हाथमें जबतक ।
लोहा न सही, दाँत व नख साथ हैं जबतक ॥
तबतक जो क़दम पीछे धरे युद्ध-किता (३) से ।
बस जान लो वह क्षत्री, नहीं अपने पितासे ॥२८॥

बप्पाकी क़सम पैर न पीछेको धरेंगे ।
इकलिङ्गकी दायासे ग़ज़ब (४) मार करेंगे ॥
साँगाका नमक खानेका ऋण आज भरेंगे ।
इस 'मान' मुसल्मानसे तिलभर न डरेंगे ॥
परताप ! तुम्हारे लिये एक सीस य क्या है ?
सौ सीसके देनेका "हरी नेम निबाहै" ॥२९॥

जिस वक्त़ सुनी ऐसी य वीरोंकी प्रतिज्ञा ।
परतापका दिल सौगुना हिम्मतसे उमाहा ॥
इकलिङ्गकी जय बोल किया मानपै धावा ।
ज्यों शेरबबर (५) करता है गजराजपै हमला (६) ॥

---

(१) सिपर—ढाल । (३) युद्ध-किता—रण-भूमि । (५) शेर-बबर—सिंह ।
(२) सकत—शक्ति । (४) ग़ज़ब—अति अधिक । (६) हमला—आक्रमण ।

शत्रुओं की बड़ी फ़ौजका कुछ दिलमें न था ध्यान।
बस एक यही ध्यान था बढ़ कीजिये घमसान (१) ॥४०॥

चलने लगे हथियार इधरसे भी उधरसे।
गिरने लगे सिर तूँबीसे कट वीरोंके धरसे॥
कट कोई गया जाँघसे, सीनेसे, कमरसे।
फ़व्वारे छुटे लालसे वीरोंके जिगरसे॥

सावनके महीनेमें हुई सातैं (२) यह बात।
घाटीमें हुई मानो खूब पानीकी बरसात॥४१॥

उस ओरसे तोपोंकी थी धाँ-धाँय धुँआँधार।
इस ओरसे थी तीरोंकी इक तीखी सी बौछार॥
हर ओर यही शोर था, डटकर करो हथियार।
आगे बढ़ो, मारो धरो, झारौ (३) नई तलवार॥

हाँ, देखना! दुश्मन कोई भग जाने न पावै।
और जाये तो आकाशको, फिर आने न पावै॥४२॥

परतापके वीरोंने जो की तीरोंकी बौछार।
तोपैं हुईं सब मानकी इकबार ही बेकार॥
तीरोंकी सपासपसे हुए तोपची (४) बेज़ार।
बर्छोंसे भरे वीरोंने, मुँह तोपोंके ललकार॥

बस मानके औसान (५) ख़ता (६) हो गये इकदम।
तलवार, कटारीसे पड़ा काम मुक़द्दम॥४३॥

---

(१) घमसान—घोर युद्ध (३) झारौ—चलाओ (५) औसान—होश-हवास।
(२) सातैं—सप्तमी। (४) तोपची—गोलन्दाज़। (६) ख़ता—लुप्त।

लपकी जो तरफ दोनोंसे तलवारकी ज्वाला।
हिम्मत हुई परतापकी उस वक्त दुबाला (१)॥
मुद्दतसे जो प्यासा था, वहाँ खाँड़ा निकाला।
बस, मानके सनमानको दिल अपना सँभाला॥
चेतकको कुदा मानके सनमानको धाये।
उस वक्तका घमसान कहो कौन बताये?॥४४॥

पैदल जो मिला राहमें सर उसका उड़ाया।
असवारको बस जीनपै चुपचाप सुलाया॥
भाला जो चला उनपै उसे काट गिराया॥
और वार भी तलवारका भरपूर बचाया॥
गोलीके लिये धीर था सीनेपै सिपर (२) है।
इस बातका अरमान था बस मान किधर है॥४५॥

"मिल जाये अगर मान तो अरमान (३) निकालूँ।
या सौंपूँ उसे जानको, या उससे छिना लूँ॥
दो चार छः दस वार भी तो उसपै चला लूँ।
दिखलाके हुनर (४) युद्धका कुछ उससे कहा लूँ॥
है वीर पुरुष, अच्छा बुरा कुछ तो कहेगा।
चल बसना है संसारसे बस नाम रहेगा"॥४६॥

इस ध्यानसे हर चार तरफ़ घोड़ा बढ़ाया।
जो सामने आया किया बस उसका सफ़ाया॥

---

(१) दुबाला—दूनी।
(२) सिपर—तवा।
(३) अरमान—हौसला।
(४) हुनर—कौशल।

आखिरको बड़ी देरमें श्रीमानको पाया ।
ललकारके परतापने यह बोल सुनाया ॥
"ऐ मान मुसल्मान ! अँबारीमें सँभल बैठ ।
अब देख ले क्षत्रीकी भी मूँछोंकी ज़रा ऐंठ" ॥४७॥

यह कहके नमक तावसे (१) भालेको सँभाला ।
भुज-दण्डके बल तौल, किया वार निराला ॥
बस, छोड़ दिया मान पै इक साँपसा काला ।
डस पाता तो बस उम्रका भर जाता पियाला ॥
अफ़सोस ! महावतही गिरा उससे निपट (२) कर ।
लोहेको अँबारीमें गिरा जोरसे टक्कर ॥४८॥

चेतकको दपट (३) हाथीके मस्तक पै उड़ाया ।
और चाहा कि तलवारसे कर दीजै सफ़ाया ॥
चेतकने क़दम हाथीके मस्तक पै जमाया ।
इतनेमें ही उस हाथीने रुख़ अपना फिराया ॥
और चीख़के भागा कि भगे मानके औसान ।
औसान तो भागे, पै रहे मानके तन (४) प्रान ॥४९॥

कुछ तुर्कोंने देखा य लड़ाईका उलट-फेर ।
परतापको आकरके लिया चारों तरफ़ घेर ॥
परताप अकेले थे, मुसलमान थे इक ढेर ।
पड़ने लगी परतापपै बेभावकी शमशेर ॥

---

(१) ताव—जोश ।
(२) निपट—मर ।
(३) दपट—ललकार ।
(४) तन—शरीर

आज़े व तबर तीर भला-मेघसे बरसे।
चेतककी लचक (१) दूममें सब कट गये सरसे ॥५०॥

चेतक कभी उछला, कभी कूदा, कभी दबका।
इस ओरको रपटा, कभी उस ओरको लपका॥
बस धूलमें पड़ता था निशाना वहाँ सबका।
सरपट थी बलाकी, तो क़दम भी था ग़ज़बका॥

कुछ लातसे रौंदे तो बहुत दाँतसे काटे।
बिजलीकी तरह भरता था सब ओर सपाटे ॥५१॥

परतापकी शमशेर परीसे भी परे थी।
वह इन्द्रकी तलवारसे कुछ काम करे थी॥
सरपर जो पड़ा हाथ तो बस पैर तरे थी।
थी ऐसी अधीरा कि नहीं धीर धरे थी॥

सर एकका काटा तो लहू औरका चाटा।
कन्धेमें भरी दौड़ तो पहलूसे (२) सपाटा ॥५२॥

मुगलोंमें भी जाँबाज़ (३) थे कुछ वीर बलाके।
बस बाँध लिये दौड़के हर सिम्तसे (४) नाके॥
परताप निकल जानेको सब ओर जो ताके।
बस जान लिया अब तो हुए कौर कज़ाके (५)॥

जय बोलके इकलिङ्गको घमसान मचाया।
वचत बना जिस वारसे वह वार बचाया ॥५३॥

---

(१) लचक—उछल-कूद, तेजी। (३) जाँबाज़—जानपर खेल जानेवाले।
(२) पहलू—बगल। (४) सिम्त—ओर, तरफ। (५) कज़ा—मृत्यु।

पर, तीन मुग़लज़ादोंने यों भाले चलाये।
राना न सके रोक तो सब तनमें समाये॥
फ़ौरन ही मगर रानाने सब खींच चलाये।
इतनेमेंही इक गोलीने आ दाँत गड़ाये॥
पर, साहसो परताप ने छोड़ी नहीं हिम्मत।
लड़ते भी थे करते भी थे ज़ख़्मोंकी मरम्मत॥५४॥

चेतकके भी सीने पै लगा एकका भाला।
बहने लगा बस उसके वहीं खून-पनाला॥
वह खींचके फेंका, उसे गिरनेसे सँभाला।
इतनेहीमें इक शत्रुने आ खाँड़ा (१) भी घाला॥
और तीन किये वार तो राना न सके रोक।
ज़ख़्मी हुए, पर दिलमें न था उनके ज़रा शोक॥५५॥

मन्ना (२) ने य देखा, कि है परताप पै संकट।
बस एक सौ पचास चुने ज्वान लिये भट॥
और रानाकी इमदादको (३) पहुँचा वहीं झटपट।
मुग़लोंकी अनी (४) चीरता करता हुआ खटपट॥
परतापका ले छत्र धरा शीशपै अपने।
परतापकी ली मानो बला शीशपै अपने॥५६॥

वह छत्रही था सत्यसी परतापकी पहचान।
उस छत्रही पर करते थे अब वार मुसलमान॥

---

(१) खाँड़ा—तलवार।
(२) मन्ना—झाला-सरदार।
(३) इमदाद-सहायता।
(४) अनी—श्रेणी, क़तार।

बिन छत्रके रानापै किसीने न दिया ध्यान ।
उस छत्र-धरे मन्नापै सब टूट पड़े ज्वान ॥

इस ओर तो राना हुए उस व्यूहसे बाहर ।
उस ओर पड़े मन्नापै शमशेर व खजर ॥ ५७ ॥

मन्ना भी तो झालाका था सरदार बहादुर ।
उत्साह-भरे दिलसे दिखाने लगा जौहर ॥
बस नोन-अदाईका जो पाया भला औसर ।
कस-कसके लगा झाड़ने तलवार व खञ्जर ॥

कुछ मारे, बहुत काटे, बहुत खेतमें पटके ।
कुछ डाँट-डपट देखके मैदानसे सटके ॥ ५८ ॥

मन्नाके जवानोंने ग़ज़ब जोश दिखाया ।
इक आठ सौ तुर्कोंका कटक काट गिराया ॥
पर अन्तमें मालिकके लिये प्राण गँवाया ।
छत्रित्वकी गति पाके अमर-लोक बसाया ॥

इक-एकके तनमें रहे जबतक कि तनक प्रान ।
रानाके लिये सबने किया घोर घमासान ॥ ५९ ॥

चेतकपै चढ़े रानाजी इक ओर सिधारे ॥
थे घाव लगे सात छुटे खून-फुहारे ॥
चेतकके भी बहते थे कई रक्त-पनारे ।
पर पहुँचे व जबतक एक विकट नाले-किनारे ॥

दी एँड़ तो चेतक पड़ा उस पार दिखाई।
ज्यों खटका हुआ घोर खबर झाँपे सुनाई ॥ ६० ॥

कुछ आगे बढ़े, पीछेसे आवाज़ इक आई।
"ऐ ज्वान! खड़ा हो" य दिया साफ़ सुनाई॥
फिरकर जो नज़र की तो पड़े सकत दिखाई।
"हैं! यह तो सकतसिंह है, छोटा मेरा भाई॥
आया है मुझे मारने जङ्गलमें झपटकर।"
"हाँ, तू है सकत!" बोले ये परताप डपटकर॥६१॥

"ऐ दुष्ट! तू क्षत्री है, कि शैतान है कोई?
तूने तो विमल वंशकी लुटियाही डुबोई॥
परतापका भाई बनै तुर्कोंका भिदोई!
आ कर ले, जो करना हो अभी गर्म है लोई"॥
फिर उससे उतर बोले, "सकत! कह, जो हो कहना।
कमज़ोर हूँ, घायल हूँ, ये धोखेमें न रहना"॥६२॥

यह सुनके सकतसिंह भी घोड़ेसे उतरकर।
डिड़कारके रोने लगे, सिर पाँवपै धरकर॥
"क्या आपकी दायासे मेरे दोष हैं बढ़कर?
भाई जी! क्षमा कीजै मुझे छोटा समझ कर॥
जो होगया सो होगया अब यों न करूँगा।
बप्पाकी क़सम वंशकी इज्ज़तपै मरूँगा॥६३॥

मन्नाजी मरे आपकी यों जान बचाई।
यह देख मेरे दिलमें बहुत लाज समाई॥
नौकर थे वो और मैं तो हूँ छोटा सगा भाई।
मुझसे न बनी, मैंने जो की वंश-बुराई॥

अब आजसे मुगलोंकी मैं सेवा न करूंगा।
बस, आपकी शिक्षापे सदा ध्यान धरूंगा ॥६४॥

दो तुर्क-सवारोंको है बन्दूकसे मारा।
जब आपने घोड़ेको फँदाया था व नारा॥
थे पीछे लगे आपके कुछ पाके इशारा।
मौकेपै व कर बैठते नुकसान तुम्हारा॥
यह जानके उनको तो लगा आया ठिकाने।
यहाँ आया हूँ मैं आपका अब मान मनाने" ॥६५॥

सुन बात यह परतापका हियरा उमँग आया।
भाईको भुजा भरके लपक कण्ठ लगाया॥
"शावाश सकत! तुमने मेरा प्राण बचाया।
खुश रक्खे तुम्हें देर लों अम्बा महामाया॥
सब दोष क्षमा करता हूँ जो आज तुम्हारे।
बस आजसे तुम भी हो मेरी आँखोंके तारे" ॥६६॥

चेतक भी गिरा इतनेमें बेचेतसा होकर।
ज्यों गिरता है मतवाला कोई खानेसे ठोकर॥
परताप जो बे-पैर हुए घोड़ेको खोकर।
बस, बोल उठे रञ्जकी आवाज़में रोकर॥
"हा वीर! दग़ा देके अकेले ही सिधारे।
ठहरो ज़रा हम चलते तो हैं साथ तुम्हारे" ॥६७॥

समझाया सकतसिंहने, "यों रञ्ज न कीजै।
घोड़ा मेरा हाज़िर है, इसे शौक़से लीजै॥

बस, जाइये डेरोंमें यहाँ देर न कीजै।
क्या चाहिये करना ? मुझे वह हुक्म भी दीजै॥
अब मान की मातहती में हर्गिज न रहूँगा।
पूछेगा अगर हाल तो सब सच्य कहूँगा॥६८॥

परताप गये डेरा, सकत फ़ौजमें आये।
और मानसे सब आके समाचार सुनाये॥
तज मानकी सेवा हुए परतापके साथे।
क्षत्रीकी तरह युद्धमें जौहर भी दिखाये॥
इतनी है प्रथम दिनकी य परतापकी करतूत।
जिसने किया परतापकी प्रख्यातिको मज़बूत॥६९॥

इस वजहसे परतापको सौ बार नमस्कार।
सौ बार नहीं, बल्कि सहस बार नमस्कार॥
निज देशकी रक्षामें बहाई व रकत-धार।
मुग़लोंने जिसे घेरके पाया न कभी पार॥
इस युद्धमें रानाने विजय-श्री नहीं पाई।
तौ भी रही इक तरहसे रानाकी बड़ाई॥७०॥
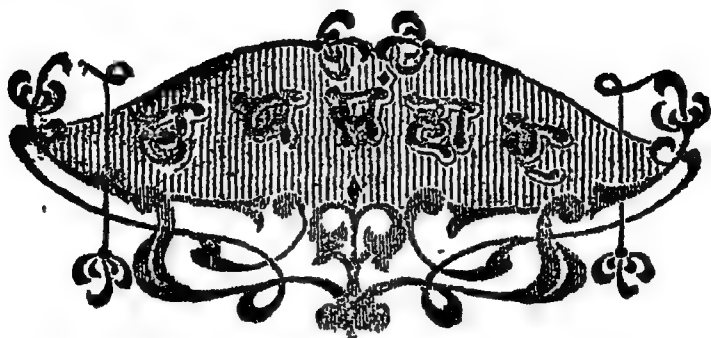
चेतक, मन्ना, सकतसिंहने जान बचाई रानाकी ।
धन्य-धन्य इन तीनोंकी है चुस्ती, फुरती, चालाकी ॥१॥
आप कहेंगे रानाजी तो जीते नहीं लड़ाईमे ।
फिर क्यों ऐसा युद्ध गिना जाता है हिन्द-बड़ाईमें ? ॥२॥
सत्य बात, पर कारण इसका हम तुमको बतलाते हैं ।
जिस कारण सब हिन्दू-छत्री इसको विजय बताते हैं ॥३॥
ख्याल कजिये, रानाजी थे धनसे, जनसे, शक्ति-विहीन ।
अकबर शाहंशाह हिन्दका, सब छत्री जिसके आधीन ॥४॥
रानाजीकी फौज देखिये, थी केवल बाईस हज़ार ।
तीन लाखके लगभग कहते है मुग़लोंका फौज़-शुमार ॥५॥
इसपर तुर्रा, मुग़ल-फौजमे थीं तोपैं भारी-भारी ।
जिनके मारे दिग्गज हिलते विकट फैलती अँधियारी ॥६॥
तिसपर भी मुग़लोंके योधा उस दिन कटे पचास हज़ार ।
केवल चौदह सहस युद्धमें रानाने खोये सरदार ॥७॥
मुग़ल-सैनकी बारह तोपें रानाने उस दिन लीं छीन ।
मानसिंहका मान बिगाड़ा, हुए नहीं उसके आधीन ॥८॥

विकट युद्ध रानाका लखिकै मुग़ल-सैन होकर हैरान।
उसी रोज़ हल्दीघाटीसे उतर किया नीचे निज थान ॥९॥
मारे डरके घाटी ऊपर चढ़कर युद्ध न करते थे।
घाटीके नीचेही रहकर सदा घातमे फिरते थे ॥१०॥
इतनेपर भी रानाजीको विजयी आप न मानेंगे।
युद्ध-तत्व तुम नहीं समझते, हम ऐसाही जानेंगे ॥११॥
यों तो मुग़लोंसे रानाकी हुई लड़ाई वर्ष पचीस।
हल्दीही घाटीमें होकर हुए मारके (१) सैतालीस ॥१२॥
सावन बदी सप्तमीवाली हुई लड़ाई भारी है।
इस कारण वह सर्वश्रेष्ठ है, ऐसी राय हमारी है ॥१३॥
वर्णन किया गया जो, ऊपर, वही युद्ध सातैंका है।
केवल एक दिवसका वर्णन हमने ऊपर लिक्खा है ॥१४॥
चावलके हंडेसे दो-इक सीत टटोले जाते है।
कच्चा है या पक्का भात, यह उससेही लखि पाते हैं ॥१५॥
इसी भाँति परताप वीरकी देश-भक्तिका पूरा ज्ञान।
क्षत्री-धर्म, प्रतिज्ञा-पालन, युद्ध-वीरताका अनुमान ॥१६॥
इसी प्रथम दिनके संगरसे (२) बुद्धिमान लखि लेते हैं।
इसी हेतु विस्तार छोड़ हम इतना ही लिख देते हैं ॥१७॥

प्रथम रत्न समाप्त।

---

(१) मारके—युद्ध। (२) संगर—युद्ध।
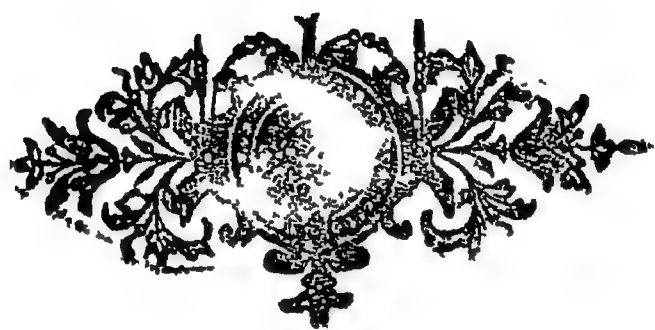
दूसरा रत्न

वीर-बालक

लड़कों ही पै निर्भर है, किसी देश की सब आस।
बालक ही मिटा सकते हैं, निज देशकी सब त्रास॥

भगवानदीन

जिसनेही पढ़ा होगा ज़रा ध्यानसे इतिहास ।
उसकोही मिला होगा य सच बातका आभास ॥
लड़कोंहीपै निर्भर है किसी देशकी सब आस ।
बालकही मिटा सकते हैं निज देशकी सब त्रास ॥
चाहें तो किसी देशको बस स्वर्ग बना दें ।
निज धर्मसे हट जायँ तो मिट्टीमें मिला दें ॥ १ ॥

निज देशकी उन्नतिका है सब भार इन्हींपर ।
निज धर्मकी रक्षाका है सब दार (१) इन्हींपर ॥
इन्कार इन्हींपर है तो इक़रार इन्हींपर ।
इन्हींपै रिआया भी है, सरकार इन्हींपर ॥
बालक जो सुधर जायँ तो सब देश सुधर जाय ।
हर एकका दिल मोदसे, भण्डार सा भर जाय ॥ २ ॥

बालकही तो हैं देशके सम्मानका भण्डार ।
बालकही तो हैं देशके धन-धान्यके करतार ॥
बालकही तो हैं देशकी बल-शक्तिका आकार ।
बालकही तो है देशके निज धर्मका आगार (२) ॥

---

(१) दार—दारमदार—आधार । (२) आगार—ख़ज़ाना ।

सच माना अगर देशके सब बाल सुधर जायँ।
सब हिन्दके बाशिन्दोंके घर मोदसे भर जायँ ॥ ३ ॥

इनकेही बिगड़नेसे बिगड़ जाता है सब देश।
इनकेही बदलनेसे बदल जाता है सब भेश॥
इनकेही बुरे होनेसे कुछ जाती नहीं पेश।
इनकेही भले होनेसे मिट जाता है सब क्लेश॥

इनकेही तो हाथोंमें है सब आगेकी आसा।
इनकेही दमों चलती है सद्धर्मकी स्वासा ॥ ४ ॥

सच मानिये निज देशके करतार यही हैं।
सच जानिये निज देशके भरतार यही हैं॥
सच लेखिये निज देशके हरतार यही हैं।
सच देखिये निज देशके रखवार यही हैं॥

इनकेही बिगड़नेसे बिगड़ जाता है सब देश।
इनकेही सुधरनेसे सुधर जाता है सब देश ॥ ५ ॥

जिस देशके बच्चोंमें हो उत्साहकी लाली।
करते न हों निज चित्तको उत्साहसे खाली॥
खेलोंमें भी तजते न हों निज ओरकी पाली।
पड़ जाय कठिनता तो समझते हों बहाली॥

बस, जान लो उस देशमें आनन्दका है वास।
आपत्ति फटकने नहीं पाती है कभी पास ॥ ६ ॥

उत्साहही संसारमें है मोदका आधार।
उत्साहही सरकारमें है मानका आगार॥

उत्साहही उठवाता है कष्टोंका महा भार।
उत्साहही करवाता है गिरि, सिन्धु नदी पार॥
उत्साहसे सुर-राज भी बन जाते हैं नर-दास।
उत्साह-रहित भीम भी उड़ जाते हैं ज्यों घास॥ ७॥

उत्साहमें हो राँड़ तो रुस्तमसे भी लड़ जाय।
उत्साहमें हो साँड़ तो शेरोंसे अकड़ जाय॥
उत्साह हो गीदड़में तो गज-राज पछाड़ जाय।
उत्साह हो भुनगेमें तो वह भीमसे अड़ जाय॥
उत्साहसे घटजातने (१) सागरको किया पान।
उत्साहसे रवि लील गये बाल हनुमान॥ ८॥

उत्साहसे प्रहलादने कश्यपको किया मात।
उत्साहसे ध्रुवने भी दिखाई है करामात॥
उत्साहसे गिनता था भरत सिंहके सब दाँत।
उत्साहसे पूरी न हो, है कौनसी वह बात?
उत्साहसे इक ग्वालमे (२) गिरि-राज (३) उठाया।
सुर-राजका सब दर्प भी पानीमें बहाया॥ ९॥

संसारके सब काम हैं उत्साहपै निर्भर।
यह जानके निज चित्तको उत्साहसे लो भर॥
फिर देखो कि किस कामको तुम सकते नहीं कर।
पत्थर भी बनै पानी, अगर जाओ न तुम डर॥
अब आगे सुनाते हैं तुम्हें, सत्य कहानी।
उत्साह बढ़े सुनतेही और भोति हो पानी॥ १०॥

---

(१) घटजात-अगस्त्यमुनि। (२) ग्वाल-श्रीकृष्ण। (३) गिरिराज-गोवर्द्धन पर्वत।
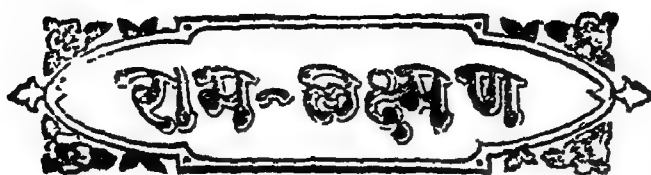
दशरथजी महाराज अयोध्याके थे भूपाल ।
सद्धर्मके पोषक थे, असद्धर्मके थे काल ॥
जगदीशने बख़्शे थे उन्हे चार सुभग लाल ।
चारों थे महाराजके तन, प्राण, सुयश, माल ॥

चारोंको कभी करते न थे पाससे न्यारे ।
बूढ़ेकी छड़ी, कहिये, किधौं आँखके तारे ॥ ११ ॥

थे चारों कुँवर रूपमें अनमोल रतन-हीर ।
विद्यामें निपुण, धर्ममें दृढ़, बुद्धिमें अति धीर ॥
थे शुद्ध-हृदय, भाव सुभग, चित्तके गम्भीर ।
और सत्य, दया, दानमें अद्वैत, अजय, वीर ॥

ये चार कुँवर राजाके या चारों सुफल थे ।
या राजा व रानीनके सौभाग्यका बल थे ॥ १२ ॥

कौशिकजी महाराजने आ राजाको घेरा ।
"है मेरे महायज्ञमें उत्पात घनेरा ॥
इस यज्ञकी रक्षाही महाधर्म है तेरा ।
बस मान लो हे भूप! सुभग बैन य मेरा ॥

दे डालो मुझे राम लखन थाड़े दिवसको ।
मैला न करो मोहसे रघुवंशके यशको" ॥ १३ ॥

पहले तो विकट मोहसे इन्कार बताया ।
कुछ सोचके फिर बेटोंको यह वाक्य सुनाया ॥
"हे राम ! लखन ! छोड़के अब मोहकी माया ।
गाधेयकी सेवामें लगो बेंचके काया ॥
इस वंशकी मर्याद है सन्तोंका समादर।
गाधेयके सँग जाके करौ वश उजागर ॥ १४ ॥

छत्रीका महत्कर्म है निज धर्म रखावै ।
दीनोंको बचा, दुष्टोंको यम-धाम पठावै ॥
सन्तोंका सहायक बनै, दम्भीको दबावै ।
आवै जो शरण उसपै न हथियार उठावै ॥
इस धर्मको धर चित्तमें कौशिकका करौ काम।
जिससे रहे संसारमें रघुवंशका शुभ नाम" ॥ १५ ॥

यह सुनके लखन-रामने आनन्द मनाया ।
उत्साह हुआ इतना कि तनमें न समाया ॥
माताके निकट जाके यही बैन सुनाया ।
"मुनि-काजके हित बापने है हुक्म लगाया ॥
रणके सभी सामानसे तुम हमको सजा दो।
फिर युद्धका जो धर्म हो सब हमको बता दो" ॥ १६ ॥

सुन बैन सुमित्राने चकित होके कहा—"क्या ?
तुम दूधमुँहे बच्चोंको यह घोरसी आज्ञा ?
गाधेयने जादू किया, बौरा गये राजा ?
मन्त्रीने न रोका, न गुरूजीने बुझाया ?

संग्राममें बच्चे भला क्या जाके करेंगे?

इन छोटी धनुहियोंसे भला दैत्य मरेंगे? ॥ १७ ॥

मुनि-राजके ये बैन, वृथा भूपने माने?

पठवाते हैं बच्चोंको, हुए कैसे दिवाने?

क्या हो गये सब वीर अयोध्याके ज़नाने?

सठिया गये राजाजी, नहीं होश ठिकाने?

सुकुमारसे बच्चे तो करें जाके विकट खेत।

सामन्त सुभट शूर हैं नौकर भला किस हेत? ॥ १८ ॥

हे राम! लखन! तुमको मैं जाने नहीं दूँगी।

नाराज़ी भी अवधेशकी निज शीश सहूँगी॥

कौशिकका वचन-वज्र भी निज सीनेपै लूँगी।

समझाना गुरूजीका भी इक कोने धरूँगी॥

अन्यायकी कहाँ ताब है, कुछ मुझसे कहेगा?

बोलेगा अगर कोई तो फिर दण्ड सहेगा" ॥ १९ ॥

लक्ष्मणने लखा माताको है मोहने घेरा।

अब चाहिये कुछ युक्ति न इस बुद्धिको फेरा॥

वात्सल्य-भरे भावसे मुख मातुका हेरा।

भोलेसे वचन बोल दिया ज्ञान-दरेरा॥

"तूनेही तो मुझसे य बहुत बार कहा है।

'रघुवंशका व्रत, दीनकी रक्षाही रहा है' ॥ २० ॥

राजाने सभा-मध्य वचन मुनिको दिया है।

इस दोनोंकी रक्षाका वचन मुनिसे लिया है॥

तू होती है यों मोहके वश, कैसा हिया है?
क्यों छत्रीके घर तूने मुझे पैदा किया है?
क्षत्राणी हो, यों पुत्रका भय चित्तमें लावै।
सो कैसे लखनलालकी महतारी कहावै? ॥ २१ ॥

कन्या नहीं क्या छत्रीकी तू? सच तो बता दे।
रानी नही रघुवंशकी क्या? भेद सुना दे॥
पैदा किया किस हेतु मुझे कुछ तो लखा दे।
वाजिब नहीं कर मोह मुझे क्रूर बना दे॥
क्यों मुझको पिलाई भला निज दूधकी धारें?
उस दूधका बल बोल तो हम किसपै निकारें? ॥ २२ ॥

है याद मुझे खूब कि जब कौशसे डरकर।
भागा था लड़कपनमें तेरे पासको भीतर॥
तब तूने बड़े नेहसे निज गोदमें धरकर।
फटकारा था शत्रुघ्नको इस बातको कहकर॥
'वीरत्व भरा दूध मेरा पीके डरैगा।
शंका है मुझे, मुझको तू बदनाम करैगा' ॥ २३ ॥

क्या मुझको नहीं तूने वही दूध पिलाया?
उस गोदमें क्या मुझको नहीं तूने खेलाया?
वीरत्वका क्या धर्म नहीं तूने सिखाया?
रघुवंशका व्रत सत्य, नहीं तूने लखाया?
फिर आज वृथा करती है क्यों इतना महा मोह?
निज दाकन दुसिर, छोड़ दे मिथ्याका महा मोह ॥ २४ ॥

तूने तो कई वार परीक्षा मेरी ली है।
पढ़नेमें व लड़नेमें विकट जाँच भी की है॥
पक्का मुझे पाया है, तो शाबाशी भी दी है।
इस वक्त बता, ओछा हुआ क्यों तेरा जी है?
माताही जो इस भाँति करे पुत्रको डरपोक।
वीरत्वको, क्षत्रित्वको हा हन्त! महाशोक!॥ २५॥
करती रही जिस दूधकी तू नित्य बड़ाई।
देती रही तू जिसके विकट बलकी दोहाई॥
है तूने मुझे उसकी कोई धार पिलाई?
या बातैं-ही-बातैं हैं तेरी ऐसी सोहाई?
तैयार हू मैं इसकी परीक्षा के लिये आज।
बस, छोड़ दे मिस ओर महामोहका सब साज" ॥ २६॥
ये पुत्र-वचन सुनके सुमित्राने कहा, "लाल!
बस हो चुका, अब जान लिया मैंने सकल हाल॥
फैलाया था मैंने जो अभी मोहका जंजाल।
लखनेके लिये तेराही उत्साह, थी इक चाल॥
मुनि-संगमें जा चैनसे पितु-बैनको पालो।
रघुवंशके वीरत्वसे मख-ध्वंस बचा लो॥ २७॥
पर, देखना, रण-भूमिसे हट कुल न लजाना।
उज्ज्वलसे मेरे दूधमें कारिख न लगाना॥
कौशिकके वचन मान-सहित शीश चढ़ाना।
श्रीरामकी सेवामें कभी कोर न लाना॥

मङ्गल हो तुम्हारा सदा आशीश है मेरी।
अब जानेमें हे पुत्र ! करो कुछ भी न देरी ॥ २८ ॥

उत्साहसे रण-भूमिमें निज ज़ोर दिखाना।
जो आवै शरण उसपै न हथियार उठाना ॥
नारीको, बड़े-बूढ़ेको बालकको बराना (१)।
ललकारके आवै उसे दिल खोल छकाना ॥

जो शत्रुसे कुछ भङ्ग हो वा शस्त्र-रहित हो।
रण-भूमिका यह धर्म है, मत मारना उसको" ॥ २९ ॥

उत्साह सहित पूछके फिर कौशिला माई।
फिर केकयीसे जाके सकल बात सुनाई ॥
इन दोनोंही माताओंने वह बात सिखाई।
कल्याण हो संसारमें और वंश बड़ाई ॥

"उत्साहही संसारमें शुभ कामोंका है मूल।
बस जाओ करो काज इसे जाना नहीं भूल" ३० ॥

आनन्द सहित राम-लखन द्वारपै आये।
मित्रोंसे मिले, बापके (२) पद शीश नवाये ॥
यों गाधि-सुअन (३) संग चले मोद (४) बढ़ाये।
सब अंग थे इन वीरोंके उत्साहसे छाये ॥

भुज-दण्ड फड़कते थे, क़दम आगेही चलते।
धनु-बाण फड़कते थे, सँभालेसे सँभलते ॥ ३१ ॥

---

(१) बराना—बचाना। (३) गाधि-सुअन—विश्वामित्र।
(२) बापके—दशरथके। (४) मोद—खुशी।

आश्रमके निकट पहुँचे तो इक राक्षसी धाई।
समझे य लखन-राम कि इक आँधीसी आई॥
पर बात जो थी सत्य सो कौशिकने बताई।
"यह राक्षसी है ताड़का मारीचकी माई॥
ठेलसे शिला और बड़े वृक्ष उड़ाती।
खानेके लिये तुमको चली आती है धाती" ॥ ३२ ॥

सुन बात हुआ रामको संकोच य भारी।
"वर्ताव करैं कैसा? य है जातिकी नारी॥
अबलाको हनैं इसमें है वीरत्वकी ख्वारी।
मारैं न अगर इसको तो है हानि हमारी"॥
संकोचमें पड़ रामने कौशिकका थहाया।
गाधेयने तब रामको यह मंत्र बताया ॥ ३३ ॥

"ब्राह्मणको, गऊ, दीनको जो कोई सतावै।
सद्धर्ममें बाधा करै, अभिमान जनावै॥
खुद दौड़के रण-भूमिमें जो सामने आवै।
समझानेसे मानै नहीं; उत्पात मचावै॥
नारी हो चहै नर हो, उसे दण्ड ही करना।
क्षत्रीका परम धर्म है, यह ध्यानमें धरना ॥ ३४ ॥

अबला है वही नारि जो निज बल न जनावै।
मर्दोंके निकट नम्र रहै, लाजही भावै॥
अबला नहीं वह नारि, जो चंडित्व दिखावै।
चण्डीसी बनी वीरोंके ढिग दौड़के आवै॥

इस बालकको सुन राम ! मेरी मान लो यह बात।
खा जायगी यह तुमको नहीं शीघ्र करो घात"॥ ३५ ॥

सुन बात य श्रीरामने कोदंड लिया तान।
टेढ़ी हुई कुछ भौंह तो बस सीधा हुआ बान॥
ह्यां शरने छुआ कान, उधर नाकों हुई जान।
सन्नाके छुटा बान तो भन्नाके भगे प्रान॥
पहले हुई क्या बात कहै कौन विधाता ?
शर छूटा किधौं मर गई मारीचकी माता ?॥ ३६ ॥

आश्रममें पहुँच मुनिसे कहा, "यज्ञ रचाओ।
विघ्नोंका कोई भय न तनक ध्यानमे लाओ॥
किस ओरसे बाधाका है भय मुझको बताओ।
मैं रोकूँगा, तुम मौजसे सब कृत्य कराओ॥
आवैंगे अगर लाख तो इक दममें मरेंगे।
हम दोनों यथाशक्ति कठिन मार करेंगे"॥ ३७ ॥

गाधेयने भय छोड़के निज यज्ञ रचाई।
मारीचने सुन विघ्नके हित धूम मचाई॥
'मरवाई है कौशिकने मेरी ताड़का माई'।
यह सोचके बस करही दी आश्रमपै चढ़ाई॥
दल सेन लिये भ्रात सुभुज साथमें लेकर।
चढ़ दौड़ा उसी द्वेषका निज चित्तमें देकर॥ ३८ ॥

इस ओर घटा घोरसी मख-धूमकी छाई।
दादुरसे लगे करने ऋषी वेद-रटाई॥

उस ओरसे मारीच अनी आँधीसी आई।
मानो अभी ले जायगी ऋषि-कुलको उड़ाई॥
पर, राम-लखन आड़में गिरि-राजसे आये।
मारीच-अनी-आँधीके धुँसे उड़ाये॥ ३९॥

बिजलीसा कड़क दुष्ट सुभुज सामने आया।
इक आनमें श्रीरामने यम-धाम पठाया॥
फिर एक पवन-बाणसे मारीच उड़ाया।
लंकाके निकट, सिन्धुके तट, फेंक बहाया॥
सब सेन लखन-लालने यों काट गिराई।
कातिकमें कृषक करते हैं ज्यों घास-कटाई॥ ४०॥

यों टार सभी विघ्न अभय यज्ञ कराई।
संसारमें निज वंशकी यों कीर्ति बढ़ाई॥
वीरत्वकी करतूत प्रगट करके दिखाई।
उत्साहसे क्या होता है? यह बात लखाई॥
क्षत्री न अगर शत्रुसे रण-खेतमें डर जाय।
निज वंशकी मर्यादसे कुछ काम भी कर जाय॥ ४१॥

इस हिन्दके बालक भी जो उत्साहसे भर जायँ।
'भय क्या है' यही बात जो निज चित्तमें धर जायँ॥
विघ्नोंकी कठिनतासे न निज चित्तमें डर जायँ।
निश्चय है कि इस हिन्दके सब काम सुधर जायँ॥
बजने लगी हर ओरसे आनन्द-बधाई।
फिर नाये महासोदको हर ओर सोहाई॥ ४२॥

दुर्दण्ड बली कंस था मथुराका महाराज ।
तपता था महातेजसे, करता था अधम काज ॥
निज चित्तके अनुकूल जुटाया था सकल साज ।
मनमानी किया करता फ़क़त नीतिका था व्याज (१) ॥

अन्त्रीका वही हाल था सेनाका वही ढंग ।
सब राज्यमें फैला था विकट कष्टका इक रंग ॥ १ ॥

जो चित्तमें आता, वही रैयतसे कराता ।
जो सत्य सुनाता उसे भरपूर दबाता ॥
सम्बन्धियोंकी सीख न कुछ ध्यानमे लाता ।
मित्रोंके महामन्त्र हवाहीमें उड़ाता ॥

निज बापको कर क़ैदमें, माताका किया तोष (२) ।
तब बाक़ी बचा कौनसा करनेको भला दोष ! ॥ २ ॥

रैयतकी सुभग (३) वस्तु ज़बरदस्ती छिनाता ।
सुन्दरसी बहू बेटीको निज नारि बनाता ॥
रैयतसे बिना पूछेही महसूल (४) लगाता ;
इस भाँतिसे धन जोड़के मनमाना उड़ाता ॥

---

(१) व्याज—बहाना ।
(२) तोष—सन्तोष ।
(४) सुभग—सुन्दर, अच्छी ।
(५) महसूल—कर, खिराज ।

रैयतके लिये इसमेंसे कौड़ी न लगाता।
समझाता जो कोई तो उसे जेल दिखाता॥ ३॥

दिन-रात रजोगुणमें रहा करता था माता।
रैयतकी न सुनता, न कभी न्याय चुकाता॥
बस, अपनेही आरामके सब काम कराता।
बनवाके बड़े रङ्ग-भवन उनको सजाता॥
इस भाँति सकल राज्यका धन धूर मिलाता।
समझाता जो कोई तो उसे जेल दिखाता॥ ४॥

सुन्दरसी किसी नारिका कुछ खोज जो पाता।
धन-दानसे, छल-मानसे निज हाथमें लाता॥
राजाओंपै कन्याओंके हित सैन चढ़ाता।
रण-खेतसे निज सैनका संहार कराता॥
नर-रक्तसे निज कामको यों आग बुझाता।
समझाता जो कोई तो उसे जेल दिखाता॥ ५॥

था राजमहल कंसका, बस एक परिस्तान।
जमघट था परीज़ादोंका, उड़ती थी सदा तान॥
दिन-रात हुआ करता था मदिराका महापान।
समझाना किसी व्यक्तिका करता न था कुछ कान॥
विक्रममें न था हीन, पै अबलाओंका था दास।
यों काम अधम कंसका करवाता था उपहास॥ ६॥

बल-वीर्यमें यह कंस न था इन्द्रसे कुछ कम।
यदि क्रोधसे आ जाय, तो भय खाके भगै यम॥

दिक्पालोंकी क्या ताब कि मारे तो भला दम ?
मारुत भी निकट होके गुज़रता था तो थम-थम ॥
नर-सिंह भी ललकार सुने कान दबाते।
लखि तेजको आदित्य भी निज आँख झपाते ॥ ७ ॥

थी इसकी चचाज़ाद बहिन देवकी बारी।
गुण-रूपका भण्डार, सत्कुल वंशकी प्यारी ॥
वसुदेवसे ब्याहा उसे सब करके तयारी।
पहुँचानेके हित साथ चला लेके सवारी ॥
उस वक्त गगन-धामसे वाणीने पुकारा,—
"इसका ही सुअन आठवाँ है काल तुम्हारा" ॥ ८ ॥

सुन वाणी लगा मारने भगिनीको उसी ठौर।
वसुदेवने रोका, कहा,—"कीजे तो भला ग़ौर ॥
भगिनीके सिवा शत्रु तुम्हारा है कोई और।
पाओगे भला क्या इसे तुम मारके इस तौर ?
संतान जो होगी उसे मैं तुमको ही दूँगा।
विश्वास रखो, करके कपट पाप न लूँगा" ॥ ६ ॥

कुछ काल गये पैदा हुआ फूलसा लाला।
वसुदेवने ला कंसकी निज गोदमें डाला ॥
पाषाण-हृदय कंसने ऊपरको उछाला।
गिर भूमिपै बस चूर हुआ प्राण-पियाला ॥
वसुदेवने निज आँखसे यह हाल निहारा।
वचनोंके वशीभूत थे, कुछ दम नहीं मारा ॥ १० ॥

फिर दूसरा, फिर तीसरा, फिर चौथा हुआ बाल ।
फिर पाँचवें छठवेंका भी ऐसाही हुआ हाल ॥
निज हाथसे वसुदेवने ये खो दिये सब लाल ।
पर, बात जो कह दी थी, उसे सकते न थे टाल ॥
[illegible] यही धर्म है जो बात निकालें ।
फिर हानि हो या लाभ, उसे वैसेही पालें ॥ ११ ॥

थी रोहिणी, वसुदेवकी इक और भी नारी ।
वह भी हुई इस कालमें जब पाँवकी भारी (१) ॥
वसुदेवने तब चित्तमें यह बात बिचारी ।
"इस नारीकी संतान कहीं जाय न मारी ॥
इस हेतु इसे और किसी धाममें रक्खें ।
फिर अपने किये कर्मोंका फल शौक़से चक्खें ॥ १२ ॥

गोकुलमें रहा करते सुभग 'नन्द महर' नाम ।
वसुदेवके इक मित्र थे, गोपालका (२) था काम ॥
इनकेही यहाँ भेज दी वसुदेवने निज बाम (३) ।
मिलता था वहाँ रोहिणीको ख़ूबही आराम ॥
है मित्र वही सत्य, जो दुख-दर्द बटावे ।
आपत्ति-समय मित्रके यों काममें आवे ॥ १३ ॥

जब ठीक समय रोहिणीने पूतको जाया (४) ।
तब नन्द यशोदाने बड़ा हर्ष मनाया ॥

---

(१) पाँवकी भारी—गर्भवती । (३) बाम—स्त्री ।
(२) गोपाल—ग्वाला । (४) जाया—पैदा किया ।

बुलवाके पुरोहितको सकल कर्म कराया ।
वसुदेवको आनन्द-समाचार पठाया ॥
बल-धाम समझ नाम भी 'बलदेव' रखाया ।
सन्मित्रका सब कर्म प्रकट करके दिखाया ॥१४॥

जब देवकीको गर्भ हुआ सातवीं बारी ।
आनन्द सहित तनकी सुछवि बढ़ गइ भारी ॥
फिर गर्भके सब चिन्ह मिटे, देख सुरारी ।
समझा यही, "बस हो गई इस गर्भकी ख्वारी ॥
अब आठवें बालकका बड़ा शोध करूंगा ।
होतेही प्रकट चिन्ह, विकट रूप धरूंगा" ॥१५॥

कुछ दिनमें हुआ देवकीको आठवाँ अवधान ।
तब कंस ने दोनोंका किया क़ैदसे सम्मान ॥
बहनोई-बहिन क़ैदमें, साला हो निगहबान ।
आश्चर्य है यह कैसा बड़ा, हाय रे भगवान ॥
निज स्वार्थके वश भूप नहीं मानते सम्बन्ध ।
होते रहे हैं, होंगे बहुत ऐसे विकट अन्ध ॥१६॥

पाठकजी ! विचारो तो सही कैसी विकट बात ?
भगिनीपै करै ऐसे समय भ्रातही यह घात !
है यह कि नहीं सारी रजोगुणकी करामात ?
स्वारथके वशीभूत सभी होते हैं बदज़ात ॥
ख़ैर, जिसने जगन्नाथकोही क़ैदमें डाला ।
आश्चर्य नहीं, उसको जो दुख दे सगा साला ॥१७॥

जाने दो, मगर खैर य है बात पुरानी ।
अब आगे सुनो, कृष्णकी करतूत-कहानी ॥
पैदा हुए, वसुदेवने है युक्ति जो ठानी ।
पाला है यशोदाने, जो थी नन्दकी रानी ॥
यह सारी कथा कहना अभिप्राय नहीं है ।
वीरत्वसे मतलब है, जो इतिहास सही है ॥ १८ ॥

जब कंसने उत्पात बड़ा ब्रजमें मचाया ।
हर भाँतिसे ब्रज-वासियोंको खूब सताया ॥
गोपोंने निकल वास कहीं दूर बनाया ।
तब भी न अधम कंसने उत्पात घटाया ॥
नित एक नये स्वाँगसे रैयतको सताता ।
उत्पातके हित वीर हर इक ओर पठाता ॥ १९ ॥

दूतोंसे सुना था कि युगल नन्द-दुलारे ।
हैं रूपके भण्डार, महा तेजके तारे ॥
शङ्का थी उसे, दोनों य आभीरके बारे ।
बल-शक्तिमें बढ़ रोकैं न उत्पात हमारे ॥
'दोनोंको किसी भाँति लगा दोजै ठिकाने ।'
दिन-रात रहा करता था वह चित्तमें ठाने ॥ २० ॥

कुछ छलसे सुभट भेजके दोनोंको थहाया ।
बल तेजमे दोनोंको विकट वीर ही पाया ॥
तब और भी चिन्ता बढ़ी यह दिलमें समाया ।
'इन दोनोंका अब चाहिये कर देना सफाया' ॥

निज द्वारपे दङ्गलका सकल साज सजाया।
इस मिससे सकल ग्वालोंको निज पास बोलाया ॥ २१ ॥

पहुँचे जो वहाँ नन्द, तो यह मामला पाया।
द्वारेपै कुवलियासा प्रबल गज है डटाया ॥
कहनेपै भी हथवानने हाथी न हटाया।
तब कृष्णने हथवानसे यह बैन सुनाया ॥

"राजाहीके बुलवानेसे हम आये यहाँपर।
तू जाने नहीं देता है क्यों ग्वालोंको भीतर?" ॥ २२ ॥

हथवान लगा कहने कि "है भूपकी इच्छा।
चाहैगा यहाँ आना कोई वीर जो सच्चा ॥
बल उसका प्रथम जाँचैगा गजराज कुवलिया (१)।
तब उसको अखाड़ेमें मिलै आनेकी आज्ञा ॥

आभीरके (२) बालक हो, चलो ढोर (३) चराओ।
वीरोंके अखाड़ेके लिये दिल न चलाओ ॥ २३ ॥

जानाही अगर चाहो तो निज शक्ति दिखाओ।
निज शक्तिसे इस पीलको (४) द्वारेसे हटाओ ॥
तब जाके धनुष-यज्ञका आनन्द उड़ाओ।
ऐसा न हो कर सकते, तो निज धामको जाओ ॥

ऐसे तो बहुत आते हैं आभीरके बेटे।
आये हैं बड़े वीर बने, धूर लपेटे!" ॥ २४ ॥

---

(१) कुवलिया—गजका नाम। (३) ढोर—चौपाया।
(२) आभीर—अहीर। (४) पील—हाथी।

सुन बैन य बलदेवका चेहरा दमक आया।
मस्तकपै झपट पीलके इक दण्ड जमाया॥
हाथोंसे पकड़ दाँत जो पीछेको हटाया।
हाथीने विकट क्रोधसे दाऊको (१) दबाया॥
अब होने लगी दोनों दिशाओंसे रिलापेल।
भिड़ जाती है, इस हिन्दमें अब रेलसे ज्यों रेल॥ २५॥
तब कृष्णाने हथवानके इक दण्ड जमाया।
लगतेही विकल (२) होके धरा-धामपै आया॥
आतेही धरा-धामपै यम-धाम सिधाया।
श्रीकृष्णाने तब गजको पकड़ पूँछ घुमाया॥
जब कृष्णपै दौड़ा तो उधर दाऊने ठोंका।
बलदेवपै झपटा तो इधर कृष्णने भोंका॥ २६॥
कुछ देर इसी भाँति कुवलियाको खेलाया।
दण्डोंकी विकट मारसे उस गजको छकाया॥
दाँतोंपै पड़ी मार तो हाथी भी सकाया (३)।
चिंघारके भागा तो झपट भूमि गिराया॥
बलदेवने निज हाथसे गज-दन्त उखाड़े।
कंधेपै धरे दोनों गये राज-अखाड़े॥ २७॥
तब कंस लगा कहने कि "हे कृष्ण व बलराम!
सुनता हूँ कि तुम दोनों बड़े वीर हो बल-धाम(४)॥

---

(१) दाऊ—बलराम (बलदेव)
(२) विकल—व्याकुल।
(३) सकाया—घबराया।
(४) बलधाम—शक्तिके भण्डार

हाथीको पछाड़ा है अभी, है य विकट काम।
मल्लोंसे मेरे लड़के करो और भी कुछ नाम॥
तब जानूँ तुम्हें नन्दके तुम वीर हो बाँके।
वरना मैं यही मानूँगा सब झूठे हैं साके" (१)॥ २८॥

बलदेव लगे कहने कि "हो भूप हमारे।
हम नन्दके बालक हैं, प्रजा दीन तुम्हारे॥
आभीरके हम बाल हैं, ये मल्ल है भारे।
मल्लोंसे आ भिड़ते हैं कहीं ताल बिचारे?
आये हैं यहाँ देखने दङ्गलका तमाशा।
कुश्ती करें हम इनसे, रखो ऐसी न आशा"॥ २९॥

चाणूर (२) लगा कहने कि "बातें न बनाओ।
भूपालको निज युद्धका कर्तब तो दिखाओ॥
तैयार हैं हम, तुम भी निकल सामने आओ।
कर युद्धसे इनकार न निज वंश लजाओ॥
महाराजके गजराजको है तुमने पछारा।
क्या जीतेही घर जाओगे, यह तुमने विचारा?"॥ ३०॥

तब कृष्ण उठे बोल, कि "चाणूर! सुनो बात।
आभीरके हम बाल हैं, तुम मल्ल (३) हो विख्यात॥
हम कैसे लड़ें तुमसे, हमारी भला क्या घात (४)?
सिंहोंके निकट मेष करै कौन करामात?

---

(१) साके—आडम्बर।
(२) चाणूर—कंसका एक पहलवान।
(३) मल्ल—पहलवान।
(४) घात—शक्ति।

यह युद्ध है, होता है बराबरहीके जनसे।
उत्साह भी हो मनमें, इधर सम भी हो तनसे ॥ ३१ ॥

ऐसाही सदा नीति चली आई है जगमें।
खोदी हुई है बात य इतिहासके नगमें ॥
जो व्यक्ति चलै इसके पृथक् औरही मगमें (१)।
लगता है विकट काँटा बहुत शीघ्रही पगमें ॥
इस हेतु न तुम बोलो न राजासे कहाओ।
आपसमें पकड़ खेलके आनन्द मचाओ" ॥ ३२ ॥

तोसलने (२) कहा, "आये हो तुम नीति सिखाने ?
या युद्ध-कला अपनी अखाड़ेमें दिखाने ?
राजाकी रज़ा (३) मानौ, बनौ यों न दिवाने।
अब जीते नही पाओगे निज धामको जाने ॥
हमलोग बहुत दिनसे तुम्हें जान रहे हैं।
तुम नन्दके बेटा नहीं यह मान रहे हैं" ॥ ३३ ॥

तब कंस उठा बोल, कि "मत देर लगाओ।
राज़ीसे नहीं लड़ते तो उत्पात मचाओ ॥
लो टाँगके बल खींच इन्हें बलसे घुमाओ।
नभ ओर उछालो, कहो पर्वतपै गिराओ ॥
अब ग्वाल करो चूर, करो नन्दको क़ैदी।
हर एकको दो पीठमें दस-पांच लबेदी (४)" ॥ ३४ ॥

---

(१) मग—रास्ता।
(२) तोसल—कंसका एक पहलवान।
(३) रज़ा—अनुमति, आज्ञा।
(४) लबेदी—छड़ी, बेंत।

यह सुनतेही बलरामका चेहरा तमक आया।
ललकारके निज तेहसे यौं बैन सुनाया॥
"हाँ,—देखो अगर नन्दके तन कर भी छुवाया।
या मेरे सखाओंको अगर नेक सताया॥
जाने रहो, बस खेल बिगड़ जायगा सारा।
कूटेंगे तुम्हें, मारेंगे सरदार तुम्हारा"॥ ३५॥

यह सुनतेही चाणूर भिड़ा कृष्णसे आकर।
मुष्टिक (१) भिड़ा बलदेवसे झट टाँग अड़ाकर॥
भिड़ही गये जब दुष्ट, तो निज तेजमें आकर।
लड़ने लगे बलराम-हरी रङ्ग मचाकर॥
होने लगे यौं पेंच कि इक रङ्गसा आया।
बस देखते बनता था जो घमसान मचाया॥ ३६॥

दी टूक * किसीने तो किसीने दिया ग़ोता *।
चपरास * कसी इसने तो उसका चला तोड़ा *॥
बग़लीसे * दबाया तो उधर चढ़ गया कूल्हा *।
लङ्गरमें * लपेटा तो उधर चल पड़ा हफ्ता *॥
धांडीसे * कमरसांटसे * नकतोड़से * बांधा।
दस्तीसे * बेहल्लीसे * गिरह * देके उखाड़ा॥ ३७॥

उस ओर जो चाणूरने अहिफाँससे * मारा।
इस ओर कन्हैयाने उसे कीलसे * काटा॥

---

(१) मुष्टिक—कंसका एक पहलवान।

* ये सब पहलवानोंके दांव-पेचोंके नाम हैं।

मुष्टिकने दिया तोड़ ❀ तो बलदेवने घिस्सा ❀ ।
बेलनसे ❀ लपेटनसे ❀ मचा खूब तमाशा ॥
जो पेंच चला एकका दूजेने हटाया ।
इस भाँतिसे चाणूर वो मुष्टिकको छकाया ॥ ३८ ॥

आखिरको कलाजङ्गसे ❀ चाणूर हुआ चूर ।
दाऊने जटाचीरसे ❀ मुष्टिकको किया धूर ॥
तब कृष्णसे 'सल्ल' (१) आके भिड़ा शक्तिसे भरपूर ।
'तोसल' (१) भिड़ा बलदेवसे तज जङ्गका दस्तूर ॥
जब स्वार्थके वश होता है जगमें कोई इन्सान ।
शर्माता नहीं वह कभी, तज देनेमें ईमान ॥ ३९ ॥

करकोड़से ❀ बलदेवने 'तोसल'को पछारा ।
श्रीकृष्णने धोबीपाटसे ❀ 'सल्ल'को मारा ॥
यह देख अपर वीर सभी खींच किनारा ।
हरएक अखाड़ेसे सटक घरको सिधारा ॥
चिल्ला उठा तब कंस कि, "मारो, धरो, धाओ ।
इन नन्दके बेटोंको अभी मार गिराओ" ॥ ४० ॥

सुनतेही झपट दाऊने दस-पाँचको कूटा ।
गज-झुण्डमें ज्यों सिंह हो अति क्रोधसे छूटा ॥
श्रीकृष्णने यों प्राण झपट कंसका लूटा ।
तीतरपै बड़ा बाज हो ज्यों चावसे टूटा ॥

❀ ये सब पहलवानोंके दाँव पेंचोंके नाम हैं ।

(१) 'सल्ल' और 'तोसल'—कंसके पहलवान ।

बस, एक दपेटामें झपट मंचसे पटका।

बल, तेज, अहंकार, सकल छोड़के सटका ॥ ४१ ॥

जब पापीकी करतूतसे भर जाता है प्याला :
बल, तेज, अहङ्कार, बड़ा क्रोध भी आला ॥
राजत्वका, वीरत्वका संभ्रान्त मसाला '
बुझ जाता है ज्यों प्रेतके दीपकका उजाला ॥

ऐसाही हुआ कंसका बस हाल तनकमें :

बस, कूट भरा कृष्णने दपटाके तनकमें ॥ ४२ ॥

थोड़ीही कड़ी आँचसे ज्यौं दूध उबल जाय
अत्यन्त तनक तापसे ज्यौं मोम भी गल जाय ॥
थोड़ेही तरणि-तेजसे हिम-राशि पिघल जाय ।
बारूदका ज्यों ढेर तनक आगसे जल जाय ॥

उड़ जाय तनक तापसे काफूरका ज्यों ढेर ।

त्यों कंसके बध करनेमें अति अल्प लगी देर ॥ ४३ ॥

यों कृष्णने सब बालोंको इक पाठ पढ़ाया :
उत्साहसे क्या होता है ? सो करके बताया ॥
फल क्या है महापापका ? प्रत्यक्ष दिखाया ।
'रैयतको सताना नहीं' राजाको सिखाया ॥

जानैगा सो मानैगा, न मानैगा, सो जानै ।

है ईश-नियम ऐसाही, क्या 'दीन' बखानै ? ॥४४॥

क्षात्रत्व है क्या वस्तु? कहाँ और किधर है?
वीरत्व दिखा सकता है, वह कौनसा नर है?
है मूल (१) कहाँ वीरकी और कैसा हुनर है?
सुरपुरसे है आता कि धरा-धाममें घर है?
हूँ आज तुम्हे ऐसा ही मैं बात बताता।
तुम भी तो जरा जाँच लो, क्या सत्य है आता ॥ १ ॥

इतिहासके पन्नोंको उलट-फेरके देखो।
संसारके वीरोंके सकल काम परेखो ॥
परताल करो, जाँच करो, ध्यानसे लेखो।
तब अन्तमे आता है यही एक सरेखो (२) ॥
माताहीकी निज गोद सकल गुणकी धरा है।
माताहीकी शिक्षामें सकल तत्त्व भरा है ॥ २ ॥

माताएँ अगर चाहें तो यह देश सुधर जाय।
यह देश सकल फिर भी विकट वीरोंसे भर जाय ॥
यह दीन-दशा हिन्दकी जानें न किधर जाय।
फिर हिन्दके बल-तेजसे संसार हहर जाय ॥
माताओंकी इच्छापे निर्भर है सकल बात।
माताओंकी शिक्षाहीसे है हिन्दकी कुशलात ॥ ३ ॥

---

(१) मूल—जड़। (२) सरेखो—निश्चय।

माताहीकी शिक्षासे लखनलाल हुए वीर ।
अर्जुन भी हुए माताकी शिक्षाहीसे रण-धीर ॥
षटमुख भी हुए माताकी इच्छाहीसे दल-चीर ।
अनिरुद्धकी हिम्मत भी है सब माताकी तदबीर ॥
सामन्त, पृथीराजके थे कन्ह ओ बैमास ।
माताओंकी शिक्षाही थी इनकी भी सकल आस ॥ ४८ ॥

थे वीर बनाफर जो युगल युद्धके सरदार ।
रहते थे महोबामें जो परमालके दरबार ॥
है नाममें जिनके भरा वीरत्वका भंडार ।
सुनतेही हुआ करता है क्षत्रित्वका सञ्चार ॥
आल्हा था विकट वीर तो ऊदल भी था रण-वीर ।
माताहीकी शिक्षासे बने थे ये विकट वीर ॥ ४९ ॥

दक्षिणमें शिवाजी जो हुआ वीर मराठा ।
जिसने कि मुसल्मानोंको है खूब छकाया ॥
चम्पतका जो था पुत्र छतरसाल बुंदेला ।
वीरत्वमें हो गुज़रा है इक आप अकेला ॥
माताओंकी शिक्षाहीसे ये वीर बड़े थे ।
माताओंकी इच्छाहीसे मुगलोंसे लड़े थे ॥ ५० ॥

वर वीर बुनापार्ट (१) जो यूरुपमें हुआ है ।
यूनानका वर-वीर सिकन्दर जो सुना है ॥

---

(१) बुनापार्ट—यूरोप-विजयी नेपोलियन बोनापार्ट ।

नोट—सम्राट् पृथ्वीराज, नेपोलियन बोनापार्ट और सिकन्दर बादशाहकी सचित्र जीवनियाँ हमारे यहाँसे अवश्य मँगा देखिये ।

ईरानमें प्रख्यात जो रुस्तमकी कथा है।
जापानके टोगोने जो वीरत्व किया है॥
माताओंने निज करसे इन्हें वीर बनाया।
कर सकती हैं मातायें, वही करके दिखाया॥ ७॥

अब और अधिक नाम सुवीरोंके गिनाना।
है मेरे निकट व्यर्थका बकवाद बढ़ाना॥
सिद्धान्त है बस एक यही तुमको बताना।
लो जाँच अगर इससे हो कुछ झूठ बहाना॥
माताहीकी इच्छापै है वीरत्वका आधार।
माताहीकी शिक्षा पै है क्षत्रित्वका सब भार॥ ८॥

सीतासी सती नारिको जब रामने टाला।
इक मूढ़के कहनेसे उसे घरसे निकाला॥
वाल्मीकिके आश्रममें रही जाके व बाला।
सहने लगी अति धीरसे दुख, दर्द, कसाला॥
थी गर्भवती, रहती महा शोक-सताई।
उस वक़्तमें अभिलाष यही चित्तमें आई॥ ९॥

"हे ईश !! अगर पुत्र हो इस गर्भसे पैदा।
संसारके योधाओंमें हो वीर बलाका॥
यशधारी, महा तेजसी, रण-खेलमें बाँका।
हुङ्कार सुने जिसकी पड़े रणमें सनाका॥
वीरत्वसे बस मेरे कलेजेको जुड़ावे।
निज बापको भी एक दफा खूब छकावे॥ १०॥

निर्दोष मुझे रामने जङ्गलमें निकाला।
देखी न दशा मेरी न कुछ मेरा कसाला॥
कहनेमें लगे उनके सुमित्राके भी लाला।
यश मेरे पिता-वंशका कुछ देखा न भाला॥
हे ईश! सुअन दे, जो इन्हें खूब छकावै।
वीरत्वका है गर्व इन्हें, उसको घटावै" ॥ ११॥

इस नित्यकी इच्छाका असर गर्भपै भरपूर।
पड़ने लगा, बढ़ने लगा मुख औरही कुछ नूर॥
साहस बढ़ा, धीरज हुआ, आलस्य गया दूर।
वन-कष्ट समझने लगीं सीताजी महज़ धूर॥
है वीर सुअन गर्भमें जननीके जब आता।
इस भाँतिके सब चिह्न है प्रत्यक्ष दिखाता॥ १२॥

पैदा हुए दो पुत्र महा तेजके भण्डार।
थे भानुके दो विम्ब किधौं अग्निके दो सार॥
करने लगीं सीताजी बड़े छोहसे संभार।
मुनिराज भी करने लगे उन दोनोंपै अति प्यार॥
मुनिराजने अति शुद्ध कुलाचार कराया।
'कुश' एकका, 'लव' दूसरेका नाम धराया॥ १३॥

सीताके तो ये थेही युगल आँखके तारे।
मुनि-शिष्य भी माने थे इन्हें प्राण-पियारे॥
इस भाँति बरस पाँच बहुत शीघ्र गुज़ारे।
फिरने लगे आश्रममें विकट तेजको धारे॥

वन-जन्तु सभी नाचके थे, इनको रिझाते।
पक्षी भी मधुर तानसे निज गान सुनाते ॥ १४ ॥

"तुम पुत्र हो क्षत्रानीके, सुनलो मेरे प्यारे !
निमि-वंशके नाती हो तो रघुवंशके बारे ॥
क्षत्रीके विकट धर्म हैं सब कर्म तुम्हारे।
रहती हूँ इसी आससे निज प्राणको धारे ॥

देखूँगी तुम्हें जब कभी वीरत्वमें आला।
तब दिलसे निकल जायगा सब कष्ट-कसाला ॥ १५ ॥

दीनोंपै दया, सबसे हया, दुष्टको दरना।
दम्भीके दबानेमें कभी देर न करना ॥
आवे जो शरण, उसको कभी भी न निदरना।
यह धर्म है क्षत्रीका इसे ध्यानमें धरना" ॥

नित दोनोंको सीताजी यही पाठ पढ़ातीं।
पर किनके सुअन हो, न कभी साफ बतातीं ॥ १६ ॥

"तलवार, तबर, तीर खिलौने हैं तुम्हारे।
कोदण्डकी टङ्कार भी इक राग है प्यारे ॥
रण-भूमि सुथल खेलका है बापके द्वारे।
नर-मुण्ड हैं सब गेंद, रहो चित्तमें धारे" ॥

नित दोनोंको सीताजी यही सीख सिखातीं।
भयभीत न हों जिससे वही काम करातीं ॥ १७ ॥

मुनि-धामकी बरकतसे सभी जन्तु बनैले।
आश्रममें भरे रहते, न थे चित्तके मैले ॥

त्यौं कीट पतङ्ग भी सभी खूब विषैले।
आश्रममें फिरा करते, बने मोमके थैले॥
युग-भ्रात इन्हीं संग सदा खेल मचाते।
खुद खाते जो फल-मूल सो उनको भी खिलाते॥ १८॥
सिंहोंको पकड़ कान तमाचे भी लगाते।
शूकरके पकड़ दाँत कभी बलसे हिलाते॥
सर्पोंको पकड़ खेलमें कोपीन बनाते।
रीछोंको पकड़ मातुके ढिग लाके नचाते॥
माता भी बड़े प्रेमसे कुछ उनको खिलाती।
"अब जाने दो बेटा इन्हें," यह कहके छोड़ाती॥ १९॥
माताका यही धर्म है, यौं पुत्रको पालै।
'भय' वस्तु है क्या, भाव न यह चित्तमें डालै॥
भयभीत हो बालक तो तुरत भयको निकालै।
उत्साहको तज अन्य कभी बात न चालै॥
तब पुत्र हुआ करते हैं वीरत्वमें बाँके।
उत्साह भरे, बलके विकट, घोर लड़ाके॥ २०॥
यौं हो गये जब बाल युगल सोला बरसके।
भीजी मसैं और करने लगे युद्धके चसके॥
लीलाहीमें भुज-दण्ड निरखते कभी हँसके।
वन-जन्तु पकड़ लाते कभी खोहमें धँसके॥
तब जान लिया सीताने, हैं पुत्र मेरे शूर।
सब खेद गया, दिलमें हुआ मोद भी भरपूर॥ २१॥

जब रामने हय-मेधका सामान रचाया।
तजि अश्वको, रक्षाके लिये दलको पठाया॥
उस दलने विकट युद्धसे वीरोंको हराया॥
और रामके साम्राज्यका जय-घोष बजाया॥
हर ओर यही शोर पड़ा, 'राम हैं सम्राट'।
माने न जो बस पड़ती थी उसपर ही विकट काट॥ २२॥

मुनि-धाम निकट जब कि वही अश्व सिधारा।
जय-पत्र बँधा घोड़ेके सिर लवने निहारा॥
"है! हम भी तो क्षत्री हैं!"—यही भाव सँवारा।
जय-घोष सुने मुख हुआ निर्धूम अङ्गारा॥
हमको तो अभी रामने जीता नहीं रनमें।
सम्राट बना जाता है क्या सोचके मनमें?॥ २३॥

माताजी बताती हैं हमैं क्षत्रीके बालक।
कहती हैं पिता अब भी हैं निज देशके पालक॥
फिर कौन हुआ 'राम' य क्षत्रित्वका घालक?
सम्राट्‌ही बनता है, जो निज तेजका चालक॥
जीतेही हमारे जो बनै राम महाराज।
क्षत्रित्वके अपमानका है कौनसा फिर काज॥ २४॥

"घोड़ेको पकड़ आज अभी खेल मचाऊँ।
दल पीटके, माताको यहाँ लाके दिखाऊँ॥
मातासे पता लेके, निकट बापके जाऊँ।
चरणोंमें नवा शीश विनय-वाद सुनाऊँ॥

आनन्द सहित बापको सम्राट बनाऊँ।
यों क्षत्रि-सुअन होनेका आनन्द मनाऊँ ॥ २५ ॥

निज बाहुके बल जो न धराशीश कहावै।
निज गुणसे न निज बापको सम्मान दिलावै॥
नित भोरही रैयतसे न निज नाम रटावै॥
रिपु-नारिका हियरा न सुबह-शाम कँपावै॥

वह व्यर्थ है क्षत्रित्वको बदनाम कराता।
माताको है दस मास वृथा भार ढोवाता" ॥ २६ ॥

यह सोचके, झट दौड़के, उस अश्वको पकड़ा।
ज़ंजीरसे नज़दीकके इक पेड़से जकड़ा॥
धनु तान खड़ा हो गया उस पन्थमें अकड़ा।
बस, अड़ गया श्रीरामके वीरत्वका छकड़ा॥

'हाँ, आगे बढ़ो, मारो, धरो, अश्वको लो छोर'।
ऐसा हा मचा फ़ौजके हर चार तरफ़ शोर ॥ २७ ॥

इक वीरने बढ़ आगे कहा, "सुनता है मुनि-बाल!
घोड़ेको पकड़ क्यों तू बुला लेता है निज काल?
मुनि-बाल समझ तुझको न मारैंगे लखनलाल।
तू छोड़ दे घोड़ेको, न ले जानपै जञ्जाल॥

इस खेलकी धनुहीसे न कुछ काज सरैगा।
मुनि-बाल हो भूपालसे तू कैसे लरैगा?" ॥ २८ ॥

'मुनि-बाल समझता है तो ले युद्धकी आशीश'।
यों कहके दिया तीर तो फ़ौरनही उड़ा शीश॥

यह देखके फिर आगे बढ़ा और भी इक कोश ।
निज भावसे डरवाने लगा काढ़के निज खीश ॥
इक तीर दिया लवने हुआ होश ठिकाने ।
हर ओरसे सब दौड़ पड़े वीर सयाने ॥ २९ ॥

इक ओरसे अङ्गद व हनूमान जो धाये ।
नल, नील, द्विविद एक तरफ़ आके तुलाये ॥
इक ओरसे सुग्रीवने कुछ पैर बढ़ाये ।
रिक्षेश भी इक ओरसे दल बाँधके आये ॥
हर चार तरफ़ लवके लगे फौजके मेले ।
ज्यों आगको घेरा चहैं बारूदके ढेले ॥ ३० ॥

हनुमान व अङ्गदको पवन बाणसे झेला ।
गिरि-बाणसे नल, नीलको पीछेको पछेला ॥
सुग्रीवको रवि-बाणका ऐसा दिया ठेला ।
किष्किन्धामें दिखलाई पड़ा उनका झमेला ॥
रिक्षेशकी सेनामें अगिन-बाण चलाया ।
जलने लगे सब रीछ तो "दैया रे" मचाया ॥ ३१ ॥

लंकेशने तब बढ़के विकट मार मचाई ।
उनकी भी सकल सेन पवन-सरसे उड़ाई ॥
इस भाँतिसे जब हो चुकी सेनाकी सफाई ।
बाक़ी रहे शत्रुघ्न, लखन, दोनोंही भाई ॥
उस ओरसे दो काका थे इत एक भतीजा ।
सब देखें हुआ ऐसे विकट रणका नतीजा ॥३२॥

शत्रुघ्न, लखनलाल जो थे बाण चलाते।
हो जाते सकल फूल इधर आतेही आते॥
इस ओरसे लव तानके धनु तीर चढ़ाते।
वे होते सकल फूल उधर जातेही जाते॥

तब दोनों तरफ वीरोंने देखा य अजब हाल।
झल्लाये विकट क्रोधसे, क्या मायाका है जाल॥ ३३॥

तब होके सजग लवने विकट बाण चलाया।
शत्रुघ्नको बेहोश किया भूमि गिराया॥
यह देख, लखनलालको यौं कोप समाया।
बस, एक विकट सरसे तुरत लवको सोलाया॥

इतनेमें ख़बर पाते ही कुश दौड़के आये।
ललकार लखनलालको यौं बैन सुनाये॥ ३४॥

"क्षत्री नहीं तुम, भिड़ते हो बच्चोंसे समरमें।
रण देखे नहीं तुमने, रहे हो सदा घरमें॥
लो, देख लो क्षत्रीका भी बल एकही सरमे।
यह बाल न था पूरा अभी युद्ध-हुनरमे"॥

यौं कहके बड़े क्रोधसे इक बाण चलाया।
सह-सेन लखनलालको कौशलमें गिराया॥ ३५॥

लखि हाल य सब रामको आश्चर्यसा आया।
दै सैन भरतलालको रण हेत पठाया॥
उनका भी वही हाल हुआ जैसा बताया।
तब रामने खुद आके विजय-शङ्ख बजाया॥

सुनतेही विजय-नाद युगल भ्रात भी चलकर।
रण-भूमिमें आ डट गये हर भाँति सँभलकर ॥ ३६ ॥

जब रामने देखा कि युगल भ्राता हैं वारे।
हैं रूपके निधि, नैनको लगते हैं पियारे॥
मुख दोनोंके लख पड़ते हैं अनुहार हमारे।
इक स्याम है, इक गौर है, धनु-बाण हैं धारे॥

अत्यन्त विकट तेजसे चेहरे हैं चमकते।
ज्यों अग्निके दो पिण्ड हों निर्धूम दमकते॥ ३७॥

कोपीन कसे, सिरपै जटा-जूट बनाये।
मृग-चर्म-वसन धारे धनुष-बाण लगाये॥
गोधाके कठिन चर्मके दस्ताने चढ़ाये।
दो तूण कसे, क्रोधसे कुछ नैन रँगाये॥

रस रौद्र सहित वीरका मुनि-भेष बनाकर।
ज्यों शान्त लिवा लाया हो मनसिज पै चढ़ाकर॥ ३८॥

यह भेप अजब देखके छकसे रहे श्रीराम।
पूछा कि "नहीं तुमने सुना मेरा कभी नाम?
क्या जानते हो मैंने किया है जो विकट काम?
रावणसे विकट वीरको पठवा दिया यम-धाम?

मुनि-बाल हो, तुम; जाओ करो वेद-रटाई।
रण-भूमिमें मिलती नहीं मुनियोंको बड़ाई॥ ३९॥

कर डाला जो कुछ उसको अभी माफ करूँगा।
मुनि-बाल समझ दोप न कुछ मनमें धरूँगा॥

मख-साजसे तुम लोगोंके आश्रमको भरूंगा।
इतने पै न मानोगे तो फिर दण्ड करूंगा ॥
हठ करके वृथा मातुको मत शोक विसाहो।
बटु-रूपमें हो अपना बटुत्त्र-धर्म निबाहो" ॥४०॥

"मुनि-बाल समझ धोखा न खा जाना भला राम !
हम जानते हैं तुमने जो लङ्कामें किया काम ॥
इक विप्र बिचारेको बधा, पाया बड़ा नाम।
बस, इतनेपै बन बैठे हो वीरत्वके निज धाम ?
क्षत्रानी-कुमारोंके जरा सामने आओ।
तज धर्म, दया युद्धमें क्षत्रित्व दिखाओ ॥ ४१ ॥

अब तक तो चराये हैं सदा रीछ व बानर।
मारे है समर-भूमिमें पापीश निशाचर ॥
क्षत्र के विकट बाहु नहीं देखे भयङ्कर।
मुनियोकी खुशामदसे बने फिरते हो नर-वर ॥
लड़ना हो तो लड़ जाओ, नहीं घरको सिधारो।
डरवानेके हित मुफ्त न यों शेखी बघारो" ॥ ४२ ॥

जब रामने देखा, कि नहीं मानते कुछ बात।
समझे, कि सहजहीमें इन्हें करके अभी घात ॥
संसारको दिखलाऊँ नई और करामात।
मख पूर्णके दिन भी फकत शेष हैं छः-सात ॥
"कहना नहीं सुनते हो तो लो, युद्धही कर लो।
दिखलाके युवक-जोशको निज चित्तको भर लो" ॥ ४३ ॥

सँग बापके पुत्रोंका जो यह युद्ध हुआ है ।
भारतके सभी लोगोंको मालूम कथा है ॥
यह सोचके विस्तार नहीं मैंने किया है ।
बस, याद दिलानेके लिये इतना लिखा है ॥
घटना है अजब, सीख है अनमोल सिखाती ।
वीरत्व किसे कहते हैं ? यह तत्व बताती ॥ ४४ ॥

इस युद्धसे श्रीरामने बाज़ी नहीं पाई ।
सीताहीने तब बीचमें पड़ सन्धि कराई ॥
सब सत्य जो थी बात, सो पुत्रोंको बताई ।
और रामको निज सत्वकी सब बात लखाई ॥
माताहीकी इच्छासे व शिक्षासे बने वीर ।
जगदीशको भी डालें छका ऐसे हों रणधीर ॥ ४५ ॥

माताके विचारोंका असर गर्भ-समयमें ।
बच्चोंको सदा रखना लड़कपनमें अभयमें ॥
फिर उनको निपुण करना कुलाचार-निचय (१) में ।
सानन्द मदद देना उन्हें उनकी विजयमें ॥
निज वंशके पुरुषाओंका वीरत्व सुनाना ।
सुत वीर जो चाहो; तो य पंचाम्बु पिलाना ॥ ४६ ॥

(१) निचय—समूह ।

हूँ आज सुनाता तुम्हें उस वीरकी करतूत।
जो रूपमे रतिनाथ था, पौरुषमें था पुरहूत॥
श्रीकृष्णका था भानजा पारथका प्रथम पूत।
सम्राट परीक्षितका पिता कञ्जका कलबूत॥
निज वंशका आधार, सुभद्राका दुलारा।
सौभाग्यवती उत्तराका प्राण-पियारा॥ १॥

जिस वक्त कि भारतका महा युद्ध हुआ है॥
संसारमे जिसकी बड़ी मशहूर कथा है।
उस वक्त पै इस वीरने जो काम किया है॥
चौंके न उसे सुनके भला किसका हिया है?
बस, आज वही दृश्य हूँ मैं तुमको दिखाता।
कर सकते हैं क्या वीर युवक, यह हूँ बताता॥ २॥

मानो, कि निकट सामने इक वीर खड़ा है।
सब युद्धके सामानसे नख-शिखसे जड़ा है॥
कुछ क्रोधका आभास भी नेत्रोंमें पड़ा है।
वीरत्वका उत्साह भी सीनेमें अड़ा है॥
भुज दण्ड फड़कते हैं सो पग आगेको बढ़ते।
"जय धर्मकी" ये शब्द स्वयं कण्ठसे कढ़ते॥३॥

इस वीरने यौवनमे अभी पाँव धरा है।
पर, वीर-उचित जोशसे भर-पूर भरा है॥
वीरत्व दिखानेकी इसे ऐसी त्वरा(१) है।
कौरवके वड़े दलकी न परवाह ज़रा है॥
मातके मर्म करते भी रख-थलको [illegible] है।
छालों सा ज्यों-त्योंसे छुटा लाया गला है॥ ४॥

उठ दाहिना कर चाहता है मूँछ पै दे ताव।
मूँछैं ही नहीं जानके सङ्कोचका है भाव॥
डाला गया है हालहीमे प्रेमका उलझाव।
थोड़ाही सा बस देखा है संसारका बरताव॥
निज तेजका कुछ भाग स्वपत्नीको दिया है।
संसारका बस एक यही काम किया है॥ ५॥

इस ज़ोरसे जाता है, चलै जैसे कोई तीर।
आओ, चलैं, देखैं तो कहाँ जाता है यह वीर॥
लो देखो, खड़ा हो गया, मुख-भाव है गम्भीर।
कहता है, सुनौ "चाचा! करौ एक य तदवीर॥
मैं व्यूहको हूँ भेदता, पीछे मेरे आओ।
जय बोलते उत्साहसे वीरत्व दिखाओ"॥ ६॥

क्या जानते हो, किसने. य क्यों व्यूह रचा है?
क्यों पाण्डवोंकी सेनमें हलकम्प मचा है?
है नाम "चकाबू"(२) सभी व्यूहोंका चचा है।
श्रीद्रोणका रचनेमें इसे मग्ज़ पचा है॥

(१) त्वरा—जल्दी। (२) चकाबू—चक्रव्यूह।

अर्जुनके सिवा तोड़े इसे कौन सुभट है ?

विश्वास था सबको, कि यह घटनाही अघट है ॥ ७ ॥

संसप्तकोंको जीतने अर्जुन हैं सिधारे ।
यह जानके कुरु-राज गया द्रोणके द्वारे ॥
"गुरुदेव ! सकल लाज है अब हाथ तुम्हारे ।
बस, आज कोई व्यूह रचो हेत हमारे ॥

जिससे कि महावीर कोई शत्रुका मारें ।

या भीमको, या धर्म-तनयहीको पछाड़ें ॥ ८ ॥

इस बातपै श्रीद्रोणने यह व्यूह बनाया ।
और युद्धके हित धूमसे धौंसेको बजाया ॥
इस व्यूहको लख भीम भी अत्यन्त डराया ।
सब भूल युधिष्ठिर भी गये धर्म-अमाया ॥

बिल सांपका था खोजता, (१) कहते हैं नकुल और ।

सहदेवके कर कूच गये देवता और पीर (२) ॥ ९ ॥

घबराये हैं सब चाचा य अभिमन्युने जाना ।
उस वक्तका यह हाल है जो पहले बखाना ॥
अब व्यूहके भेदनका सुनाता हूँ फ़िसाना (३) ।
क्या हाल हुआ मध्यमें, यह भी है सुनाना ॥

पर, हाल सुनाता हूं विकट वीरका यारो ।

धड़कें न कहीं अपने कलेजोंको सँभारो ॥ १० ॥

---

(१) साँपका बिल खोजना—डरकर रक्षाका स्थान खोजना ।
(२) देवता और पीर कूच कर गये—होश-हवास जाते रहे ।
(३) फ़साना—क़िस्सा-कहानी ।

मुख-द्वारपै वरवीर जयद्रथ ही डटा था।
जो शिवका कृपा-पात्र था और छैल छँटा था॥
रणमे जो किसी काल, किसीसे न हटा था।
सब हिन्दमें वीरत्वका यश जिसके पटा था॥
अर्जुनके सिवा कोई उसे मार न सकता।
हुंकार सुने सिंह भी जंगलमें दबकता॥ ११॥

आते हुए अभिमन्युको जब इसने निहारा।
"हे बाल! खड़ा रह नहीं" यों डटके पुकारा॥
"अब आगे धरा पैर तो यम-धाम सिधारा।
मातासे सुना ही नहीं बल-तेज हमारा?
बल, तेज मेरा जानता है तेरा सगा बाप।
वैरीके लिये वज्र हूँ था शिवका महा शाप"॥ १२॥

तब रोषसे अभिन्युने यों बैन उचारा।
"मै जानता हूँ, सिन्धु-धनी! तेज तुम्हारा॥
तुमहीको तो था मेरा विमाताने* पछारा।
जब उसके पकड़नेको था कर अपना पसारा॥
हट जाओ, नहीं जाओगे जो जानसे मारे।
कहता हूं इसी हेतु, कि फूफा हो हमारे"॥ १३॥

सुनते ही जयद्रथने शरासनको सँभारा।
तीखासा विकट बाण भी तरकससे निकारा॥

---

* पांडवोंके वन-वास समयमें, एक बार जयद्रथ द्रौपदी-हरणके हेतु उनके स्थानपर गया था। उस समय द्रौपदीने उसे तीन बार पटका था।

इतनेहीमें अभिमन्युने बढ़ उसको पछारा।
और आगे बढ़ा धूमसे उत्साहका मारा॥

अभिमन्युको तो वीर जयद्रथ न सका रोक।
पर, अन्य सुभट जा न सके साथमें, हा शोक !॥ १४॥

सहदेव, नकुल, भीम, युधिष्ठिरसे महावीर।
और इनके तरफ़वाले विकट वीरोंकी सब भीर॥
हर भाँतिसे उद्योग किया, जायें कटक चीर।
पर, वीर जयद्रथसे चली एक न तदबीर॥

अभिमन्यु अकेलाही चकाबूमें सिधारा।
बालूसे भला रुकता कहीं पर्वतो नारा ?॥ १५॥

फिर दूसरे, फिर तीसरे, फिर चौथेको तोड़ा।
फिर पाँचवें, छठवेंको भी, सप्तमको न छोड़ा॥
जो सामने आया, उसे शर-जालसे फोड़ा।
इसको यहाँ पटका, तो वहाँ उसको मरोड़ा॥

यों सात अगम द्वार चकाबूके किये पस्त।
ज्यों कज-समूहोंको दले पील कोई मस्त॥ १६॥

जब मध्यमें पहुँचा तो विकट वीर झुके यों।
इक शल्लकीपर आके झुकें शेर बहुत ज्यों॥
ज्यों वीर झुके और भी उत्साह बढ़ा त्यों।
यों युद्ध लगा करने, कि सब बोल चले क्यों॥

जो सामने आता, उसे बस भूमि चूमाता।
या आपही वह भागके निज पीठ दिखाता॥ १७॥

आया जो दुशासन तो उसे खूब छकाया।
मुँह फेर सुयोधनको भी रण-थलसे भगाया॥
गजकेतु* महामेघको* यम-धाम भँकाया।
सितकेतुको* हनि, अश्वध्वजाको भी गिराया॥

मगधेश-सुवन*मार, सुवर्चाके*किये खण्ड।
पर, बीतने पाये हैं अभी सिर्फ युगल दण्ड॥ १८॥

रिपुजीतको* मारा, तो तुहुण्डलको* पछारा।
फिर भानु* सहित पंच महावीरोंको मारा॥
फिर चन्द्रध्वजा* वीरको रणखेतमें पारा।
कोसलका धनी* भिड़ते ही यमधाम सिधारा॥

कुरु-राज-तनय वीर लक्ष्मणको भी गिराया।
सुत एक दुशासनका भी यम-लोक पठाया॥ १९॥

उत्साह-सहित क्रोधसे अभिमन्यु तपा जब।
चंडांशु सरिस तेजसे अति लाल हुआ तब॥
अभिमन्युकी फुरतीको लखे बोल उठे सब।
"गुरुदेव! बचाओ हमैं, संकट है महा अब॥

यह चक्रसा है घूमता और बाण चलाता।
इसका तो कोई अंग नहीं दृष्टिमें आता॥ २०॥

कब तीर कढ़ा और चढ़ा, किसपै चलाया?
किस ओर गया, किसके लगा, किसको गिराया?

---

* ये सब कौरव-सेनाके महाबली योद्धा थे।

यह काम किसीके न कभी दृष्टिमें आया ।
सब देखते हैं वीरोंका होता है सफ़ाया ॥
फल-मात्र फ़क़त शत्रुका देता है दिखाई ।
इतनेसे समझ लीजिये फुरती व सफ़ाई" ॥ २१ ॥

इस भाँतिसे अभिमन्यु लड़ा याम अढ़ाई ।
आधीसे अधिक सेनकी कर डाली सफ़ाई ॥
कुरु-राजके तब ध्यानमें यह बात समाई ।
"साहससे इसे जीतना सम्भव नहीं भाई ॥
बस, सप्त-रथी मिलके इसे लक्ष बनावें ।
जिस भाँतिसे हो इसको अभी भूमि चुमावें" ॥ २२ ॥

बस, कर्ण, दुशासन व कृपा और सुयोधन ।
निज पुत्र-सहित द्रोण-गुरू जो थे तपोधन ॥
छल-छन्दका भंडार जो शकुनी था जलेतन ।
ये सात रथी करने लगे वार दनादन ॥
यों एकपै ये सात रथी, हाय रे अन्याय !
संसारमें क्या स्वार्थही है न्याय ! हरे हाय ! ॥ २३ ॥

यह देखके अभिमन्यु तनक भी न सकाया ।
उत्साह हुआ दूना बड़े जोशमें आया ॥
कहने लगा, "यह वक्त बड़े भाग्यसे पाया ।
धीरजकी परीक्षाका समय हरिने दिखाया ॥
गुरु लोग हैं मेरे, इन्हें करतूत दिखा दूँ ।
आचार्यके कर वीरोंमें निज नाम लिखा लूँ" ॥ २४ ॥

यह सोच, लगा वेगसे शर-जाल चलाने ।
हर एकका शर बीचहीमें काट गिराने ॥
तन छेदके सातोंके किये होश ठिकाने ।
चिल्लाने लगा कोई लगा कोई पराने ॥
तब बोल उठा वीर, कि "मुझसे न अड़ोगे !
फिर मेरे पिता संग कहो कैसे लड़ोगे ? ॥ २५ ॥
गुरुदेवजी ! गुरुदक्षिणा तो लेते ही जाओ ।
निज शिष्य-सुवन जानके सम्मान बढ़ाओ ॥
चाचाजी ! खड़े होके ज़रा ज़ोर दिखाओ ।
यों भागके साहस न भतीजेका घटाओ ॥
पहलाही है उत्साह मेरा भंग न कीजै ।
कायरका भतीजा हूं, य बदनामी न दीजै" ॥ २६ ॥
शकुनीसे कहा टेरके,—"बाबाजी ! सुनो बात ।
क्यों जाते हो भागे ? सहो दो-चार तो आघात ॥
रण-विज्ञ समझता था बड़ा मैं तो तुम्हें तात ।
पर, कैसे जुवारीसे हो कुछ रणमें करामात ?
अबतक तो मेरे तनमें पसीना नहीं आया ।
तुम सातोंने चों बोलके उत्साह घटाया" ॥ २७ ॥
फिर सातों रथी जुड़के लगे करने विकट मार ।
अभिमन्यु बचाने लगा फुरतीसे सकल वार ॥
यों वार बचाते हुए तजते हुए शर-धार ।
बाणोंसे दिया छेद सकल वीरोंको ललकार ॥

वर-वीर करण, द्रोण, दुशासनको भगाया।
कुरु-राजको, शकुनीको भी अत्यन्त छकाया ॥ २८ ॥

यों सात दफा सप्त-रथी मार हटाये।
और सात दफा जीतके जय-नाद सुनाये ॥
गज, अश्व, रथी मारके यों धुर्रे उड़ाये।
हर वीरके चित भयके विकट भूत समाये ॥

सर्वत्रही अभिमन्यु उन्हे पड़ता दिखाई।
सर्राटे विकट बाणोंके पड़ते थे सुनाई ॥ २९ ॥

हर ओर मचा शोर, कि "अब कौन बचावे ?
आचार्यसे यह हाल विकट कौन सुनावै ?
वरवीर कृपा, काहे कृपा मनमें न लावै ?
दुर्धर्ष करण आज न क्यों ज़ोर दिखावै ?

बालक य किया चाहता है, सत्य प्रलय आज।
हे द्रोण ! बचाओ हमें, त्राहि कृपाचार्य !" ॥ ३० ॥

यों दलको विकल देख, दुशासनने सँभारा।
फिर सातोंने मिल उसपै किया वार करारा ॥
धनु तान दुशासनने विकट बाण पवारा।
खण्डित हुआ धनु, हो गया बिन अस्त्र विचारा !

तब खींचके तलवार लगा वार बचाने।
उड़-उड़के लगा वीर घमासान मचाने ॥ ३१ ॥

जिस ओर लपक जाता वहीं धूम मचाता।
सिर और भुजाओंका ववण्डर सा उड़ाता ॥

सब वार बचा शत्रुओंको भूमि चुमाता।
किस वेगसे ? वाणीकी समझमें नहीं आता॥
पर, कर्णने शर मारके तलवार उड़ा दी।
सौभद्रको जनु वीरताकी ज्वाल बुझा दी॥ ३२॥

हथियार नहीं हाथसे, बालक है अकेला!
दिन-भरका थका; कैसे करै युद्धमे हेला ?
और सात महावीरोंके तीरोंका है रेला॥
अनुमान करौ पाठको! कैसा है झमेला ?
यह देख, दशा ज़ारसे अभिमन्यु पुकारा,—
"धिक्कार' लायक़ है यह वीरत्व तुम्हारा!॥ ३३॥

रे कायरो! है साफ य अन्याय तुम्हारा।
जब सात दफे मैंने तुम्हें रणमे पछारा॥
हथियार रहित करके मुझे आठवीं बारा।
मारा तो भला कौनसा वीरत्व सँवारा ?
यों करके हा वीरत्वको क्यों दाग़ लगाते ?
क्षत्रित्व मलिन करते नहीं नेक लजाते ?॥ ३४॥

हथियार कृपा करके मुझे एक गहाओ।
फिर वीर-वरो! शौकसे हथियार चलाओ॥
क्षत्रित्वको बदनामीके धब्बेसे बचाओ।
वीरत्व मेरा देख लो, या अपना दिखाओ॥
हथियार-रहित शत्रुपे हथियार चलाना।
वीरत्वकी मर्यादको है साफ मिटाना"॥ ३५॥

यह सुनके सुयोधनने कहा,—"सत्य है ज्ञानी !
बकते हैं मरण-कालमें सब यों ही कुबानी ॥
भूपालोंकी यह नीति नहीं है तेरी जानी ?
जिस भाँति बने शत्रुको कर डालना पानी ॥
भूपाल जो है न्यायको निज अङ्ग लगाता ।
वह राज्यका-सुख खोजनेपर भी नहीं पाता ॥ ३६ ॥
जिस भाँति बने शत्रुको नीचा ही दिखाना ।
सुख-भोगके पथ खूब ही विस्तीर्ण कराना ॥
मित्रोंको भली भाँतिसे डरपोक बनाना ।
गुरुओंका कपट-नीतिसे विश्वास हटाना ॥
अन्यायका वा न्यायका कुछ ध्यान न लाना ।
बस, स्वार्थ ही साधन है फ़क़त भूपका बाना" ॥ ३७ ॥
यों कहके लगे सातों रथी घालने निज तीर ।
हर ओरसे छिदकर हुआ अभिमन्यु विचल धीर ॥
जिस ओरको फिरता था, उधर चोट थी गम्भीर ।
हा ! कैसा विकट दृश्य है, अन्याय है यदुवीर !
तीरोंसे छिदा रणमें य सौभद्रका तन था ।
या वीरताका भानु या सयुक्त-किरन था ॥ ३८ ॥
"हा ! हाय ! पिता ! आज य अभिमन्यु तुम्हारा ।
अन्यायसे रण-भूमिमें यों जाता है मारा ॥
मामाजी ! लखो आज य भानेज तुम्हारा ।
बिन अस्त्र, रथी सातसे यों जाता है मारा ॥

इस कार्यका बदला तुम्हीं कुरु-राजसे लेना।
जो दण्ड उचित हो, इन्हें भरपूर सो देना" ॥ ३९ ॥

अन्याय लखै कौरवोंका भूमि सकानी।
अभिमन्युको निज गोदमें ले, जीसे जुड़ानी!
अन्याय सके देख न जब भानु सुज्ञानी।
मुँह फेरके चादर वहीं तम तोमकी तानी॥

अन्यायदा लख दौड़ी हवा सिन्धुमें गिरने।
जड़ कुण्ड-कवच कटके लगे रक्तमें गिरने॥ ४० ॥

द्रोपण था दुशासनका सुवन एक कुचाली।
लेनेके लिये लोकमें वीरत्वकी लाली॥
गिर पड़नेपै अभिमन्युके सिरपर गदा घाली।
दिखला ही दी निज वंशकी करतूत निराली॥

कायरका यही काम है, मरतेको सताना।
ललकरन वीरोंके निकट पूंछ दबाना ॥ ४१ ॥

हे वीर-प्रवर पार्थ-सुवन! तुमको नमस्कार।
सौ वार नमस्कार, सहस बार नमस्कार॥
तुम मारे गये युद्धमें, शोकित हुआ परिवार।
पर काम किया ऐसा, कि यश गावैगा संसार॥

कुरु-राजका अन्याय व वीरत्व तुम्हारा।
कल्पान्त तलक होंगे छवाखोंका सहारा ॥ ४२ ॥

लो, आज सुनाता हूँ तुम्हें एक कहानी।
शायद हो तुम्हारी भी सुनी, समझी व जानी॥
'भारत' जो है इस हिन्दके गौरवकी निशानी।
उसमेंही लिखी है य कथा व्यास-बखानी॥
क्या धर्म है माताका? पिता कहते हैं किसको?
क्या वस्तु है वर-वीर सुअन? जानोगे इसको॥ १॥

वन-वास समय पार्थने, कुल-रूपको भारी।
ब्याही थी "मनीपूर"में * इक राजकुमारी॥
वादा था यही, "होगी जो सन्तान तुम्हारी।
इस राज्यके हित होगी व सन्तान हमारी॥
उसपरही धरा जायगा इस राज्यका सब भार।
मानेंगे तुम्हे सिर्फ कुमारीहीका भर्तार"॥ २॥

इस राजकुमारीका था 'चित्राङ्गदा' नाम।
अर्जुन सा सु-पति पाके लहे पूर्ण मनोकाम॥
इसकाही सुअन था, जो था वीरत्वका निज धाम।
था रूप अतुल, तेज विकट, जैसे हुए राम॥

---

* "मनीपुर"का सम्पूर्ण इतिहास हमारे यहाँ "सेनापति टिकेन्द्रजित-सिंह या मनीपुरका इतिहास"के नामसे छपकर तैयार है। कितनेही सुन्दर सुन्दर-सुन्दर फोटो-चित्र भी दिये गये हैं। दाम सिर्फ २) रुपया।

था 'बभ्रु' सहित नाममें 'वाहनका समावेश।
वीरत्वमें, चरित्रमें अर्जुनका अपर वेश ॥ ३ ॥

झाँ रहते समय और भी इक नाग-कुमारी।
जो प्रेमका भण्डार थी और रूपमे भारी॥
आसक्त हुई पार्थके गुण-रूप निहारी।
अर्जुनने किया उसको भी निज नेहसे नारी॥

था नाम 'अलूपी' न भरी उसकी मगर गोद।
ये दोनों रहा करती मनीपुरमें लह-मोद ॥ ४ ॥

चित्रांगदाके पुत्रको अपनाही सुअन जान।
बभ्रूका किया करती थी अति नेहसे सम्मान॥
अर्जुनने इसे धायका पद देके किया मान।
फिर और किसी देशको बस कर दिया प्रस्थान॥

बभ्रू भी समझता था इसे अपनीही माता।
इसकेही निकट रहता सदा मोद मचाता ॥ ५ ॥

बभ्रू तो इधर पञ्चदशी पाके अवस्था।
नानाकी जगह करने लगा राज्य-व्यवस्था॥
उस ओर युधिष्ठिरने जो हय-मेध* रचाया।
रक्षाके लिये अश्वकी, अर्जुनको पठाया॥

भारीसी विकट सैन लिये पार्थ सिधारे।
बजने लगे हर ओर विजय-यशके नगारे ॥ ६ ॥

---

* इस हय-मेध-यज्ञका हाल हमारे यहाँके 'हिन्दी-महाभारत' में विस्तार-पूर्वक लिखा है। इसमें रंग-बिरंगे १० चित्र भी हैं। दाम सिर्फ ३) रु० है।

जिस वीरने स्वीकार किया धर्मका (१) शासन ।
उसकेही बचाये बचा निज राज्य-सिंहासन ॥
जो आके भिड़े, उनका हुआ ख़ूबही त्रासन ।
रण-भूमिमें पाते थे फ़क़त भूमिका आसन ॥
इस भाँतिसे अर्जुनके विकट बलका पड़ा शोर ।
बस, साफ़ था मैदान, निकल जाते थे जिस ओर ॥ ७ ॥

जब घूमते इस भाँति मनीपूरमें आये ।
बभ्रूने समाचार सकल दूतसे पाये ॥
तब राज्य-उचित भेंटके सामान सजाये ।
निज पूज्य पिता जानके सम्मानको धाये ॥
सह-नीति निकट जाके विनय-वाद सुनाया ।
कर जोड़के सम्मान सहित शीश नवाया ॥ ८ ॥

यह देखके अर्जुनको विकट क्रोधने घेरा ।
बोले कि, "अरे दुष्ट ! नहीं पुत्र तू मेरा ॥
कुछ सूझता है तुझको, कि है दिन कि अँधेरा ?
सम्बन्ध मेरे साथमें क्या आज है तेरा ?
मैं बनके तेरा बाप नहीं आया हूँ इस ठौर ।
मैं तेरा विपक्षी हूँ, ज़रा मनपै कर ग़ौर ॥ ९ ॥

रे दुष्ट ! अगर सत्य सुअन पार्थका होता ।
तब शत्रुको यों शीश नवा मान न खोता ॥

---

(१) धर्म—धर्मराज युधिष्ठिर ।

धिक्कार तेरी मातुको, मुझको दिया ...ता।
यदि जानता, बचपनमें तुझे जलमें डबोता॥
या ऐसे अधम पुत्रका मैं बीज न बोता।
जगमें जो अपुत्रोंका अयश होता तो होता॥ १०॥

क्षत्री है कोई, शत्रुको जो शीश नवावै?
आगमही सुने भेंट लिये, भेंटको धावै?
ईश्वर न करै, ऐसा कु-सुत, गर्भमे आवै।
शूराग्र-गणित बापका जो नाम धरावै॥
क्या तुझको सिखाई है अलूपीने यही बात।
दुष्टाने किया, हाय! मेरे मानपै आघात॥ ११॥

हट जा तू मेरे सामनेसे, मुख न दिखाना।
अर्जुनका सुअन कह, न कभी मुझको लजाना॥
माताने तेरी मुझको छला आज य जाना।
नारीका युवा-कालमें क्या ठीक-ठिकाना?
यदि पुत्र मेरा होता तो रण-साज सजाता।
घोड़ेको पकड़, धीर सहित, युद्ध मचाता॥ १२॥

'तू कहता है, मैं बाप हूँ, तू पुत्र है मेरा।
पर आज तो बन बाप नहीं आया हूँ तेरा?
मैं आज विपक्षी हूँ, तुझे देके दरेरा।
ले जाऊँगा सब कोश तेरा लूट घनेरा॥
भाखेंगे सभी लोग, 'मनीपूरका अधिराज।
अर्जुनका सुअन ...के आधीन हुआ आज'॥ १३॥

'अर्जुनका सुअन शत्रुके आधीन हुआ आज'।
यह सुनना सदा तुझसे कु-पूतोंहीका है काज ॥
यह सुनके मुझे खेदसे आवैगी विकट लाज।
मर जाना पड़ेगा मुझे तजि वीरका सब साज ॥
चित्रांगदा! हा! तूने मेरा मुँह किया काला!
सुत ऐसा अधम धारके क्यों गर्भ न डाला ? ॥ १४ ॥
रे क्रूर! अगर रखता है कुछ वंशका अभिमान।
और चाहता है मुझसे बचैं तेरे अधम प्रान ॥
तो शस्त्र पकड़, साजके वीरत्वका सामान।
उत्साह-सहित युद्धमें कर मुझसे घमासान ॥
तब जानूँगा माता तेरी है मेरी घर-नारी।
नहीं तो पिता कहके मुझे देना न गारी" ॥ १५ ॥
सुन बात अलूपीने, जो थी साथमें आई।
ललकारके बभ्रूको यही बात सुनाई ॥
"हमपर जो महाबाहुने है जीभ चलाई।
यह दोष मिटानेके लिये, कर तू लड़ाई ॥
चित्रांगदाने तुझको जना मैंने है पाला।
करवाता है क्यों बापसे यों मुँह मेरा काला ? ॥ १६ ॥
निज बाहुके बल दोष हमारा य छुड़ादे।
पाण्डवको गिरा भूमिमें, या प्राण लुटा दे ॥
निज हाथसे या मेरा गला धड़से हटा दे।
चित्रांगदाको मारके अपमान मिटा दे ॥

इन बातोंमें जो भावे वही करके दिखा वीर !
पाण्डवके हैं ये बंन, कि अपमानके हैं तीर ? ॥ १७ ॥

क्षत्रानी कोई ऐसे वचन सुन नही सकती।
ये बैन सुने आग है सीनेमें धधकती ॥
पत्नी न अगर होती, तो खुद मैंही धमकती।
यों लड़ती, कि बस बुद्धि न यों इनकी सनकती ॥

निज पुत्रका अपमान, सदाचारमें शङ्का।
क्षत्रानी नहीं सहती य है बात अशङ्का ॥ १८ ॥

सुर पूजके कुन्तीने इन्हे वीर किया है।
निज दूधका बस पाँचवाँ हिस्साही दिया है ॥
तूने तो युगल मातुका सब दूध पिया है।
क्या इनसे भी शङ्का है तुझे, कैसा हिया है ?

तेरे तो दशम अशके सम इनमें है कस-बल।
ललकारके बस युद्धके हित खेतमें अब चल ॥ १९ ॥

हमको भी समझ रक्खा है ज्यों पञ्चभतारी* ।
कीचकने सभा-बीच जिसे लात थी मारी ॥
या वीर दुशासनने पकड़ खींची थी सारी।
करता था जयद्रथ भी जिसे अपनीही नारी ॥

पञ्चाली-स्वपसम* होके अहङ्कार है भारी।
क्षत्रानी सभी सूझती हैं पंचभतारी ॥ २० ॥

---

* 'पंचभतारी' 'पंचाली'—द्रौपदी। इस घटनाका हाल हमारे "हिन्दी महाभारत"में विस्तारपूर्वक लिखा गया है। ३० चित्र भी हैं। दाम ३) रु०

क्या होगया तू वीरके बानेसे पतित आज ?
क्या डर गया तू देखके अर्जुनका विकट साज ?
कहलायेगा तू कैसे मनीपूरका महाराज ?
जब करता है तू जानके यह क्रूर-सदृश काज ?
क्षत्रीही नहीं, जिसमें न वीरत्व न बल हो ।
वह आग नहीं, जिसमें न गर्मी न कड़ल हो ॥ २१ ॥

वह पुत्र नही, माताको अपवाद चढ़ावै ।
माताकी भी सुन गारी न कुछ जोशमें आवै ॥
निज शक्तिको दिखलाके न अपवाद मिटावै ।
उस दोष-लगैयाको न कुछ सीख सिखावै ॥
उस पुत्रसे संसार हो अति शीघ्रही खाली ।
माताके सदाचारकी रक्खे न जो लाली ॥ २२ ॥

ललकार सुने क्षत्री तो यमको नहीं डरते ।
रण-खेलके हित नित्य विनय रामसे करते ॥
देखा नही तुझको कभी अभिमानसे जरते ।
इस भाँति किसी खेलसे भय करके पछरते ॥
बस, आज मुझे अपना तू रण-खेल दिखा दे ।
इस नारको अपवादके हित सीख सिखा दे" ॥ २३ ॥

माताके सुने बैन तो उत्साह भर आया ।
अर्जुनको सजग करके यही बैन सुनाया ॥
"निज पूज्य पिता जानके दर्शनको था आया ।
तुमने तो मेरी माँको बुरा दोष लगाया ॥

रण-खेतमें चलिये तो तुम्हें आज दिखा दूँ।

क्षत्रीका असल पुत्र हूँ, जारज हूँ कि क्या हूँ ? ॥ २४ ॥

पर, याद रखो, द्रोण-तनय मुझको न जानो।
और सिन्धुका अधिराज जयद्रथ भी न मानो ॥
छल करके बधा जिसको, मुझे भीष्म न जानो।
दिव्यास्त्र चलें जिस पै, मुझे कर्ण न मानो ॥

उस वीरका मैं पुत्र हूँ, जो कृष्ण-सखा है।

तुमने न अभी वीर कोई ऐसा लखा है ॥ २५ ॥

तुम जिसके बने फिरते हो यों आज चमूधीश।
वह राज्य भी है सिर्फ मेरे बापकी बख़शीश ॥
लड़ता न मेरा बाप तो होते न धराधीश।
रह जाते युधिष्ठिर भी फकत काढ़े हुए खीश ॥

सम्राट न होते, न य हय-मेध रचाते।

यों भूमि सिंचानेको कहाँ रक्त वे पाते ॥ २६ ॥

क्यों वीर बने फिरते हो ? क्या शक्ति तुम्हारी ?
तुमसे तो बचाई न कभी अपनीही नारी !
पञ्चालीका अपमान सभामें हुआ भारी।
कुछ भी तो तुम्हारी वहाँ उखड़ी न उखाड़ी !

कीचकने सभा-मध्यमें जब लात थी मारी।

संसारने तब देखी थी करतूत तुम्हारी ॥ २७ ॥

निज मातुके सम्मानके हित आज उमड़ कर।
मैं तुमसे समर करनेको उद्यत हूँ घुमड़ कर ॥

दिखलाऊँगा संसारको मैं आपसे लड़कर।
बालक भी किया करते हैं कुछ काम अकड़कर॥
भ्राताके लिये बापसे भिड़जाना नहीं पाप।
हे कृष्ण-सखा! साखो बनौ इसके स्वय आप" ॥२८॥

बस, होने लगा बापका रण बेटेसे डटकर।
हर ओर लगे गिरने बड़े वीर भी कटकर॥
चिग्घार उठे पील, चले अश्व झपट कर।
आगेको गिरा कोई, कोई पीछेको हटकर॥
तीरोंकी सरासरसे भरा वायुका मण्डल।
हर ओर दिखाई पड़ा शर-कोट अखण्डल॥२९॥

लपकी कहीं तलवार, तो चमका कहीं भाला।
झनका जो यहाँ तेग़ा, तो खनका वहाँ खाँड़ा॥
तोमरका तड़ाका था, कहीं गद गदाका।
शूलोंकी सपासप कहीं फाँसोंका फड़ाका॥
छप बोली कटारी तो उधर घप हुई कत्ती।
रथ-अश्व भी करने लगे आपुसमें दुलत्ती॥३०॥

बभ्रूने किया वार तो अर्जुनने बचाया।
अर्जुनके बिकट तीरोंको बभ्रूने उड़ाया॥
लग जाता कोई घाव तो मन होता सवाया।
ऐसाही था उत्साह युगल वीरोंके छाया॥
बेटेके तो मनमें न रहा बापका कुछ ध्यान।
और बापने बेटेकी नहीं मानी तनक आन॥३१॥

दो याम-तलक वीर डटे करते रहे मार।
पर अन्तमें होने लगी अर्जुनकी तरफ़ हार॥
अर्जुनसा पक्का वीर, महायुद्धका सरदार।
सह सकता न था बभ्रूके बाणोंकी विकट धार॥
व्याकुल हो गिरा भूमिमें सब होश गँवाकर।
भगके भगी फ़ौज भी बभ्रूसे डराकर॥ ३२॥

रण जीतके बभ्रूने अलूपीको सुनाया।
"ले, तेरे वचन मानके यह पाप कमाया॥
निज हाथसे निज बापको यों मार गिराया!
अब अपना भी करता हूँ मैं निज हाथ सफ़ाया॥
यों बापकी हत्याका महापाप मिटाकर।
अब मैं भी रहूँगा वहीं ढिग बापके जाकर॥ ३३॥

माताका विकट दोष मिटानेके लिये आज।
और तेरे वचन मान, किया मैंने अधम काज॥
अब मेरे भी जल जानेका निज हाथसे कर साज।
वह देख, खड़े हैं, मेरे ले जानेको यमराज॥
माताके अमित मानकी रक्षा था मेरा धर्म।
सो कर चुका. अब बापके हित करता हूँ यह कर्म॥ ३४॥

जिन हाथोंसे इस वक्त पिताको है सँहारा।
सेवा तो न की, उलटा विकट बाणोंसे मारा।
उन हाथोंको रखना नहीं अब मुझको गवारा।
हाथोंहीको क्यों तन भी तो यह पापी है सारा?

इस हेतु जलाकर मैं इसे खाक करूँगा।

तब पुत्रके कर्त्तव्यसे मन-मोद भरूँगा" ॥ २५ ॥

चित्रांगदाने हाल सुना, दौड़के आई।
ढिग आके अलूपीको विकट बात सुनाई ॥
"दुष्टा है अलूपी! तुम अधम नागको जाई।
तूने तो मेरे भाग्यकी कर डाली सफाई ॥

प्राणेशके शुभ नेहका सुख तूने मिटाया।

अब पुत्रका भी चाहती है करना सफाया? ॥ २६ ॥

अच्छा, तो मेरे हेत चिता एक सजा दे।
होती हूँ सती, आग तू निज करसे लगा दे।
इस भाँति सवति-भावको पूरा तो निभा दे।
दुख-सिन्धुमे बहती हुईको घाट लगा दे ॥

संसारमें फिर तू भी रँडापेका मज़ा देख।

और पूरे सवति-डाहका डका तू बजा देख" ॥ २७ ॥

"चित्रांगदा! कुछ तेरी समझमे नहीं आया।
तेरेही हृदय-मध्य सवति-भाव है छाया ॥
उत्तेजना दे बापसे बेटेको लड़ाया।
इस कामसे तुझकोही तो निर्दोष बनाया?

पति-मृत्युसे मुझको भी तो तेराहीसा दुख है?

पर तुझको कलंकित कर, वह कौनसा सुख है? ॥ २८ ॥

प्राणेशने जैसा तुझे अपवाद लगाया।
फल उसका तुरत बेटेके हाथोंसे चखाया ॥

बेटेको भी क्षत्रोंका परम धर्म सिखाया।
जो धर्म था, मेरा वही सब करके दिखाया॥
अब और भी क्या करती हूँ, सो देख ठहर कर।
बे-समझे, महा खेदसे क्यों बकती है बर-बर ?" ॥ ३९ ॥

यों कहते हुए जूड़ेसे मणि एक निकाली।
रण-भूमिसे अर्जुनकी वहीं लाश मँगा ली॥
कर ध्यान सुधा-धामका छातीसे लगा ली।
इक तीखी नज़र ग़ौरसे फिर लाशपै डाली॥
घावोंसे छुवातेही हुए पार्थ प्रथम लाल!
कुछ देरमें उठ बैठे भले-चंगे व खुशहाल! ॥ ४० ॥

अर्जुनहीने यह रत्न अलूपीको दिया था॥
कुछ रोज़ मनीपूरमें जब वास किया था॥
संजीवनी-मणि नाम था, अमृतका बिया था।
विष-मृत्युका तम हरनेको अनमोल दिया था॥
-स, पार्थके उठतेही मची मोद-बधाई।
पूछा कि य "चित्रांगदा कैसे यहाँ आई ?"॥ ॥ ४१ ॥

चित्रांगदाने सत्य सकल हाल सुनाया।
अर्जुनको हुआ मोद, कि तनमें न समाया!
अति प्रेमसे बभ्रूको लपक कण्ठ लगाया!
"शाबाश! मेरे नामको बस तूने जगाया॥
हो पुत्र तो ऐसाही हो, और नारि तो ऐसी।
ऐसा न हो यदि, वीरकी तब जिन्दगी कैसी ?" ॥ ४२ ॥

सुत, नारि सहित राज-भवन पार्थ सिधारे।
आनन्द हुआ बापको निज पुत्रसे हारे॥
दिन एक रहे, फिर कहीं अन्यत्र पधारे।
गाथा य कही 'दीन'ने उत्साहके मारे॥
ऐसाही पिता धन्य है ऐसीही सुमाता!
ऐसाही सुअन रचके बनै धन्य विधाता! ॥ ४३ ॥

अर्जुनसा पिता पुत्रको निज धर्म सिखावै।
निज देह-पतन होवै तो हो, धर्म न जावै॥
माता हो अलूपीसी, जो उत्साह बढ़ावै।
वैधव्य हो, पर पुत्र न हत-धर्म कहावै॥
बभ्रू-सा सुअन माताके हित युद्ध मचावै।
पड़ जाय कुअवसर, तो पिता तकको छकावे॥ ४ ॥

ऐसेही पिता, माता, सुअन हिन्दमे हो जायँ।
तो शीघ्रही इस देशके सब दोष भी धो जायँ॥
दारिद्र सहित दुःख व दुष्कर्म भी खो जायँ।
दल-द्रोह सहित सारे अमितचार भी सो जायँ॥
सम्पत्ति बढ़े और फिरै सुखकी दोहाई।
सब हिन्दमें बजने लगे आनन्द-बधाई॥ ४५॥

नोट—यदि आपको 'अभिमन्यु' और 'बभ्रुवाहन' के विकट युद्धोंका पूरा हाल जानना हो, तो हमारा सर्वांग-सुन्दर सचित्र "महाभारत" अवश्य पढ़िये। उसमें रंग-बिरंगे ३० चित्र भी हैं। दाम ३) रु०, रेशमी जिल्द ३।) रु०

आल्हा-ऊदल

करतूत हो जिस मर्दकी हर व्यक्तिको भाती।
सुनते ही उमग उठती हो उत्साहसे छाती॥
भुज-दण्डोंको फड़काती हो, ओठोंको कँपाती।
वीरत्वकी लालीसे हो नेत्रोंको रँगाती॥
निज देशमें हर व्यक्तिमे शाबाश कहा दे।
है कौन कृतघ्नो जा भला उसको भुला दे?॥ १॥

वीरत्वसे हो जिसने अचल कीर्ति कमाई।
निज देशको निज शक्तिकी करतूत दिखाई॥
वीरत्वपै रंगत हो नई जिसने चढ़ाई।
निज देशके बच्चोंको हो शुभ-सीख सिखाई॥
उसकाही छभग यश ता है वाणीका सहारा।
लिखनेमें क़लम मोदसे है मस्त हमारा!॥ २॥

रहते थे महोबेमे जो दो वीर बनाफर।
देवलके युगल पुत्र थे, परमालके चाकर॥
ऊदल था महावीर तो आल्हा था अमर नर।
था शारदा-देवीका मिला उनको यही वर॥
इन दोनोंको करतूत सुनाता हूं तुम्हें आज।
बचपनमें किया दोनोंने वीरत्वका जो काज॥ ३॥

माँडामें रहा करता था इक वीर बघेला।
करता था विकट बलसे समर-भूमिमे रेला॥
परमालको कर देता न था एक अधेला।
माहिलने (१) बनाया था उसे अपना सुचेला॥

रण-भूमिमें दसराजको (२) उसने ही तो मारा।
देवलका (३) छिना ले गया इक हार पिआरा॥ ४॥

उस वक्त बहुत छोटे थे देवलके युगल पूत।
कर सकते न थे युद्धमे वीरत्वकी करतूत॥
देवलके महा दुःखका उस वक्त न था कूत।
पर धीरसे बच्चोको बनाने लगी मज़बूत॥

जंगलमें लिवा जाती थी आखेट कराने।
हथियार चलाना लगी निज करसे सिखाने!॥ ५॥

सिखलाती हिरन मारना, रीछोंको भगाना।
दन्तीको दबाना, कभी शूकरको गिराना॥
बाघोंकी विकट घातसे बकरोंको बचाना।
सिंहोंका सिरोह से भी सत्कार कराना॥

घोड़ेपै चढ़ाकर कभी नालोंको लँघाती।
दौड़ाते हुए अश्वको पर्वतपै चढ़ाती॥ ६॥

---

(१) माहिल—राजा परमालका स्याल। जो बड़ा चुगलखोर था।

(२) दशराज—आल्हा-ऊदलके पिता।

(३) देवल—आल्हा-ऊदलकी माता।

सिखलाती थी तेग़ासे भी चौरंग उड़ाना (१)।
और सैफसे निम्बूके भी दो टूक बनाना!
भालेसे भी निज माथकी टिकुलीको गिराना!
तीरोंसे भी इक बाल-बँधी लौग उड़ाना!
दोनोंको बनाती कभी दो फ़ौजोंका नायक।
और आप बना करती थी ऊदलकी सहायक॥ ७॥

इस तरहसे दोनोंसे रणाभास (२) कराती।
यों वीर-प्रवर होनेकी सब सीख सिखाती॥
आल्हाको दबाकर कभी ऊदलको जिताती।
ऊदलको भगाकर कभी आल्हाको बढ़ाती॥
सब युद्धके करतव्य स्वयं उनको सिखाये।
माताके जो करतव्य हैं, सब करके दिखाये॥ ८॥

माताहीका कर्तव्य है कुल-धर्म सिखाना।
बालकके हृदय धामको मनमाना बनाना।
निज बुद्धिसे हर बातका सब मर्म बताना।
निज धर्मका सब मर्म सहजहीमें सुझाना॥
चाहे तो सुअन अपनेको अमरेश बना दे।
अमरेश तो क्या? चाहे तो उससे भी बढ़ा दे॥ ९॥

देवलको तो हम धन्य कहेंगे इसी कारण।
विधवा थी, मगर खूब किया धीरको धारण॥

---

(१) ऊँटके चारों पैरोंको एक साथ बाँध देते थे और तलवारके एकही हाथसे चारों पैरोंको काट डालते थे। इसेही चौरंग उड़ाना कहते हैं।

(२) रणाभास—बनावटी युद्ध, जिसे अँगरेजीमें Sham fight कहते हैं।

कुल-धर्म न छोड़ा न किया खेद अकारण।
मालिकके भी दुख करती रही बुद्धिसे वारण॥
पुत्रोंको भी कुल-धर्म चतुरतासे सिखाया।
कर्तव्य जो क्षत्रानीका था, करके दिखाया॥ १०॥

माताकी सुशिक्षासे युगल भ्रात बने यों।
रस-रौद्र-सहित वीर बने चंदके (१) कर ज्यों॥
थे युद्धमे ज्यों वीर तो धर्मज्ञ भी थे त्यों।
फिर हम भी सुयश इनका निडर हो न लिखें क्यों?
सब वीर किया करते हैं सम्मान क़लमका।
वीरत्वका यश-गान है अभिमान क़लमका॥ ११॥

परमालके दरबारमें दोनोंका बढ़ा मान।
सब दुष्ट जिसे देखके होने लगे हैरान॥
माहिलने विचारा, कि करूँ इनको परेशान।
वश चल न सकेगा मेरा, हो जायँगे जब ज्वान (२)॥
दुष्टोंकी यह पहचान है सन्तोंने बताई।
वे देख नहीं सकते विभव-वृद्धि पराई॥ १२॥

ऊदलको किसी रोज़ य माहिलने जताया।
"क्या जानो तुम्हें किसने पिता-हीन बनाया?
माताको किया राँड़ सकल माल छिनाया।
तुम वीर बने फिरते हो, धिक्कार है काया!

---

(१) चन्द—चन्दबरदाई (पृथ्वीराज-रासोकार)

(२) ज्वान—युवा।

यदि बीर हो निज बापका बदला तो चुका लो।
पितु-शत्रुको हनि दिलकी उमंगोंको निकालो॥ १३॥

क्षत्रीका नहीं धर्म है बल-हीनको मारै।
निज गाँवकी गलियोंहींमे वीरत्व बघारै!
पनिघटपै बुरी दृष्टिसे पनिहारी निहारै।
ढीलीसी कसै लाँग अजब माँग सँवारै॥
ग्रामीण प्रजापरही सबल शक्ति लगा दे।
ऊँचोंके घृणा, नीचोंके चित भीति जगा दे॥ १४॥

जिस क्षत्रीने निज बापका बदला न चुकाया।
पितु-शत्रुको हनि मातुका जियरा न जुड़ाया॥
जननी व जनम-भूमिका अपमान कराया।
निज वंशका, निज जातिका यश कुछ न बढ़ाया॥
उस क्षत्रीका होना है, न होनेके बराबर।
बस, जानो उसे एक धरा-भार सरासर"॥ १५॥

यह सुनतेही ऊदलके हुए नेत्र अँगारा।
"बतलाओ तो किसने है मेरे बापको मारा?"
माहिलने कहा, "मैंने सुना था सो उचारा।
निज मातुसे जा पूछिये वृत्तान्त य सारा"॥
था दिलमें कपट, "इनको करिंगासे जुझाऊँ।
स्वच्छन्द महोबामें डटा चैन उड़ाऊँ"॥ १६॥

ऊदलने तुरत जाके स्वमाताको सुनाया।
"माहिलने मुझे आज अजब भेद जनाया॥

बतला तो तुझे किसने है यों रौंड बनाया ?
किसने है मेरे बापको सुर-धाम पठाया ?
'बतलाती नहीं तू तो मैं भोजन न करूँगा।
सौगन्द तेरी, दममें गला काट मरूँगा' ॥ १७ ॥

देवलने तुरत भाँप ली माहिलकी खुटाई।
फिर धीर सहित पुत्रको यह बात सुनाई ॥
"माहिलको नहीं जानता ? है गूढ़ चवाई (१)।
इस हालके सुननेकी समैया (२) नही आई ॥
सोलाही बरसकी है अवस्था अभी तेरी।
यह हाल सुनाऊँ अभी मरज़ी नहीं मेरी" ॥ १८ ॥

सुनतेही उदयसिंहने निज किर्च निकाली।
हठ करके विकट क्रोधसे छातीसे अड़ा ली ॥
"बतला दे, नहो करता हूँ दुनिया अभी खाली।
बस 'नाहो' कही, मैंने इधर घपसे धँसा ली" ॥
यह देख, झपट हाथ पकड़ किर्च छिनाई।
रोते हुए ऊदलको सकल बात सुनाई ॥ १९ ॥

"मॉड़ाके करिंगाने तेरे बापको मारा।
नौ लाखका इक हार मेरे उरसे उतारा ॥
था अश्व 'पपीहा' जो तेरे बापका प्यारा।
था हाथी 'विजय-गज' भी सुभग भाग्यका तारा ॥

---

(१) चवाई—चुगल।
(२) समैया अवसर।

सब लूटके माँड़ामें है आनन्द मनाता।
माहिल है उसे भेद महोबाका बताता" ॥ २० ॥

सुनते ही उदयसिंहका चेहरा दमक आया।
आँखोंसे दिखाई पड़ी कुछ भौमकी (१) छाया॥
कुछ भौंह तनी ओंठसे दाँतोंको दबाया।
धड़का जो कलेजा तो उठी काँपसी काया॥
माताके युगल पैरों पै निज सीस नवाया।
आकाशकी दिशि हाथ उठा बैन सुनाया॥ २१ ॥

"चाहै कोई दे साथ मेरा चाहै रहै दूर।
ऋण तेरे अमर दूधका चुकता करूँ भरपूर॥
रण-खेतमें मस्तक न करिंगाका करूँ चूर।
तो वंश-बनाफरपै पड़ै सेर दशोक धूर॥
बोटी जो करिंगाकी न चीलहोंको खिलाऊँ।
तो लौट महोबामें कभी मुँह न दिखाऊँ॥ २२॥

फिर अश्व 'पपीहा' जो न पैंड़ामें (२) बँधाऊँ।
और प्यारे 'विजय-गज'को न द्वारेपै झुमाऊँ॥
नौ लाखका वह हार न फिर तुझको पिन्हाऊँ।
उस दुष्ट करिंगाको न यम-धाम झुकाऊँ॥
माँड़ाका नगर खोद न गदहोंसे जोताऊँ।
तो लौट महोबामें कभी मुँह न दिखाऊँ" ॥ २३ ॥

---

(१) भौम—मंगल-ग्रह।

(२) पैंड़ा—घोड़सार, अस्तबल (बुन्देलखंडी प्रयोग)

फ़ौरनही निकल घरसे दिया युद्धका डंका।
मलखान व आल्हा भी जुड़े सुनतेही हंका॥
मीराँ भी मिला आके सखा शूर अशंका।
देवा भी तुरत आगया जो वीर था बंका॥
इन पाँच युवक-वीरोंने मिल सैन सजाई।
माँड़ापै चढ़े बोलके "जय शारदा माई"॥ २४॥
यह देखके देवलने विकट रूप बनाया।
कन्धेपै पड़ी ढाल, कड़ाबीन कसाया॥
लटकाया तबर, तेगा भी कम्मरसे लगाया।
बिछुड़ा था छिपा चोलीमे, भाला भी उठाया॥
इस ओर सिरोही थी, उधर किर्च-कटारी।
घोड़ेपै चढ़ी, साथमें माँडाको सिधारी॥ २५॥
कुछ दूरपै माँड़ाके निकट सैन उतारी।
देवलने अजब ढङ्गसे की रणकी तयारी॥
कुछ वीरोंको व्यौपारी बनाया बड़ा भारी।
उत्तरमें पड़े जाके अजब भेष सँवारी॥
इक भाग पथिक-भेषमें दक्षिणमें जमाया।
इक योगियोंके भेषमें पश्चिममें डटाया॥ २६॥
फिर पाँचो युवक-वीरोंको योगी-सा बनाकर।
और आप भी योगिनका सुभग भेष सजाकर॥
लेनेके लिये भेद सकल ग्राम घुमाकर।
उत्साह भरें जिससे युवक धीर बनाकर॥

इक छोटोसो टुकड़ीको लिये ग्राममें धाई।

फिर घूमके लडनेकी सकल घात लखाई ॥ २७ ॥

घुड़सालमें जा घोड़े 'पपीहा'को निहारा।
लखतेही 'पपीहा'के बही आँसुकी धारा।
फिर जाके 'विजय-गज'को लखा, धीरको धारा।
वट वृक्ष लखे फिर न रहा क्रोध सँभारा॥

दुसराजको जा खापड़ी लटकी हुई पाई।

कागाँश भयक चित्तकी नस आँखमें आई ॥ २८ ॥

देवलके विलोचनसे बही अश्रुकी धारा।
यह देखके उन वीरोंने उत्साह सँभारा॥
ऊदलने जो पाया ज़रा आल्हाका इशारा।
चक्रीकी तरह दर्पसे यह बैन उचारा,—

"करियाकी खापड़ियांके जो टुकडे न उड़ाऊँ।

दस राज-उद्यान आजसे हर्गिज न कहाऊँ" ॥ २९ ॥

मोरोंने झपट वाटिका राजाकी उजारी।
की दौड़के आल्हाने 'पपीहा'पै सवारी॥
देवाकी बजी सिंगी विकट नादसे भारी।
मलखानने वह खापड़ी निज करसे उतारी॥

धलने उधर खोपड़ी सीनेसे लगा ली।

ऊदलने स्वर्ग के लिये सफ़ निराली ॥ ३० ॥

सिंगीका सुना शब्द हुई सैन भी तैयार।
उस ओर करिंगाने सुने सारे समाचार॥

सेना लिये बस आगया रण-खेतमे ललकार ।
और गूँज गई खेतमें हथियारोंकी झनकार ॥
उस वक्तको हूँ सारी कथा तुमको सुनाता ।
भारतके युवक-वीरोंका हूँ हृदय दिखाता ॥ ३१ ॥
देवल थी बनी दुर्गा तो भैरवसा था मलखान ।
देवाका व मीरोंका भी योंही करो अनुमान ॥
तुम चाहते हो करना अगर उनको पहचान ।
भीजी है मसैं, सबको है मूँछोंहीका अरमान ॥
आल्हा था षड़ानन तो बटुक-रूप था ऊदल ।
दिखलानेको तैयार थे क्षत्रियका कर-बल ॥ ३२ ॥
उस ओर 'करिंगा' था विकट वीर बघेला ।
अति युद्ध-निपुण, करता था रण-खेतमें रेला ॥
'जम्बा' था विकट वीर लड़ै सौसे अकेला ।
था वीर 'अनूपी' जो करै खेतमे हेला ॥
'सूरज' था महातेज तो 'रंगा' था रंगीला ।
'बंगा' भी विकट वीर था अत्यन्त हठीला ॥ ३३ ॥
"इक पुत्र मुसलमानका यों बाग उजारै ।
इक बाल बनाफरका विजय-चिह्न उतारै !
बच्चासा बनाफर मेरे पैरोंमे बिहारै !
लै अश्व-पपीहाको सहजहीमे सिधारै !"
इन बातोंको कर याद करिंगा भी हुआ लाल ।
और क्रोधके बस बन गया यमराजसा विकराल ॥ ३४ ॥

बस, होने लगी मार इधरसे भी उधरसे।
सन्नाते हुए तीर निकलने लगे सरसे॥
कोई तो कटा कंठसे और कोई कमरसे।
बस, खूनके फौवारे उछलते थे जिगरसे॥
मस्तकपै लगा तीर तो चिग्घारता हाथी।
हय हींसते, चिल्लाते, सबल शब्दसे भाथी (१)॥ २५॥

बस, डेढ़ पहर युद्धमें तीरोंकी हुई मार।
और वीर हज़ारों हुए निज धर्मपै बलिहार॥
बढ़तेही गये आगेको हर ओरके सरदार।
और धूपसे मालूम हुई प्यासकी झंकार॥
था चाटता कोई तो पसीनाही बग़लका।
लेता था कोई रक्तहीसे काम हजलका!॥ २६॥

हर ओरके वीरोंने यही दिलमें विचारा।
"मरनाही समर-भूमिमें है धर्म हमारा॥
मरता है य वीरोंका जथा (२) प्यासका मारा।
तब क्यों न बहा देवैं भला खूनकी धारा?
तलवारकेही घाट तो अब पानी रचा है।
निश्चयही वही होगा जो ईश्वरने रचा है"॥ २७॥

यह सोचके हर वीरने तलवार निकाली।
बिजली थीं हज़ारों कि सहस जीभकी काली॥

---

(१) भाथी—भाथा, अर्थात तर्कश बांधनेवाले तीरंदाज़।
(२) जथा—शुद्ध रूप यत्था समूह, झुण्ड।

उस धूपकी तेज़ीमें चमक आई निराली।
दिखलाई किधौं कालने निज घोर रदाली (१)॥
चिल्ली-सी चमक देख चकाचौंध-सी आती।
जिस ओर नज़र फेरते उस ओर दिखाती॥ ३८॥
जिस ओर ज़पक ज़ाते थे वे वीर बनाफर।
लगते थे बरसने वहीं बूँदोंकी तरह सर॥
छू जातेही तलवारके था हंस (२) हवापर।
दोटूक हो रह जाती थी बस, देह धरापर॥
मलखानकी, आल्हाकी भी, ऊदलकी भी तलवार।
कवि कौन लहै पै प्रशंसाको नदी पार?॥ ३९॥
चिल्लीकी चची बनके तो गज-खाल कतरती।
पावककी बनीं पुत्रिका पैदलको पकरतीं॥
मौसीसी बनीं मौतकी असवारको छरती।
काकीसी बनी कालीकी रण-केलिसी करतीं॥
थीं चूमती तलवा जा इन्हें सोस लेता।
जो कंठ लगाता इन्हें बस, प्राण दे देता॥ ४०॥
कन्धेसे लगीं आनमें पाँजरसे हुईं पार।
पैदल हुआ दोटूक तो चौटूक है असवार॥
बिजलीकी बनी बेटीसी करती थी विकट मार।
कहनेमें लगै देर, न कटनेमें लगै बार॥

---

(१) रदाली—दाँतोंकी पंक्ति।
(२) हंस—जीव, प्राण।

सिर छूतेही असवारका थीं तंगके नीचे।
पैदलका छुआ सीस तो थीं रान-दुबीचे ॥ ४१ ॥

बस, डेढ़ पहर करके महा घोर घमासान।
ऊदलने अनूपीके व सूरजके लिये प्रान ॥
आल्हाने भी जम्बाको कराया महा-प्रस्थान।
और काल करिंगाका बना युद्धमे मलखान ॥

इस युद्धमें देवलने भी हथियार उठाये।
'गंगा'के सहित बंगासे* अंगरक्ष उड़ाये ॥ ४२ ॥

ऊदलने करिंगाका झपट शीश उड़ाया।
निज क्रोधके आवेशमे भालेसे बँधाया ॥
माताके हवाले किया, गढ़ ओरको धाया।
नौ लाखका वह हार भी रानीसे छिनाया ॥

निज साथ 'विजय-गज'को लिये सैनमें आया।
अति भक्ति सहित माताके पद शीश नवाया ॥ ४३ ॥

फिर अश्व पपीहाके नई नाल जड़ाई।
टापोंसे वहीं खोपड़ी करियाकी फोड़ाई ॥
फिर उसकी कतर लोथ भी चीलहोंको खिलाई।
खुदवाके गढ़ी माड़ाकी चौराई बोवाई ॥

इस भाँति युवक वीरने निज पनको निबाहा।
बदला लिया निज बापका कर शत्रुका स्वाहा ॥ ४४ ॥

---

* बंगासे—दस्तेसे।

इस वक्त फतेहपूर जो सरकारी ज़िला है।
उस प्रान्तके वीरत्वका यों हाल मिला है॥
खजुहाके निकट छोटासा अरगलका किला है।
वीरत्वका यह पुष्प उसी गढ़में खिला है॥
गौतम था वहीं एक विकट वीर धराधीश
रज़ियाका भतीजा (१) था उसी वक्तमें दिल्लीश॥ १॥

नव्वाब था उस वक्त अवधका जो इमामी।
धनवान था जितनाही बड़ा, उतनाही कामी॥
रानी थी जो अरगलकी व थी रूपसे नामी।
उस ओर थी नव्वाबकी कुछ दृष्टि हरामी॥
गौतमसे विकट वीरसे कुछ वश न था चलता।
रह जाता था नव्वाब सदा हाथही मलता॥ २॥

सन पन्द्रह सौ बीसमें घटना हुई ऐसी।
नव्वाव अवध चाहता था चित्तसे जैसी॥
गौतमपै हुई शाहकी कुछ दृष्टि अनैसी (२)
कुशलात कहो होती है फिर दीनको कैसी ?

---

(१) नसीरुद्दीन रज़िया बेगमका भतीजा।
(२) अनैसी—बुरी।

आज्ञा हुई नव्वाबको, "गौतसको करो क़ैद"।
नव्वाबने समझा, कि बस, अब पूजेगी उम्मैद ॥ ३ ॥

नव्वाबने गौतमपै विकट फौज चढ़ाई।
गौतमने भी मैदानमे की घोर लड़ाई॥
आख़िरको यवन-सैन सकल मार भगाई।
बजने लगी अरगलमे विजय हेतु बधाई॥

बस, भागके नव्वाबने निज जान बचाई।
बकसरके* निकट, गंगाके तट, सैन रचाई ॥ ४ ॥

अरगलके धराधीशकी रानीने विचारा।
"शङ्करकी कृपाहीसे बचा धर्म हमारा॥
शङ्करही है सौभाग्यमें हित एक सहारा।
पूजनके लिये श्रेष्ठ है गङ्गाका किनारा॥

गंगामें नहाकर करूँ गौरीशकी पूजा।
गौरीश सरिस देव नहीं पूज्य है दूजा" ॥ ५ ॥

पूजनके लिये रानीने यों कर ली तयारी।
कुछ सङ्गमे अनुचर लिये बकसरको सिधारी॥
बकसरहीका उस प्रान्तमें इक घाट था भारी।
इस हेतु सिधारी वहां गौतमकी सुनारी॥

यह सेन इसी ठौर है नव्वाबका डेरा।
मालूम न था, पहुंची वहीं होते सवेरा ॥ ६ ॥

---

* बक्सर—ज़िला फतेहपुर गंगाके किनारेपर अब भी इस नामका एक ग्राम मौजूद है।

इक ओर तो नव्वाबका यों डेरा खड़ा था।
बाक़ी बचा लश्कर भी उसी ठौर पड़ा था॥
आ जाय न गौतम कहीं, पहरा भी कड़ा था।
गौतमसे विकट वीरका डर दिलमें अड़ा था॥
कुछ बाल-सिपाही लिये कुछ संगमें बाँदो।
कुछ दूरपै फिरने लगी रानीकी मुनादी॥ ७॥
ज्यों भेड़ स्वयं जा गिरे अजगरके उदरमें।
ज्यों जाय स्वयं चन्द्र-कला राहुके गरमें॥
ज्यों गाय चली जाय कभी शेरके घरमें।
ज्यों कौड़ी स्वयं जाती है कंजूसके करमें॥
त्योंही तो व अरगलके धराधीशकी नारी।
अनजानेही नव्वाब-निकट आप सिधारी॥ ८॥
रानीने नहा-धोके सदाशिवको मनाया।
कर जोड़के अति भक्ति-सहित शीश नवाया॥
"है धन्य तुम्हें नाथ! मेरा धर्म बचाया।
हे शंभु! सती-नाथ! तेरी धन्य है माया॥
रक्षा मेरे पति-धर्मकी है हाथ तुम्हारे।
संसारमें तुम ही तो हो इक नाथ हमारे" ॥ ९॥
शिव पूजके जब होने लगी घरको रवाना।
देखा, कि तरफ़ तीन है नव्वाबका थाना॥
नव्वाबने निज चित्तमें यह ध्यान था ठाना।
"कुट-पिटके भला लग तो गया ठीक-ठिकाना!

अब जाने कहाँ पाते हैं चगुलसे निकल कर ?

बच सकतो है कभी मक्खी मकड़-जालमें सलकर" ॥ १० ॥

जब ज्ञात हुआ, घिर गई नव्वाबके दलमें ।
रानीकी दशा हो गई कुछ औरही पलमें ॥
नव्वाबसे कहलाया, कि "कुछ फल नहीं छलमें ।
मछली न पकड़ पाओगे बेथाहके जलमें ॥

तू कर न सकेगा मेरे पति-धर्मपै घात ।

औरतसे बिगड़जाता है क्यों मर्दकी बनी बात ? ॥ ११ ॥

तू जानता है हूँ उसी गौतनकी पियारी ।
रण-खेतमें है जिसने तेरी पाग उतारी ॥
शरमाता नहीं चित्तसे तू दुष्ट अनारी !
क्या सिंहिनी बन जायगी जम्बुककी भी नारी ?

यों छेड़ना पर-नारिको वीरोंका नहीं काम ।

यदि मर्द है, पति मेरेसे कर डटके संग्राम ॥ १२ ॥

पतिसे न चलै दाँव तो पत्नीको सताना ।
और बाप का घात तो बेटेसे भँजाना (१) ॥
ये काम हैं वैसेही कहैं जैसे अहाना (२) ।
चौंकेसे विवश होवै तो सूधेहीको खाना ॥

धोबिनसे जीत पावैं न चित क्रोध जो पठे ।

निज नारिको तज, कान गदहियाके उमैठे ॥ १३ ॥

---

(१) भँजाना—बदला लेना ।

(२) अहाना—आख्यान, कहावत ।

क्या पन्थ [illegible] सिखाता है यही बात ?
[illegible]से न चलै [illegible] पत्नीपै करै घात ?
क्या इसमे ही है पीर-पगम्बरकी करामात ?
पर-नारिको यों छेड़ना, है काम खुराफात (१) ॥

यदि सत्य मुसलमान है, वीरत्व है तनमें।
अबलाको न तू छेड़, अकले [illegible]वनमें ॥ १४ ॥

यदि चाहता है मुझको तू निज नारि बनाना।
रहकर मेरे सहवासमे रस-रङ्ग मचाना ॥
तो चाहिये तुझको न बनै हीन ज़नाना।
वीरोंकी तरह चाहिये वीरत्व दिखाना ॥

मैदानमें तू छीन ले गौतमकी जो तलवार।
तलवारसे तेरे आँख मलूं मैं भी सहसबार ॥ १५ ॥

जबतक मेरे खाविंदके है हाथमे तलवार।
वीरत्वका है जिसके, मेरे दिलमे अहङ्कार ॥
उस वीरका वीरत्वही है मेरा मददगार।
तब तक न चलै मुझपै तेरा कोई कुटिल वार (२) ॥

दे छोड़ मेरा रास्ता, मै धामको जाऊं।
मं[illegible]र न हो वह, तो करामात दिखाऊं" ॥ १६ ॥

गौतमकी विकट मारसे था खाही चुका हार।
अब उसकीही पत्नीसे मिली ज़ोरकी फिट्कार ॥

---

(१) खुराफात—अनुचित।
(२) वार—आक्रमण।

नव्वावके चित फिर न रहा क्रोधका कुछ पार ।
इकबारगी यों कहने लगा ज़ोरसे ललकार ॥
"ऐ वीरो ! इसे आज इसी ठौर पकड़ लो ।
हर बंदीको जंजीरोंसे मज़बूत जकड़ लो" ॥ १७ ॥

सुनते ही यवन-सेन हर इक ओरसे धाई ।
'बस धाओ, धरो, पकड़ो' य आवाज़ थी छाई ॥
यह सुनतेही क्षत्रानी भी कुछ क्रोधमे आई ।
इक टीलेपै चढ़ ज़ोरसे आवाज़ लगाई ॥
सुनते ही जिसे गूँज उठा गङ्ग-किनारा ।
क्षत्रित्वकी नस-नसमें बढ़ो खूनकी धारा ॥ १८ ॥

"हे विष्णुपदी मात ! तेरे तीरपै आकर ।
क्या जीवेगी क्षत्रानी भी निज धर्म गँवाकर ?
क्या सोही गये भूतपती भङ्ग चढ़ाकर ?
दासीको भुलाही दिया यों बात बढ़ाकर ?
क्या बूँद भी क्षत्रीके रक्तकी नहीं इस ठौर ?
हे नाथ ! मेरा दोष है क्या ? कुछ तो करो ग़ौर ॥ १९ ॥

इस सेनमें यदि हो कोई क्षत्रानीका बच्चा ॥
रखना हो जो निज वंशका अभिमान भी सच्चा ।
दे आके मदद मुझको, उधर शत्रुको गच्चा ॥
है नारिकी इज्ज़तका घड़ा खूबही कच्चा ॥
बस, अन्य पुरुषने जो इधर हाथ लगाया ।
औ॰ हो गया झड़सेही उधर उसका सफाया ॥ २० ॥

इक बूँद भी क्षत्रीका रक्त जिसके हो तनमें ।
खाया हो नमक क्षत्रीका जिसने किसी पनमें ॥
बूढ़ा हो, रक्तकी न हो इक बूँद बदनमें ।
बच्चा हो, दिये मुख भी हो क्षत्रानीके थनमें ॥
क्षत्रानीको उज्जलको बचानेके लिये आज ।
उठ दौड़े न सुनते ही वचन, उसपै गिरै गाज ॥ २१ ॥

गोरी तो हो, पर काली बनो बाँदियो ! इस ठौर ।
और चित्तमें कुछ मेरे नमकका भी करो गौर ॥
नव्वाबका भी देख लो बदला हुआ यह तौर ;
ऐसा करो, हो जाय अभी औरका कुछ और ॥
नारीत्वका अब फेंकके कालीत्व को धारो ।
मालिकके नमक-बलसे यवन-सेन सहारो ॥ २२ ॥

लो, ध्यान लगा सुन लो मेरे बाल-सिपाही ।
गौतमके लगा चाहती है मुखपै सियाही ॥
माताकी तरह मैंने तो निज बानि निबाही ।
आने नही दी तुमपै कभी कोई तबाही ॥
तुमपरसे बहाई है अतुल दूधकी धारा ।
बस, सोच लो, इस वक्त है क्या धर्म तुम्हारा ?" ॥ २३ ॥

सुनतेही वचन बाल-युगल सामने आये ।
हों भैरों-बटुक, जैसे युगल रूप बनाये ॥
कर जोड़ युगल रानीके पद शीश नवाये ।
ललकारके वीरत्व-भरे बैन सुनाये ॥

"क्या ताव है यवनेशकी यों जीते हमारे।
छू पावै कहीं अङ्गकी छायाको तुम्हारे ? ॥ २४ ॥

लो, घोड़ेपै चढ़ बैठो, चलो साथ हमारे।
हम करते हुए चलते हैं यवनोंके किनारे॥
मैं आगे चलूँ, माई चलै पीछे तुम्हारे।
तुम मध्यमे रह कर चलो, पर धीरको धारे॥

'जय कालिका' कहती हुई बाँदी चले हर ओर।
जो सामने आ जाय, करैं घात महाघोर" ॥ २५ ॥

यो कहके अभयचन्दने घोड़ेको बढ़ाया।
रानीने भी निज अश्वको पीछेही लगाया॥
तब पीछेसे निर्भयने भी निज अश्व उड़ाया।
अरगलका लिया रास्ता, पर दिल था सवाया (१) ॥

जो सामने आ जायगा बस देवेंगे धुनकर।
छोड़ेंगे ना वैरीके विनय-वादको सुनकर ॥ २६ ॥

माता जो मेरी सत्य ही क्षत्रीकी धिया है।
क्षत्रीके रक्तहीसे मुझे जन्म दिया है॥
और मैने भी क्षत्रानीका यदि दूध पिया है।
और तुमने भी निज पुत्र सरिस पुष्ट किया है॥

है नाम अभयचन्द किसीसे नही डरता।
यवनेशकी सेनाको अभी तो हूँ कतरता।" ॥ २७ ॥

यों कहते हुए म्यानसे तलवार निकाली।
दाहनने (२) दोहाई दी तो सकुचा गई काली॥

(१) सवाया—उमंगपर। (२) दाहन—अग्नि।

बिजलीने चकाचौंधसे निज आँख छिपाली ।
चकराके गिरी चिल्ली, तो सुरपतिने सँभाली ॥
... अभयचन्दकी तलवारकी चमकन ।
दिग नाथ उठे काँप, दबो शक्रकी धमकन ॥ २८ ॥

नव्वाबने ललकारके सेनाको पुकारा ।
"दो सिंहके शावक हैं छिनाते मेरा चारा ॥
क्या सूझ नहीं पड़ता है, क्या धर्म तुम्हारा ?
खा-खाके नमक वक्तपै करते हो किनारा !
धर बाँधो इन्हें, या तो ठिकाने लगा दो ।
रानी ... [illegible] ...ंदियोंको दूर भगा दो" ॥ २९ ॥

सुन ऐसे वचन वीर यवन सामने आये ।
फौरन ही अभयचन्दने दो-चार गिराये ॥
दो-चार यवन रानीने यम-धाम पठाये ।
निर्भयने भी निज हिस्सेमे दो-चार गिनाये ॥
दश-पाँचको उन बाँदियोंने मार गिराया ।
फिर आगे बढ़ करते हुए पथको सफ़ाया ॥ ३० ॥

आगेसे जो आता, तो अभय सामने लेता ।
हर वारका उत्तर भी भली भाँतिसे देता ॥
जिस वीरपै करता था झपट वार अचेता ।
धड़, धरतीको, और प्राण था यम-धामको सेता ॥
बढ़ते भी चले जाते थे, लड़ते भी थे डटकर ।
मिलते ही समय दूर निकल जाते झपटकर ॥ ३१ ॥

पीछेसे यवन कोई अगर घातमें आता ।
निर्भय उसे घनघोर समर करके छकाता ॥
उस वक्त अभयचन्द क़दम और बढ़ाता ।
निर्भय भी समय पाके वहीं आन तुलाता ॥
इस दोनों तरफ़ बाँदियाँ करती थीं विकट मार ।
घनघोर समर-भूमिमें शीशोंकी थी बौछार ॥ ३२ ॥

इस भाँति अभयचन्द जो बिन मूँछका था ज्वान ।
रानीको बचाता हुआ, करता हुआ घमसान ॥
बकसरसे निकलही गया छः कोसके अनुमान ।
इतनेहीमें गौतमकी भी कुछ सैन मिली आन ॥
यों पाके मदद रानीने चिल्लाके सुनाया :—
"निर्भय व अभयहीने मेरा धर्म बचाया" ॥ ३३ ॥

गौतमकी विकट सैनने यवनोंको दबाया ।
नव्वाब सहित सैनको अति दूर भगाया ॥
अरगलकी तरफ़ रानीने तब पैर बढ़ाया ।
निर्भय व अभय दोनोंका यश वीरोंने गाया ॥
है धन्य वही वीर जो करतूत दिखावे ।
मालिकके लिये प्राणका भय मनमें न लावे ॥ ३४ ॥

निर्भयके कई घाव विकट ऐसे लगे थे ।
मानो बड़े यमराजके लघु बन्धु सगे थे ॥
पर, रानीकी रक्षाके उपायोंमे पगे थे ।
इस हेतुसे न प्राण उसके चोलासे भगे थे ॥

रानीजी सुरक्षित हुई यवनेश गया भाग।
यह जानके प्राणोंने भी चोलाको दिया त्याग॥ २५॥

निर्भयके लिये रानीने अति शोक मनाया।
और उसकी सुमाताका बड़ा मान बढ़ाया॥
फिर वीर अभयचन्दको छातीसे लगाया।
मुख चूमके फिर शीशपै अञ्चल भी ओढ़ाया॥

इस भाँति उसे मानके निज कोखकी सन्तान।
निज करसे किया रानीने वीरत्वका सम्मान॥ २६॥

निर्भयको नमस्कार है कवि 'दीन'का सौ बार।
और वीर अभयचन्दको शाबासकी बौछार॥
इन दोनोंकी जननीको सहस बार नमस्कार।
है इनकी जनम-भूमिकी रज (१) धन्य सहस बार॥

हे वीर-प्रवर! तुम हो मेरे देशके भ्राता।
इस हेतु मेरे मनमें नहीं मोद समाता॥ २७॥

वीरत्व तुम्हारा सुना दिल जोशमें आया।
शब्दोंने सफें बाँध परा (२) अपना जमाया॥
फौरन हो कलम-भाला लिये खेतमें आया।
हर हर्फने सैनिकका विकट वेश बनाया॥

बस, काव्यके मैदानमें सब युद्धका सामान।
एकत्र हुआ देखके, क्रूरोंके भगे प्रान॥ २८॥

---

(१) रज—धूल।
(२) परा—व्यूह।

हैं ढाल सरिस बिन्दु* तो हैं किर्चसे काने* ।
बन्दूक सी इक-मात*, बहुत हर्फ़ हैं ताने ॥
दो मात* है युग करमे सिरोहीके ठिकाने ।
पिच्छके सहित अग्गू* हैं बस, बाँक व बाने ॥
गोंड़ी * हैं कटारीसा तो लहतुर* है गदासी ।
लखतेही भयर भागती है दिलकी उदासी ॥ ३९ ॥

वीरत्वका सामान इकट्ठा हुआ पाया ।
और देशके अभिमानसे दिल जोशमें आया ॥
रस-वीरका कुछ अंश उचित दिलसे मिलाया ।
निज भाईका यश भाईको यों गाके सुनाया ॥
वीरत्वके यश-गानका है 'दीन'को उत्साह ।
उत्साहहीसे होता है संसारमें निर्वाह ॥ ४० ॥

---

* बिन्दु—अनुस्वार '' काने—आकारकी मात्रा 'ा'
* इक-मात, दो-मात—'ए' और—'ऐ' की मात्राएँ—'े' 'ै'
* पिच्छू, अग्गू—'इ' और 'ई' की मात्राएँ—'ि' 'ी'
* गोंडी और लहतुर—'उ' 'ऊ' की मात्राएँ 'ु' 'ू'

रस-वीरकी घनघोर घटा दिलमें है छाई ।
उत्साहकी चपलाने चकाचौंध मचाई ॥
शब्दोंने भी बक-पाँतिकी आभा-सी दिखाई ।
रस-वीरके भेदोंने त्रिविध वायु उड़ाई ॥
भावोंकी झड़ी लग गई कवि 'दीन'के उरसे ।
वाचक इसे चातकसे रटैं घूमके उरसे ॥ १ ॥

लहराये अगर इसको पढ़े मोदका सागर ।
मौजें सी उठैं चित्तमें उत्साहकी आगर ॥
रस-वीरका कुछ आवै मज़ा दिलमें उजागर ।
आनन्द लहैं पढ़तेही ग्रामीण व नागर (१) ॥
कवि 'दीन' का जन जानके तब यादमें लावें ।
खुद पढ़के, क़सम रामको, मित्रोंको सुनावें ॥ २ ॥

जब राय पिथौराने समाचार य पाये ।
ऊदलके सहित आल्हा हैं कन्नौजमें छाये ॥
ब्रह्मा (२) बड़ा अल्हड़ है, तो मलखन हैं कोहाये ।
परमाल पड़ा रहता है निज हाथ दबाये ॥
तब राय पिथौराने यही बात बिचारी ।
'परमालकी बेटीको बना लीजिये नारी' ॥ ३ ॥

---

(१) नागर—नगरके रहनेवाले । (२) ब्रह्मा - परमाल का पुत्र ।

सावनका महीना है, महोबेका है मैदान ।
आ ताल-किरितुवा (१) पै डटा शानसे चौहान ॥
चौंड़ा भी है, ताहिर भी है, सर्दान भी मर्दान (२) ।
परमालकी पुत्रीपै है चौहानका अरमान ॥
छेगा है पिथौराकी घटा घोरसी छाई ।
उपमा है मेरे चित्तमें इस भाँतिसे आई ॥ ४ ॥

बादलकी गरज है, कि धौंसोंकी धुकारन ।
भालोंकी चमाचम है, कि बिजलीकी पसारन ॥
बक-पाँति उड़ी है, कि है बानोंकी उछारन ।
कौंधेकी लपक है, कि है किर्चोंकी सँभारन ॥
सतरङ्ग पगड़ियाँ हैं, कि है इन्द्र-धनुष ऐन ।
हैं वीर बहूटी, कि हैं, वीरोंके अरुण नैन ॥ ५ ॥

त्योहार सलोनोका (३) सुखद सामने आया ।
विप्रोंने महामोदसे उत्साह मनाया ॥
जजमानको दे 'राखी' 'चिरञ्जीव' सुनाया ।
सामान सहित दान भी जजमानसे पाया ॥
विप्रोंको तो ी सूझती सावनकी हरीरी ।
चन्देलको रानीकी छटा हो रही पीरी ॥ ६ ॥

---

(१) ताल-किरितुवा—महोबेके कीर्तिसागर नामक तालाबको साधारणतः किरितुवाही बोलते हैं ।

(२) चौंड़ा, ताहिर, सर्दान और मर्दान—ये सब पृथ्वीराज चौहानकी सेनाके नामी-नामी योद्धा थे ।

(३) सलोनो—रक्षा-बन्धनका त्योहार ।

आल्हा नहीं; ऊदल नहीं, यह वक्त कड़ा है।
चौहान लिये सैन किरितुवापै पड़ा है॥
बेटीके लिये आज कठिन पौ य अड़ा है।
डोला न कहीं छीन ले, भय इसका बड़ा है॥
त्यौहार मना करके कजलियाँ भी खोटाऊँ।
है बात कठिन, बेटीको मैं कैसे बचाऊँ?॥ ७॥

ऊदलने हमें दिलसे भुलाहीसा दिया है।
ब्रह्माने भी सँग चलनेसे इन्कार किया है॥
माहिलने चुगुलखोरीका बीड़ासा लिया है।
हा! कैसा कठिन हो गया इन सबका हिया है!"
इस ध्यानमें मल्हन (१) थी बनी शोककी मूरत।
देखी नहीं जाती थी बिलखती हुई सूरत॥ ८॥

माहिलके युगल पुत्र जो थे बैसके बारे (२)।
रणजीत, अभयसिंह, सुभग (३) नामोंको धारे॥
फूफूके निकट ज्योंही सहज-भाव सिधारे।
देखा कि अचल बैठी है, निज चित्तको मारे॥
उत्साह नहीं चित्तमें, कपड़े नहीं धानी।
बैठी है, मनो हो रही है दुखसे दवानी॥ ९॥

अभईने (४) कहा "आज कजलियोंका है त्यौहार।
फूफूजी! किये बैठी हो क्यों शोकका व्यौहार?

(१) मल्हन—परमालकी रानी।
(२) बारे—छोटे।
(३) सुभग—सुन्दर
(४) अभई—अभयसिंह।

चन्दाको (१) कियाही नहीं तुमने अभी तैयार।
क्या उसको कजलियों (२) हमें देनेसे है इन्कार ?
हम कैसे बहिन भाईके अनुरागसे फूलें ?
क्या खौंसके कानोंमें, लपक, झूलेपे झूलें ?" ॥ १० ॥

ये भाव-भरे बैन अभयसिंहके सुनकर।
रोने लगी मल्हन, वहीं निज शीशको धुनकर॥
फिर प्रेम सहित भावको निज चित्तमें गुनकर।
यों बोल उठी बैन, बड़े बोधसे चुनकर॥
"भाई हो तो भगिनीका कजलियाँ तो खोंटाओ।
चौहानसे रक्षा करो, आनन्द बढ़ाओ॥ ११ ॥

दसराज-सुवन होते तो त्यौहार कराते।
चौहान-सरिस राहुसे चन्दाको बचाते॥
इस वंशकी मर्याद सहित हर्ष रखाते।
भगिनीके लिये भाईका अनुराग दिखाते॥
भगिनीके लिये भाईको क्या चाहिये करना ?
करतूतसे दिखलाते, कि बस, मारना मरना" ॥ १२ ॥

सुनतेही वचन बोला अभयसिंह कड़क कर।
"हाँ, ऐसा लगा है तुम्हे फूफूजी ! विकट डर ?
चौहान कलङ्कित करे चन्देलका यों घर।
होना नहीं, जबतक मेरे कन्धोंपे है यह सर॥

---

(१) चन्दा—चन्द्रावली, परमालकी बेटी।

(२) कजलियाँ—जवारा (जौका पौधा)

चलता हूँ मैं रक्षाके लिये साज सजाओ।
त्यौहार सलोनोकी भलो भाँति मनाओ" ॥ १३ ॥

रणजीत भी चलनेके लिये हो गया तैयार।
सुनतेही खबर, बाँध लिये फौजने हथियार॥
डोलोंपे चली रानियाँ, हर ओर थे सरदार।
चन्दा भी चली मध्यमें सब साजके सिंगार॥

डोलेमें च म भी थी, बारूद भी थो साथ।
थो विषकी डली जबमें, जहरीली छुरी हाथ ॥ १४ ॥

थी चित्तमें "यदि 'राय पिथौरा'ने सताया।
और सैनके वीरोंको अगर काट गिराया॥
परमालकी इज़्ज़तपै अगर दाँत गड़ाया।
डोलोंके पकड़नेको अगर हाथ बढ़ाया॥

तो प्राण-पखेरूको उड़ाते न लगे देर।
चौहानके कर आये फ़क़त लाशोंका ढेर" ॥ १५ ॥

बस, देखने लायक थी सलोनेकी सवारी।
सरदारोंने पोशाक हरी शौकसे धारी॥
हर नारिने थी तनपै सजाई हरी सारी।
ज़ेवर भी थे पन्नोंके, जो थे मोलके भारी॥

रनवासके डोले हरे परदोंसे मढ़े थे।
सब राजकुँवर शौकसे सब्ज़ोंपै चढ़े थे॥ १६ ॥

डोलोंके कहारोंकी भी पोशाक हरी थी।
था छत्र हरा, चौंर हरी, सब्ज़ छरी थी।

थे सब्ज़ कमरबन्द तो ढाली भी हरी थी।
तलवार हर एक वीरकी ज्यों सब्ज़परी थी॥

थे शीशपै दोने भी कजलियोंके हरे रङ्ग।
होते थे जिन्हें देखके पत्तोंके भी दिल दङ्ग॥ १७॥

धरतीपै तो लहराती थी धानोंकी कियारी।
कुछ ऊँचेपै लहराती थी हर नारिकी सारी॥
सिरपर भी कजलियोंकी लहर डोलती भारी।
लहराते थे जी ज्वानोंके सुन राग मल्हारी॥

यह जानके उपमा है मेरे ध्यानमें आती।
सुरपतिको धरा अपनी उमंगें थी दिखाती॥ १८॥

सुरपतिको धरा अपनी उमंगें थी दिखाती।
चौहानके भयसे थी किधौं काँपती जाती॥
या भूमि अभयसिंहकी हिम्मत थी बढ़ाती।
या युद्धसे हट जानेको थी सैन जनाती॥

या आप महोबेको धरा क्रोधसे भर कर।
चौहानसे लड़नेको लपकती थी उभर कर॥ १९॥

हर ओर नज़र आती थी बस ऐसीही हलचल।
प्रत्येक सुघर व्यक्ति हरा और सुचञ्चल॥
कवियोंने था इस प्रश्नको इस भाँति किया हल।
श्यामा है चली श्यामपै, लहराता है अञ्चल॥

या झूमती पृथ्वी है सुने तान मल्हारी।
या आई किरसुवाके निकट जम्बु-कुमारी (१)॥ २०॥

(१) जम्बु-कुमारी—यमुना।

माहिलने उधर जाके पिथौराको जनाया।
"चन्द्राके हड़प" लेनेका मौक़ा भला आया॥
मल्हनने है चन्द्राको किरितुवापै पठाया।
रक्षामें है दो बालकोंको सङ्ग लगाया॥
कुछ सैन उधर भेजके निज काम निकालो।
धमकाके भगादो उन्हे, चन्द्राको छिना लो" ॥ २१ ॥

चौहानने यह सुनतेही चौंड़ाको पठाया।
और टङ्कके नर-नाथको भी सङ्ग लगाया॥
सर्दनको भी, मर्दनको भी, सूरजको बोलाया।
और सबको भली भाँतिसे उत्साह दिलाया॥
"रञ्जितको (१) अभयसिंहको घुड़कीसे भगाना।
परमालकी बेटीको पकड़ साथमें लाना" ॥ २२ ॥

सबने यही समझा, कि घुड़कीसे डरेंगे।
लड़के हैं, भला ज्वानोंसे क्या रार करेंगे?
चौंड़ाकी सुने घुड़की कहाँ धीर धरेंगे?
टंकेशकी ललकारसे दम-भर न अरेंगे॥
डोलेका छिना लेना है ज्यों भातका खाना।
या जैसे, कि चुम्बकके लिये लोह उठाना॥ २३॥

चौंड़ाने झपट आगे अभयसिंहको टोका।
जाते हो कहाँ वीर! लिये संग महोफा?

---

(१) रञ्जित—रणजीतसिंह।
(२) महोफा—पालकी।

आता है नज़र आज कोई रङ्ग अनोखा।
या मेरी नज़रहीको हुआ है कोई धोखा?
इस डोलेमें है कौन? ज़रा मुझको बताओ।
तब होके अभय आगे कदम अपना बढ़ाओ" ॥ २४ ॥

"क्या तुमको नहीं ज्ञात, कि है मास य सावन?
और आज है त्यौहार सलोनोंका सोहावन॥
भगिनीके लिये होता है त्यौहार य भावन।
भाई भी प्रकट करता है निज प्रेम सुपावन॥
चन्द्रावली जाती है कजलियोंको सिराने।
भगिनी है मेरी, जाता हूं मैं उसको रखाने"

"शाबाश! बड़े वीर हो, सब सत्य बताया।
रक्षा करे आफतसे तुम्हारी महामाया॥
पर हमको पिथौराने है इस हेतु पठाया।
लें छीन य डोला, करें रक्षकका सफाया।
डोला हमें दो, लौटके तुम घरको सिधारो।
बालक हो अभी, लड़के न निज वंश बिगारो

"हाँ! आप पिथौराके कोई वीर हैं भारी?
आये हैं यहाँ छीनने भगिनीको हमारी?
कर आये हो लड़नेकी भी सब भाँति तयारी?
इस हेतुसे हो रोकते सावनकी सवारी?
पर याद रखो, मुझको भी साहिल न समझना।
है नाम अभयसिंह समझ-बूझ उलझना॥ २७॥

जबतक मेरे भुज-दण्डमें है रक्तका संचार।
और हाथ चला सकता है इक काठकी तलवार॥
कन्धोंपै मेरे शीश है और दिलमें रकत-धार।
हिलनेकी सकत बाकी है, कर सकता हूँ कुछ वार॥
तबतक तो किसी वीरको डोला नहीं दूँगा।
यमराज भी आ जायँ तो मैदान करूँगा॥ २५॥

बालकही समझ आये हो तकरार बढ़ाने?
लज्जा नहीं, लड़कोंसे चले डोला छिनाने!
अच्छा, अभी हो जायेंगे सब होश ठिकाने।
मालूम नहीं तुमको हैं, वीरत्वके बाने॥
या रणमें निर्मोही नहीं, या तनपै नहीं सर।
अब बात अगर करना तो बस, पीछेही हरदम॥ २६॥

मैं एकही चौहानकी क्या बात बताऊँ।
चौदा भी हों चौहान, तो कुछ दिलमें न लाऊँ॥
चौबीस हों चौंड़ा, तो अभी काट बहाऊँ!
ताहिर भी हों यदि तीस, तो तत्काल गिराऊँ॥
जीतेही इस सिरके, डोलेको छिनाना।
बौनापन है चन्दाके लिये हाथ बढ़ाना॥ २७॥

दिल्ली नहीं, यह ग्राम महोबाकी धरा है।
बसते हैं यहाँ जिनमें कि वीरत्व खरा है॥
हर धूलकी कणिकामें यहाँ जोश भरा है।
मरनेका यहाँ खौफ किसीको न ज़रा है॥

मताकी, बहिन-बेटीकी लज्जाको रखाना।

समझे हैं यहाँवाले इसे वीरका बाना ॥ २१ ॥

जननीका, जनम-भूमिका सम्मान बढ़ाना।

बेटी व बहिन, धेनुको सब भाँति रखाना ॥

ख़ुद आके भिड़े उसको भी करतूत दिखाना।

दीनोंको सतावै उसे यमधाम झँकाना ॥

पितरोंका बड़े-बड़ोंका सत्कार कराना।

इसकोही समझते हैं यहाँ वीरका बाना ॥ २२ ॥

बस, आपमे यदि बल है, तो तलवार निकालो।

दो-चार छः-दश वार प्रथम मुझपै चला लो ॥

पहले तो मेरे हाथसे हथियार गिरा लो।

या मेरी सिरोहीकी ज़रा धार फिरा लो ॥

सब शौकसे इस डोलेपै निज हाथ लगाना।

आसान नहीं, सिंहके सावकको सताना ॥ २३ ॥

यह कहके अभयसिंहने तलवार निकाली।

होने लगी दोनोंमें कटाछानकी * पाली ॥

अभईने जो घाली उसे चौंड़ाने बचा ली।

चौंड़ाने चलाई उसे अभईने उछाली ॥

घन पड़ता था लखतेही अभयसिंहका उत्साह।

यह शक्ति नहीं, लेखनी लिखकर करै निर्वाह ॥ २४ ॥

---

* इस निशानवाले शब्द तलवारके हाथों और काटोंके नाम हैं। जो लोग कायदेकी रीतिसे गदाफरीका अभ्यास करते हैं, वे बखूबी समझ सकते हैं।

थी हाथ तमाँचेका* तो रपटनसे बचाते ।
थी हूल* तो इक पैंतरा पीछेको हटाते ॥
भण्डारेके* हाथोंको कमरकससे* बहाते ।
और चोरके* हाथोंमें उछल-कूद मचाते ॥
गिरवानके* हाथोंको गुलूबन्दसे रोका ।
खरतोड़के* वारोंमें दिया ढालका झोंका ॥ ३५ ॥

लठबन्धके* हाथोंको रपटवानसे * झेला ।
बगलीके* विकट वारमें था दूमका* रेला ॥
फिर हाथ करौटीका* बहालीसे ढकेला ।
हिरदौलके* वारोंको गड़पतानसे * ठेला ॥
रुस्तम भी अगर देखता अभईकी कटाछान ।
"शाबाश अभयसिंह!" य कह उठता उसी आन ॥ ३६ ॥

इस ओर अभयसिंहने चौंड़ाको झुकाया ।
रञ्जीतने सूरजका उधर शीश उड़ाया ॥
टंकेशसे रणधीरको यम-धाम झँकाया ।
यह देखके ताहिरको पिथौराने पठाया ॥
ताहिरका भी होने लगा रण-खेतमें सत्कार ।
हर ओर विकट धूमसे झरने लगी तलवार ॥ ३७ ॥

ताहिर था मुसलमान विकट वीर महा शूर ।
तलवारके फ़नमें था चतुर-चूड़ व मशहूर ॥
रञ्जित व अभय लड़के थके-माँदे थे भरपूर ।
बस, फलके लिये जाना पड़ेगा न तुम्हें दूर ॥

तुम आप समझ सकते हो, इस युद्धके फलको ।
अनुमानसे तौलो तो युगल ओरके बलको ॥ ३८ ॥

ताहिरसे भिड़े वार युगल ज़ोरसे ललकार ।
ताहिर भी लगा करने सँभल-सोचके तलवार ॥
रञ्जीतने ताहिर पै किये घूमके कुछ वार ।
पर, सकता है कर कैसे थका वीर विकट मार ?

गिरवानसे रजीतका सर धड़से उड़ाया ।
और देके तमाँचा किया अभईका सफ़ाया ॥ ३९ ॥

पृथ्वीपै पड़े मुण्ड युगल कहते थे ललकार,—
"शाबाश ! बड़ी तेज़ है, ताहिर ! तेरी तलवार" ॥
और रुण्ड-युगल धूमसे करते थे विकट मार ।
जिस ओर झपट जाते, उधर पड़ता हहाकार ॥

इन रुण्डोंने बिना मुण्ड किये दममें बहुत ज्वान ।
गिरते हुए पूरे किये अपने दिली अरमान ॥ ४० ॥

हे वीर अभयसिंह ! तुम्हें धन्य सहसवार ।
रंजीत ! तुम्हारे लिये शाबाशकी बौछार ॥
भगिनीको बचानेमे बहाई जो रकत-धार ।
कवि कौन है, जो पैरके कर जाय उसे पार ?

सब हिन्दकी बहिनोंको जो भाई मिलें ऐसे ।
फ़ौरनही निकल जायें दिवस इसके छनैसे ॥ ४१ ॥

ब्रह्माने सुना हाल, तो दौड़ा चला आया ।
उत्साह सहित आके विकट युद्ध मचाया ॥

सर्दनको व मर्दनको तुरत काट गिराया।
चौंड़ाको भी चकराया तो ताहिरको तपाया॥
इतनेहीमें ऊदल भी वहाँ आन पधारे।
आये तो, मगर रूप थे वैरागीका धारे॥ ४१
थे साथमें ऊदलके कई वीर लड़ाके।
धनुआ(१) व लला(२) बाल-सखा साथ थे बाँके॥
लाखन भी थे मौजूद, जो थे वीर बलाके।
बस, बाँध लिये दौड़के हर ओरसे नाके॥
और करके विकट मार सकल दलको भगाया।
त्यौहार सलोनोका भली भाँति कराया॥ ४२॥

---

(१) धनुआ—यह वीर, जातिका तेली था।
(२) लला—यह वीर, जातिका तमोली था।

तीसरा रत्न

क्षत्रीका परम धर्म है रण-खेल मचाना।
रण-भूमिमें मरना है तुरत स्वर्गमें जाना॥

भगवानदीन।
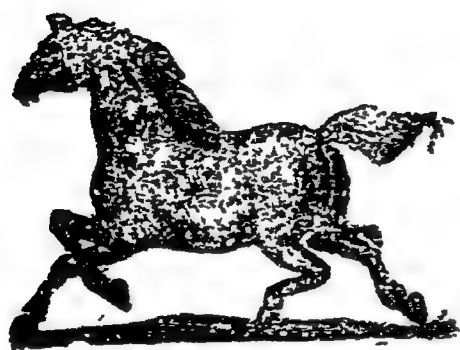
थी "चैत्रके चन्द्रसी" मगर नाम था 'तारा'।
बिदनौरके श्री 'सेन' सहित 'सूर' (१) की कन्या ॥
बन्नाससे ले टोंकतलक राज्य था जिसका।
मङ्गल था चहूँ ओर, शनिश्चरका न डर था ॥
ज्ञानी थे बृहस्पतिकी तरह राज्यके अमला।
कवियोंकी तरह युक्तिमें प्रख्यात था राजा ॥ १ ॥

क़िस्मतके उलट-फेरसे कुछ राज्यका हिस्सा।
दिल्लीके शहंशाह अलादीनने दाबा ॥
कुछ और भी हिस्सेको इक अफ़ग़ानने हड़पा।
और टोंकमें फहराने लगा अपनी पताका ॥
लैलाने (२) लिया टोंक तो मजनूँ से हुए 'सूर'।
दब जाता है ज्यों राहुसे चन्दा कभी भरपूर ॥ २ ॥

लड़का जो था, ले सकता न था बापका बदला।
कन्या थी यही एक, जिसे कहते थे 'तारा' ॥

---

(१) ताराके पिताका नाम 'श्री शूरसेन' था।

(२) लैला—उस मुसलमानका नाम था, जिसने शूरसेनसे टोंक छीना था।

सब राज्य गया, बच रहा बिदनौर अकेला।
इस हेतु दुखी और विमन रहता था राजा॥
ताराकी थी उस वक्त, बरस दसकी अवस्था।
क्या जानती थी वह? उसका किया होताही क्या था?॥ ३॥
पर, बापका दुख देख यह की उसने प्रतिज्ञा।
'वापस न लूँ यदि राज्य तो बस, व्यर्थ है जीना'॥
उस दिनसे लगी सीखने हथियार चलाना।
घोड़ेकी सवारीहीमें मुद्गर भी हिलाना॥
और बाँक, पटा सीख, बनेठीके लिये हाथ।
लड़केकी तरह बापके रहती थी सदा साथ॥ ४॥
कुछ रोज़में बढ़कर हुई जब षोड़शी बाला।
चेहरेपै चमक आई, हुआ हुस्न दुबाला॥
सब अङ्ग भरे, पूरे, बने काम-अखाड़ा।
राजोंके कुँवर करने लगे ब्याहकी इच्छा॥
तब ठानी, कि "बस ब्याहूँगी उस राज-ललाको,
—ललाका वध, राजा कर मेरे पिताको"॥ ५॥
जयमलने सुनी ऐसी वे ताराकी प्रतिज्ञा।
कहलाया, कि "मैं पूरी करूँगा तेरी इच्छा"॥
ताराने भरी हामी, तो जयमल चला आया।
रहने लगा बिदनौरमें कर ब्याहकी आशा॥
करने लगा तैयारी, कि लैलाको गिराऊँ।
"जन्नत में जिसका, उसे फिर कण्ठ लगाऊँ"॥ ६॥

इक रोज़, कि जब शर्त ये पूरी न हुई थी।
शादीकी भी कुछ रस्म ज़रूरी न हुई था॥
तैयारी भी सेनाकी अधूरी न हुई थी।
जयमलसे व तारासे हुज़ूरी न हुई थी॥
जयमलने कही तारासे कुछ प्यारकी बातैं।
और साथही करने लगा मनुहारकी बातैं॥ ७॥

ताराने कहा, "अबकी क्षमा करती हूँ तुझको।
हे राजकुँवर! 'प्यारी' न कहना अभी मुझको॥
जबतक कि मेरी शर्तको तुम पूरी न कर लो।
और ब्याहमें यह हाथ मेरा तुम न पकड़ लो॥
तबतक तुम्हें वाजिब नहीं यों प्यार जताना।
अब आगेसे इस शब्दसे मुझको न सताना"॥ ८॥

ताराका कथन उसके न कुछ दिलमें समाया।
समझा, कि य है प्रेमका इक भाव जताया॥
फिर एक समय वैसेही कुछ प्रेम जनाया।
ताराने वहीं खड्गका इक हाथ जमाया॥
बस, धड़से जुदा होके गिरा मुण्ड वहींपर।
और लाश तड़पने लगा इक ओर ज़मींपर॥ ९॥

जयमलका सगा भाई पृथ्वीराज य सुनकर।
भाईके लिये शोकसे निज शीशको धुनकर॥
ताराके किये कामको निज ध्यानसे गुनकर।
क्षत्रीकी तरह वीर-उचित क्रोधसे भुनकर॥

ताराको चला ब्याहने कर शर्तको पूरी ।

है मर्द वही शर्त जो छोड़े न अधूरी ॥ १० ॥

था वीर पृथीराज उधर बातका सच्चा ।

इस ओर भी ताराका कलेजा न था कच्चा ॥

यह जानके बस, बापने शुभ ब्याह रचाया ।

आनन्द-सहित शूरको शूरासे मिलाया ॥

मण्डपहीके नीचे हुई सौगन्द उसी छन ।

'लैलाको बधे बिन न छुटे ब्याहका कंकन' ॥ ११ ॥

दूल्हाने सजी सेन वो दुलहिन भी बनी नर ।

हथियार सजे आ गई निज घोड़ेपै चढ़कर ॥

थी मास मुहर्रमकी व तारीख़ मुकर्रर ।

जिस रोज़ शबेकत्लकी होती है भराभर ॥

बस, ऐसेही मौक़ेमें चढ़ी टोंकपै तारा ।

जिस वक्त गनीमोंने (१) है हस्नैनको (२) मारा ॥ १२ ॥

सब फौजको दो कोसकी दूरी पै खड़ी कर ।

तारा व पृथ्वीराज चले घोड़ोंपै चढ़ कर ॥

कन्धेपै पड़ी ढाल, कमरमें खुँसा खंजर ।

भाले थे रक़ाबोंमें पड़े, जाँघपै जमधर ॥

सीनेमें तवा, हाथमें दोनोंके कड़ाबीन ।

तलवारें सिराहीकी लगी जीनसे दो तीन ॥ १३ ॥

---

(१) गनीमों—शत्रुओं ।

(२) हस्नैन—मुहम्मद साहेबके नवासे—हसन और हुसैन।

इस शानसे जा पहुँचे जहाँ गोल जुड़ा था ।
लैला भी सखा साथ लिये पास खड़ा था ॥
हर ओरसे 'हा, हाय, हसन !' शोर पड़ा था ।
इस मौक़ेपै इन दोनोंका साहस भी कड़ा था ॥
इस ओरको पिछले, कभी उस ओरको धाये ।
जा अन्तमें लैलाके निकट घोड़े डटाये ॥ १४ ॥

इन दोनों सवारोंकी जो थी क्रोध-भरी शान ।
बस, देखके लैलाने किया जल्द ही अनुमान ॥
'छत्री है विगड़ कर कहीं कर बैठें न घमसान' ।
बुलवाके पुलिसवाले कड़े चार-छः अफ़गान ॥
उनसे कहा,—'इन दोनों सवारोंको हटा दो ।
कुछ और बुला ज्वान मेरे पास डटा दो" ॥ १५ ॥

बस, शब्द 'हटा दो' का पड़ा कानमें जिस दम ।
मुखड़ा हुआ ताराका विकट क्रोधसे तमतम ॥
आँखोंसे झड़ी आग, फड़क उट्ठीं भुजा खम ।
घोड़ेपै सँभल बैठी, कहा "जाते हैं अब हम" ॥
ली खैंच सिरोही व इधर एँड़ लगाई ।
बिजलीसे भी कुछ बढ़के करामात दिखाई ॥ १६ ॥

लैलापै किया वार तो सिर धड़से उड़ाया !
घोड़ेको दपट ज़ोरसे शहवार भगाया ॥
हुंकारसे गोविन्दको "बस, भागो" जताया ।
जो सामने आया, किया बस उसका सफ़ाया ॥

इस भाँति लपक शीघ्र शहर-द्वारपे आई।

द्वारे पे खड़ा मस्त पड़ा पील दिखाई ॥ १७ ॥

यह देख दशा ताराने जब पीछेको ताका।
देखा, कि पृथ्वीराज चला आता है दौड़ा॥
है पीछे लगा उसके सवारोंका रिसाला।
इस ओरसे हाथीने लिया रोक है रस्ता॥

घरदवमें है खाविन्द' -- ताराने विचारा।

रुख फेरके झट पायँसे भालेको निकाला॥ १८॥

सन्नाटेसे मस्तकपै दिया पीलके भाला।
यह देख, पृथ्वीराजने भी खाँड़ा निकाला॥
और दोनोंने इकदम जो किया पीलपै धावा।
बस, पीलने समझा, कि किया सिंहने हमला॥

ताराने सिरोहीसे झपक सूँड़ उड़ाई।

दाँतों की पृथ्वीराजने कर डाली सफ़ाई॥ १९॥

इस कष्टसे हाथी जो चमक चौंध चिघारा।
निज प्राण बचानेके लिये ज़ोरसे भागा॥
मस्तकसे महावत भी टपक भूमिपै आया।
और दोनोंने इस भाँति खुला मार्ग जो पाया॥

रपटाके घोड़ोंको मिले फ़ौजमें जाकर।

सब रह गये अफ़ग़ान वहीं काम दयाकर॥ २०॥

सब फ़ौज लिये फिरसे किया टोंकपै धावा।
अफ़ग़ानोंने समझा, कि ये है कोई छलावा॥

सरदार मरा, पील कटा और दल आया।
ताराकी विकट फुर्तीने यों सबको छकाया॥
हिम्मत न रही दिलमें, करे कौन लड़ाई?
बस, फिर गई ताराकी नगर-बीच दोहाई॥ २१॥

अफ़ग़ानोंका बल तोड़, नगर टोंक छिनाया।
आनन्द-सहित बापको नरनाह बनाया॥
संसारमें क्षत्रीत्वका सम्मान बढ़ाया।
हिम्मतसे जो होता है वह सब करके दिखाया॥
यह सत्य है सब हिन्दका इतिहास बताता।
समझे न कोई, मैं हूं निपट बात बनाता॥ २२॥

जिस हिन्दमें हो गुज़री है इस ओजकी कन्या।
उस हिन्दके वीरत्वका कहना है भला क्या?
पर अब तो नज़र आता है कुछ रङ्ग सा बदला।
हर मर्द बना जाता है भयभीत सी अबला॥
औरों सी करें साँग, अजब माँग सँवारें!
पूसे जो कहीं बिल्लो तो नौकरको पुकारें॥ २३॥
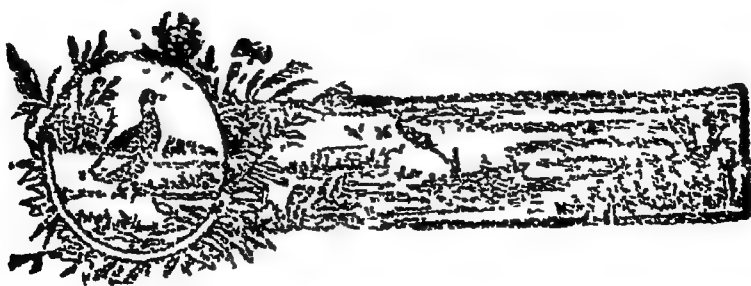
औरत हो रहे मर्दका नित रूप बनाये।
इस भाँति, कि कोई भी ज़रा जान न पाये ॥
पुरुषोंके रहे साथ सदा शस्त्र चढ़ाये
रण-भूमिमें जा-जाके भी कुछ हाथ दिखाये ॥
दो-तीन बरसतक, य सुगम बात नहीं है।
कह सकता है यह कौन करामात नहीं है? ॥ १ ॥

पर, एक सहस आठ सदो आठके सन्‌में* ।
ऐसी ही हुई बात है भूपालके बनमे ॥
लिक्खी हुई है बात ये इतिहासके तनमे ।
आई न कभी थी जो उपन्यासके मनमे ॥
जो शख़्स न माने वह ज़रा जाँच भी कर ले।
सच कहता हूँ, या झूठ है, दिल अपना भी भर ले ॥ २ ॥

भूपालके जङ्गलमें था इक गाँव ज़रा सा ।
रजपूत वहाँ रहता था इक वीर कड़ा सा ॥
लड़नेके लिये रहता था हर वक़्त उपासा ।
समझे था लड़ाईको फ़क़त वीर-तमाशा ॥

---

* सन् १८०८ ईस्वी ।

भूपालके राजाका रहा था कभी चाकर।
बूढ़ा हो रहा करता था निज धाममें आकर॥ ३॥

था पुत्र फ़क़त एक जिसे कहते जुरावर*।
कन्या थी यही जिसने किया वंश उजागर॥
माताने इसे पाला था छातीसे लगाकर
रहता था सुखी बाप इसे गोद खिलाकर॥

ओड़ेमें गुज़र करते थे ये चार जने मिल।
सब दुःख मिटा देता है सन्तोष-भरा दिल॥ ४॥

सीधोंको सदा ढूँढ़के टेढ़ोंसे हराना
सच्चोंका महा झूठोंसे अपमान कराना॥
अच्छोंका बुरे हाथोंसे सम्मान घटाना।
धर्मीको अधर्मीके भी आधीन बनाना॥

है चाल यही कालकी, धीरोंको सताना।
वीरोंको भी औलादको यों दुःख दिखाना॥ ५॥

बस, कालने निज चाल यहाँपर भी चलायी।
माताकी तथा बापकी कर डाली सफ़ाई॥
बाक़ी रहा सोलाही बरसका सगा भाई।
पद्मापै य घनघोर घटा दुःखकी छाई॥

बलिहारी समयकी, कि ज़रा भी न तरस की।
आफ़त य पड़ी, पद्मा थी जब बाईस बरसकी॥ ६॥

---

* इसका असल नाम 'जोरावरसिंह' था, पर प्यारसे सब लोग 'जुरावर' या 'जुरौरा' ही कहते थे।

वह थोड़ा सा धन बापने जो कुछ था बचाया ।
लड़केने मृतक-कर्ममें चुपचाप लगाया ॥
हा ! बाप मरा, माता गई धन भी गँवाया ।
इस धर्मने बस, हिन्दका कर डाला सफाया ॥
भगिनी थी बहुत छोटी जुरावर भी था बालक ।
इस हालमें ईश्वरके सिवा कौन था पालक ? ॥ ७ ॥

निज धर्म समझ भाईने भगिनीको सँभाला ।
मेहनतसे कमाई की, बड़े प्यारसे पाला ॥
कुछ कर्ज भी ले-लेके कभी काम निकाला ।
पद्माको नहीं होने दिया कष्ट-कसाला ॥
ला देता खिलौने, कभी कपड़े, कभी गहने ।
सुख-शान्तिसे खेले, बड़े आनन्दसे पहने ॥ ८ ॥

सह कष्ट, बड़े प्रेम सहित, पाला बहिनको ।
दस वर्षकी कर दी, नहीं छोड़ा कभी छिनको ॥
बाहर कहीं जाता, कभी दो-चार-छः दिनको ।
ले जाता उसे साथ समझता न था किनको ॥
पद्माको समझता था सदा बन्धु बराबर ।
सब धर्म सिखाए उसे शास्त्रोंके सरासर ॥ ९ ॥

घोड़ेपै चढ़ाता, कभी हथियार सिखाता ।
दौड़ाता कभी, साथमें कसरत भी कराता ॥
रोटी भी कराता, कभी पानी भी भराता ।
सब काम गृहस्थीके, सहित-प्रेम बताता ॥

यों भाईकी शिक्षासे चतुर हो गई बाला।
घर थाम, घटाने लगी भाईका कसाला ॥ १० ॥
भाई व बहिन दोनों बड़े प्रेमसे रहते।
आती जो मुसीबत तो बड़े धीरसे सहते॥
इक-एकसे सब बात बड़े नेहसे कहते।
यों भूल-भुला कष्ट, सदा मोदको लहते॥
ईश्वरने दिया था उन्हें उस नेहका प्याला।
जिस नेहसे संसारमें होता है उजाला ॥ ११ ॥
ऐसे ही बहिन-भाई जो सब हिन्दमें हो जायँ।
भारतके सकल दुःख मिनट-मात्रमें खो जायँ॥
सौभाग्य जगै हिन्दका, सब कष्ट भो सो जायँ।
धन-शक्ति बढ़ै, हिन्दके सब पाप भी धो जायँ॥

आनन्द उमड़ सिन्धुसा लहरावै सभी ओर।
जय रामकी, जय धर्मकी सब ओर उठै शोर ॥ १२ ॥
कुछ रोज़में जब और सयानी हुई पद्मा।
हर बात समझने लगी, सुनने लगी चरचा॥
भाईको बड़े क़र्ज़में डूबा हुआ पाया।
हर रोज़ किया करते थे कुछ लोग तक़ाज़ा॥
"मेरे लिये भाई मेरा क़र्ज़में फँसा है।"
पद्माके यही ध्यान कलेजेमें धँसा है ॥ १३ ॥
इस ध्यानसे पद्माको रहा करती थी चिन्ता।
इस हेतु कभी चिरासे अकुलाती थी पद्मा॥

"मैं कैसी करूँ, जिससे कि ऋण-मुक्त हो भ्राता।"
चेहरेपै झलकती कभी इस सोचकी आभा॥
पर भाईको अपने न कभी सोच जताती।
हो उसको उदासी तो जुगुत करके मिटाती॥ १४॥

ऐसा हुआ इक रोज़ कि इक साहु घर आया।
'ऋण मेरा पटा दो अभी' यह बोल सुनाया॥
दो-चार बुरे वाक्य कहे, क्रोध दिखाया।
पद्माने उसे मीठेसे वचनोंसे बुझाया॥
"काकाजी! दिया जायगा ऋण आपका सारा।
क्यों करते हो इस भाँतिसे अपमान हमारा?"॥ १५॥

कुछ दिनमें उसी साहुने भूपालमें जाकर।
दरबारमे फरयाद की राजाको सुनाकर॥
मँगवाया जुरावरको पकड़ क़ैद कराकर।
डलवाया उसे जेलमें यों बन्दी बनाकर॥
इस साहुका, हा! कैसा था बेदर्द कलेजा!
था एक सहारा, उसे यों जेलमें भेजा!॥ १६॥

इस वक्तकी हालतपै ज़रा ध्यान तो दीजै।
पद्माकी दशा कैसी है, अनुमान तो कीजै॥
ब्याही नहीं, परिवार नहीं, कौन पसीजै?
इस भाँतिकी आफ़तमें कहो कौन न छीजै?
अबलाने मगर धीरसे हिम्मत नहीं हारी।
'ऋण देके छुटा लूँगी' यही बात बिचारी॥ १७॥

मर्दाना किया भेष, लिया हाथमे नेज़ा।
आरम्भ जवानी थी, उछल उट्ठा कलेजा॥
काँधेपै पड़ी ढाल, कमरमें कसा तेग़ा।
ढालीमें बँधी साँग, लटकाता था तमञ्चा॥

फिर नाम बदल अपना पदुमसिंह रखाया।
चल सेंधियाकी सैनमें निज नाम लिखाया॥ १८॥

नायकने क़वायदमें जो पद्माको थहाया।
सब भाँतिसे पद्माका हुनर ठीकही पाया॥
बन्दूक़की गोलीसे निशाना भी उड़ाया।
घोड़ेपै चढ़ी, भालेसे खूँटा भी उखाड़ा॥

नायक भी हुआ दङ्ग, कि यह कैसा युवा है?
इन्सान है, या देव है, या कोई बला है॥ १९॥

उस वक्त़ वहाँ सेंधिया* दौलतका था दौरा।
अङ्गरेज़ोंसे चलताही रहा करता था झगड़ा॥
पद्माको पड़ा तीन बरस युद्धमें रहना।
उस वक्त़के कर्तव्यकी क्या बात है कहना?

दस बार निकट युद्धमें हथियार चलाया।
जो सामने आया, उसे यमलोक दिखाया॥ २०॥

दो बार लगी रानमे बन्दूक़की गोली।
हाथोंसे कसी पट्टी, कभी उफ नहीं बोली॥

---

* श्रीमान् दौलतरावजी सेंधिया उस समय राजा थे।

हिम्मतसे किया करती थी कायरकी ठठोली ।
"साड़ीको पहन नारी बनो, बाँध लो चोली ॥
चूड़ी लो पहन हाथमें और नाकमें बेसर ।
मिस्सी मलो दाँतोंमें, लगा गालमें केसर" ॥ २१ ॥

दो-तीन दफ़ा युद्धमें मौक़ा भला आया ।
संकटके समय फ़ौजके नायकको बचाया ॥
जी होमके घमसानमें हथियार चलाया ।
ललकारके वीरोंको ग़ज़ब जोश दिलाया ॥
हमलेको हटा शत्रुका दल मार भगाया ।
इस भाँति हवलदारका पद शीघ्रही पाया ॥ २२ ॥

रहती थी जवानोंमें सदा मर्दकी नाईं ।
पर भेद न पाता था कोई ऐसी थी चाईं ॥
सब लोग समझते थे कि मूँछें नहीं आईं ।
मकुना ❀ है पदुमसिंह हवलदार पछाईं ॥
कुछ ऐसे भी थे, करते थे सन्देह निराला ।
बे-मूँछका यों ज्वान कभी देखा न भाला ॥ २३ ॥

देखा न कभी उसको किसीने भी नहाते ।
भोजनही बनाते, न कभी भोग लगाते ॥
पेशाब व पाख़ानेको मैदानमें जाते ।
गर्मीमें कभी नग्न बदन नींदमें माते ॥

❀ मकुना—बिना मूँछोंका ।

ये काम सभी होते सदा आड़में होकर।
कोई न फटक पाता कभी डाँड़में होकर ॥ २४ ॥

इन बातोंसे सब लोगोंको सन्देह था भारी।
क्यों सबसे इसी ज्वानकी सब रीति है न्यारी?
नीचीही नज़र रखता है क्या बात विचारो?
क्या मर्द नहीं, ख्वाजा है, या है कोई नारी?

पर, युद्धमें हैं काम किये वीर-नरोंके।
यों कान भी काटे हैं बड़े शूर-नरोंके ॥ २५ ॥

रज-युक्त वसन त्यागके बालूमें दबाते।
घोड़ेको भी नहलाके नदी तीर फिराते॥
एकान्तमें भय त्यागके जल-केलि मचाते।
दिन एक कहीं दूर नदी-तीर नहाते॥

निज दलके किसी एक सिपाहीने लखा सब।
और कह दिया कप्तानसे, यह भेद खुला तब॥ २६ ॥

कप्तानने सन्ध्याके समय पास बुलाकर।
सम्मानसे बैठाल, बहुत प्यार जताकर॥
जो कुछ कि सुना था, वही सब बात सुनाकर।
सच बात बतानेकी भी सौगन्द दिलाकर॥

पूछा जो सकल हाल तो पद्माने सुनाया।
"भाईकी मुसीबतने ये सब मुझसे कराया"॥ २७ ॥

"शाबाश! जियो बेटी! तुम्हे धन्य है सौ बार।
मैं जाके सुनाता हूँ, य सब बरसरे-दरबार॥

महाराजसे दिलवाता हूँ धन तुझको कई भार ,
भाईकी रिहाईका भी करता हूँ कुछ उपचार ॥

महाराजको आज्ञाहोसे भूपालकी सरकार ।
आगा है, कि दे छोड़ उसे, औ करे सत्कार" ॥ २८ ॥

कप्तानने जा हाल ये दौलतको सुनाया ।
उसने भी अधिक प्यारसे पद्माको बुलाया ॥
पद्माने भी सब हाल यथातथ्य बताया ।
भाईके महाप्रेमको सौ बार सुनाया ॥

कर याद के भाईकी निज नेह कहानी ।
भर आया गला, आँखोंसे झरने लगा पानी ॥ २९ ॥

सुन सत्य-कथा राजाका हियरा उमग आया ।
भूपालके दरबारको इक पत्र लिखाया ॥
कैदीको छुड़ाकर उसे निज पास बुलाया ।
आनन्द-सहित भाईको भगिनीसे मिलाया ॥

यों नेहके नाते जो हों मज़बूत जगतमें ।
क्या शै है बला, कष्ट न हो लेश विपतमें ॥ ३० ॥

कप्तानने पद्माको तो निज बेटी बनाया ।
अच्छेसे युवा क्षत्रीसे शुभ ब्याह रचाया ॥
राजाने जुरावरको जमादार कराया ।
'रनवासकी ड्योढ़ीपै रहो' हुक्म लगाया ॥

और अच्छेसे इक वर्षमें शादी भी करा दी ।
घर देके, सभी वस्तु गृहस्थीकी भरा दी ॥ ३१ ॥

था भाईने भगिनीको बड़े प्रेमसे पाला।
फिर जेलसे भगिनीने भी भाईको निकाला॥
दोनोंका रुचिर प्रेम लगा रामको अच्छा।
दुख मेटके दोनोंको दिया प्रेमका बदला॥
संसारमें सच पूछो तो बस प्रेम अक्षर है।
जो प्रेमसे भीगा न हो, वह नर नहीं खर है॥ ३१॥

इस प्रेमने संसारमें क्या क्या न कराया?
सीताके लिये रामको वन-वनमें फिराया॥
रीछोंसे, कपीशोंसे अगम सिन्धु बँधाया!
क्षत्रीके विकट क्रोधसे ब्राह्मणको जलाया॥
दुनियामें जो कुछ सार है, वह है यही सत्प्रेम।
निर्वाह भी होता है, जो कर जाने कोई नेम॥ ३२॥

हे राम! दयाधाम! सदा दीनके दानी!
भारतकी दशा दीन है, सब आपकी जानी॥
मौक़ा नहीं, यह कौन लिखै राम-कहानी?
है 'दीन'की कर जोड़के यह अर्ज़ ज़बानी॥
पद्मासी बहुत भेज दे इस हिन्दमें नारी।
सब काम बनैं, जगमें रहै कीर्त्ति तुम्हारी॥ ३४॥

थी हिन्दकी यह भूमि अजब वीर-प्रसूती ।
हो गुज़री हैं नारी भी जहाँ वीर अकूती ॥
दुष्टोंने यहाँ खाई है अबलाओंकी जूती ।
है आजतलक उनकी बनी कीर्त्ति अछूती ॥
र, अब तो अपुन्सत्वकी है बोलती तूती ।
अबलाओंकी क्या, नर भी बने जाते हैं लूती* ॥ १ ॥

इस हिन्दमें हो गुज़री हैं कुछ ऐसी भी नारी ।
मर्दोंकी तरह युद्ध किये है बड़े भारी ॥
दुश्मनकी बड़ी फ़ौज है निज हाथसे मारी ।
रण-भूमिमें जाकर नहीं पिछली हैं पिछारी ॥
गोविन्दके गिरनेसे भी साहस नहीं छोड़ा ।
निज देशके हित ख़ातिर कभी मुँह नहीं मोड़ा ॥ २ ॥

वीरत्वमें, धीरत्वमें, पति-प्रेममें आला ।
इस हिन्दमें हो गुज़री है लाखों ही सुबाला ॥
उनमेंसे है यह एकका कुछ हाल निराला ।
सुननेमें जिसे होता है यों दिलमें उजाला ॥

---

* लूती—हज़रत लूत मुसलमानोंके एक पैग़म्बर हुए हैं। उनके समयमें प्रजाके आचरण बहुत बुरे थे। उन्हीं बुरे आचरणोंकी ओर यह इशारा है।

ज्यों रात अंधेरीमें निशा-नाथकी छाया।

भरपूर प्रकाशे, हरे तमनोमकी माया॥ ३॥

खिलजी था अलादीन (१) जो दिल्लीका शहंशाह।

हो मस्त रजोगुणमें भुला दी थी सुगम राह॥

था चाहता वह हिन्दकी सतियोंसे करे व्याह।

था रूपका वैरी, न था पति-प्रेमका निर्वाह॥

चित्तौरकी पद्मावती-हित धूल उड़ाई।

जलताही रहा डाहसे, पर खाक न पाई॥ ४॥

रजथानमें (२) था एक करणसिंह महावीर।

सन्तोष सहित भोगता इक छोटीसी जागीर॥

था न्यायमें गम्भीर, बड़ा युद्धमें रण-धीर।

रैयत भी उसे मानती थी जैसे गुरू-पीर॥

सहधर्मिणी थी उसकी कलावन्ती कहाती।

गुण-रूपका भण्डार थी, वीरत्वमें माती॥ ५॥

चित्तौरमें जब शाहको कुछ हाथ न आया।

मन मारके खुद आप तो दिल्लीको सिधाया॥

सेनाके महावीरोंको यह हुक्म लगाया।

"मन-माना करो हिन्दुओंके धनका सफाया॥

यदि लूटमें मिल जाय कोई नारि भलीसी।

पहुंचाना मेरे पास अछूतीही कलीसी" ॥ ६॥

---

(१) अलादीन—अलाउद्दीन खिलजी।

(२) रजथान—राजस्थान या राजपूताना।

बहुतोंने सुना था, कि करणसिंहकी नारी ।
थी रूपमें पद्मासे तनक योंही पिछारी ॥
जो फौज थकी थी, सो दिल्लीको सिधारी ।
इक फौजके नायकने यही बात बिचारी ॥
"जाते तो हैं कुछ चलते समय ज़ोर दिखा लें ।
लड़ जाय अगर भाग्य, तो कुछ हाथ लगा लें" ॥ ७ ॥

यह सोच करणसिंहकी जागीरपै टूटा ।
रैयतको सताया, किसी सरदारको कूटा ॥
कुछ बाँध, बहुत काटे, किसी वैश्यको लूटा ।
तीतरके समूहोंमें हो ज्यों बाजसा छूटा ॥
यों ज़ेर-ज़बर वक्त करणसिंहने छनकर ।
पठवाया संदेसा यही निज न्यायसे गुमकर ॥ ८ ॥

"जो कहना हो, मुझसे कहो, रैयतसे न बोलो ।
यह धर्म है वीरोंका, इसे ध्यानमें तोलो ॥
जो गाँठ हो दिलमें उसे वीरत्वसे खोलो ।
मद-मस्त अँधेरेमें न यों राह टटोलो ॥
जब मैं न करूँ आपका सम्मान यथायोग ।
तब मेरी प्रजा पावै मेरे कर्मका यों भोग" ॥ ६ ॥

यह सुनके सँदेसा, कहा यवनेशने ललकार ।
"जा कह दे करणसे, कि मुझे नारि है दरकार ॥
या दै दे मुझे नारि, नहीं आके करै रार ।
देखी नहीं चित्तौरकी क्या उसने विकट मार ?

अग्र क्रोधसे मेरे न करणसिंह बचैगा ।
खायेगा बड़ी मार जो परपञ्च रचैगा" ॥ १० ॥

यह बात सुने क्रोध करणका उमड़ आया ।
'फौरनही सजे सैन' यही हुक्म लगाया ॥
अधरातको सरदारोंको निज पास बुलाया ।
'क्या चाहिये करना', यही बस प्रश्न सुनाया ॥

"रानी तो नहीं दूंगा, चहै राज्य हो बरबाद ।
रैयतके सतानेका चखाऊँगा उसे स्वाद" ॥ ११ ॥

सरदार भी थे वीर, लगे कहने, कि "महाराज !
दम रहते तो हम होने नहीं देवैंगे यह काज ॥
यह तुर्क तो क्या, आवैं अगर आपही यमराज ।
हम टूट पड़ैं जैसे गिरै हाथीपै वनराज ॥

क्षत्रीका परम धर्म है बढ़ रणमें करे मार ।
वैरीको न दे अश्व तथा नारि व तलवार" ॥ १२ ॥

होतेही सवेरा हुई सब फ़ौज भी तैयार ।
रण-बानेसे सज आ गये जागीरके सरदार ॥
बस, वीर करणने भी सजे अङ्गपै हथियार ।
उत्साहसे चेहरेपै दमक आई चमकदार ॥

आँखोंसे त्रिकट क्रोधकी ज्वाला थी लपकती ।
यमराजकी भी आँख जिसे देख झपकती ॥ १३ ॥

सब छोड़ अलङ्कार, तजे वस्त्र ज़नाने ।
सैनिकका किया भेष, सजे युद्धके बाने ॥

तलवार कड़ाबीन कसे ठीक ठिकाने।
भाला व तबर-तीर लिये ज़हरके साने॥
घोड़ेपै चली संग करणसिंहके रानी।
रण-भूमिमें पति-सेवाको थी दिलसे दिवानी॥ १४॥

दल दोनों जुड़े, होने लगो मार विकटकी।
वीरोंको हुआ हर्ष, कुमति कूरकी सटकी॥
पाई जो कहीं घात, वहीं उसपै झपट की।
बौछार पड़ी तीरोंकी, तलवार भी खटकी॥
भालोंकी सनासनमें तबर बोले छपाछप।
'ठाँ' बोली कड़ाबीन, तो खंज़रने कहा 'गप'॥ १५॥

लोथोंपै गिरीं लोथैं, बही ख़ूनकी धारा।
तब वीर करणसिंहने तुर्कोंको प्रचारा॥
"क्यों हटते चले जाते हो, क्या दिलमें विचारा?
बढ़ि आगे करो युद्धमें परितोष हमारा॥
हो वीर पुरुष, पीछे क्यों हटते चले जाते?
हम जानते ऐसा, तो कभी रणमें न आते"॥ १६॥

ललकार सुने वीर यवन जोशमें आये।
बढ़-बढ़के करणसिंहपै हथियार चलाये॥
सब वार करणसिंहने भरपूर बचाये।
यवनोंके कई वीर भी रण-सेज सोवाये॥
इस तरहके घमसानमें क्या किसको ख़बर थी?
सेना कहाँ, सरदार कहाँ, नारि किधर थी?॥ १७॥

पर, वीर करणसिंहकी पत्नी भी अजब थी।
खाँड़े की लड़ाईमें चतुर, धीर ग़ज़ब थी॥
उसकेही सती-भावकी करतूत य सब थी।
हिम्मत य भला वर्ना करणसिंहमें कब थी?
दिल्लीशकी सेनासे भिड़े जोश दिखाकर।
कुछ करके दिखा दे, उसे हथियार उठाकर॥ १८॥
दबसटमें (१) पड़े वीर करण, घाव लगे चार।
घोड़ेसे गिरे भूमिमें, बस हो गये बेकार॥
पत्नीने जो निज आँखोंसे देखा य समाचार।
बस, क्रोधसे जल-भुनके वहाँ हो गई अंगार॥
ख़ाविन्दको (२) उठवाके तुरत दूर पठाया।
ललकारके निज सैनको यह बोल सुनाया॥ १९॥
"हाँ, वीरो! ख़बरदार न हिम्मतको हराना।
तज वीरके बानेको न बन जाना ज़नाना॥
क्षत्रीका परम धर्म है रण-खेल मचाना।
रण-भूमिमें मरना है तुरत स्वर्गमें जाना॥
पीछे जो हटा उसको मैं दो खण्ड करूँगी।
आओ बढ़ो सग मेरे, मैं रण-चण्ड करूँगी॥ २०॥
यों कहके बढ़ी आगे, बड़े जोशमें भरकर।
रानीपै निछावर किये सब वीरोंने निज सर॥

(१) दबसट—दो तरफ़की दाव।
(२) ख़ाविन्द—पति।

घोड़ेपै चढ़ी जाती जिधर झटसे चपरकर।
धर देती उधर सैकड़ोंके शीश कतरकर॥
चण्डी सी बनी फिरती थी रण-भूमिमें धाई।
फट जाती थीं यवनोंकी सफ़ें, जैसे कि काई॥ २१॥

इक हाथ तबर, एकसे तलवार घुमाती।
दाँतोंमे लिये बागको थी अश्व चलाती॥
जाती थी लपक कर जहाँ सरदारको पाती।
बस, एक झपाटेमें उसे मार गिराती॥
यों सात यवन-सेनके सरदार मिटाये।
तुर्कोंकी बड़ी फ़ौजके यों होश उड़ाये॥ २२॥

सरदारोंके गिरतेही भगी फौज भराभर।
रानीकी ग़ज़ब मारसे सब काँपे थराथर॥
उखड़े जो जमे पैर, तो बस जय है बराबर।
'महारानीकी जै' गूँज उठा शोर सरासर॥
रानीने झपट शाही पताका भी छिनाई।
फिरने लगी रण-भूमिमे रानीका दोहाई॥ २३॥

यों वीर यवन-सेन सभी मार भगाई।
उठवाके करणसिंहको निज धाममे लाई॥
वैदोंको बुला घावोंकी जब जाँच कराई।
बैदोंने लखे घाव तो यह बात सुनाई॥
"ज़हरीलेही हथियारोंके सब घाव हैं माता!
मा‍र्णान्तिकपे समझ पड़ता है, रूठे हैं विधाता॥ २४॥

इन घावोंके भरनेकी फ़क़त एक दवा है !
कर सकता है वह कौन ? य सन्देह ड़ा है ॥
उस युक्तिके करनेमें करैयाकी क़ज़ा है ।
है कौन जा निज प्राणकी रक्षाको न चाहे ?
इस घावोंको चूसै काई निज प्राण गंवावं ।
सो राजाको यमराजके फन्देसे छुड़ावे" ॥ २५ ॥

"पति-क्षेमके हित नारि जो निज प्राण चढ़ावै ।
ससारमें निज वंशकी मर्याद बढ़ावै ॥
आनन्दसे वैकुण्ठमें सुख-चैन उड़ावै ।
सम्मान-सहित अन्तमें निज स्वामीको पावै ॥
है बात ये सब कहने धरम-शास्त्र हमारे ।
इक रोज़ तो मरनाही है, टरता नहीं टारे ॥ २६ ॥

मर जायेंगे राजा तो मैंही रॉड़ रहूँगी !
इन प्राण-पियारेका विरह कैसे सहूँगी ?
मैं प्रेमसे 'प्राणेश' भला किसको कहूँगी ?
वैधव्यमें संसारका सुख कौन लहूँगी ?
मरनेसे मेरे हानि न कुछ राज्यकी होगी ।
पति मेरे तो हो जायँगे आनन्दके भोगी" ॥ २७ ॥

यों सोच, लिये चूस सभी घाव करणके !
उद्योग किये सौंचेसे, पति-कष्ट-हरणके ।
खुद ठान लिये ठाट सभी अपने मरणके ।
सिदके किये निज प्राण भी निज नाथ-चरणके ॥

हे नारि पति-प्राणा ! तुझे धन्य सहस बार।
इस 'दीन'के स्वीकार करो कोटि नमस्कार ॥ २८ ॥

"मेरे लिये रण करके बली शत्रु भगाये।
विष चूसके प्यारीने मेरे प्राण बचाये॥
मेरेही लिये प्यारीने निज प्राण गँवाये"।
इक दाससे राजाने समाचार य पाये॥

"हा प्यारी !" य कह पेटमें ली हूल कटारी !
हे प्रेम ! है महिमा तेरी संसारमें भारी ॥ २९ ॥

यों प्रेम परस्परका जो हर दिलमें समावै।
सुर-लोकका आनन्द इसी लोकमें आवै॥
हरएक भवन इन्द्रके वैभवको लजावै।
इक झोपड़ो नन्दनका (१) सदा दृश्य दिखावै॥

दम्पतिहीके शुभ प्रेमसे संसारका सुख है।
बिन प्रेमके सम्पत्ति-विभव दुःख-ही-दुख है॥ ३० ॥

जिस हिन्दमें हो गुज़री हैं इस भाँतिकी नारी।
दुश्मनसे करैं युद्ध, दिली प्रेम हो भारी॥
उस हिन्दके पुरुषोंकी है किस हेतु य ख्वारी (२) ?
दुश्मनके खखारेसे डरैं, फूटसे यारी !

इन बातोंको दिल देके ज़रा सोचो-विचारो।
तब देश-उधारक बनो ऐ हिन्दके प्यारो ! ॥ ३१ ॥

---

(१) नन्दन—इन्द्रका बाग़।
(२) ख्वारी—हीनता।

वीराबाई

राना थे उदयसिंह जो चित्तौरके नामी ।
जब ईश-कृपासे हुए सब राज्यके स्वामी ॥
तब वंशके गौरवको भुला बन गये कामी ।
राजत्वको तज करने लगे काम-गुलामी ॥
साँगाके विमल वंशमें यह दाग़ लगाया ।
चित्तौरका सम्मान भी सब धोके बहाया ॥ १ ॥

रजपूत हो जो कोई बनै कामका चेरा ।
तज वंशकी मर्याद करै काम अनेरा ॥
रहता नहीं उस देहमें वीरत्वका डेरा ।
साहसका भी होता नहीं उस चित्तमें फेरा ॥
मन-सिन्धुमें उठती हैं सदा काम तरंगें ।
उठ सकती हैं कैसे भला रण-रङ्ग उमंगें ? ॥ २ ॥

इक नारि नवेलीने, जिसे कहते थे 'वीरा' ।
था छीन लिया रानाकी मन-बुद्धिका हीरा ॥
वीरत्वके बिरवाके लिये बन गई कीरा ।
कर डाला उदयसिंहको ज्यों होता है खीरा ॥
फ़रमाती जो कुछ, करते उदयसिंह वही काम ।
कुछ ध्यान न था, डूबे चहै वंश हो बदनाम ॥ ३ ॥

इस बातसे सब राज्यके सामन्त विमन थे।
मन्त्री भी दुखी, सैन शिथिल, सुस्त सुजन थे॥
परिवार सकल और प्रजा-गण न मगन थे।
बस, राज्यके हित चिह्न ये असमयके सुमन थे।
घनघोर विपति आनेके सब ओर थे लच्छन।
बस, आही पड़ा कष्ट महा घोर भी तत्छन॥ ४॥

अकबरने जो चित्तौरका सब हाल य जाना।
चित्तौरके लेनेपै हुआ दिलसे दिवाना॥
'निज करसे करूँ क़ैद मैं चित्तौरका राना'।
सँग सैनके ठहराया स्वयं अपना ही जाना॥
मुग़लोंकी विकट फ़ौजने चित्तौरको घेरा।
अकबरने भी जा डाला समर-भूमिमें डेरा॥ ५॥

अकबरने यह सोचा था, कि रानाको हराऊँ।
'बीरा' को पकड़ प्रेमसे निज कण्ठ लगाऊँ॥
चित्तौरको निज राज्यका इक प्रान्त बनाऊँ।
इस भाँति सकल हिन्दमें निज हाँक जमाऊँ॥
बस, फिर तो सभी राजा मेरे पैर पड़ेंगे।
चित्तौर-विजेतासे भला कैसे लड़ेंगे?"॥ ६॥

चित्तौरमें मुग़लोंने दिया युद्धका डङ्का।
कायर थे उदयसिंह, बढ़ी चित्तमे शङ्का॥
कामी भी कहीं सकते हैं सह वीरोंके हङ्का?
शृङ्गार सदा मानता है वीर-अतङ्का॥

राणा उदयसिंहने गढ़ छोड़के भगना।
निज वंशकी मर्यादको मुँह मोड़के ठगना॥ ७॥

पर, राज्यके कुछ ऐसे नमकख्वार थे प्राचीन।
चित्तौरको ज. देख न सकते थे पराधीन॥
समझाया उदयसिंहको हो-होके बहुत दीन।
"घबराइये मत, हूजिये मत चित्तसे यों खीन॥

सरदार बनो, साथ चलो, युद्ध करेंगे।
दम रहते न हम आपकी रक्षासे टरेंगे॥ ८॥

साँगाके विमल वंशका यों नाम धराना।
इकलिङ्गजी भगवान्का परिहास कराना॥
चित्तौरसे शुचि-दुर्गपै यवनोको फिराना।
सतियोंके निवासोंको कसबियोंसे भराना॥

क्षत्रित्वको है मानों महा नीच बनाना।
रघुवंशके वीरत्वको चुल्लूमें डुबाना"॥ ९॥

यों सुनके उदयसिंहको कुछ जोश-सा आया।
अकबरसे उमग भिड़नेका सामान सजाया॥
कुछ सोच-समझ युद्धमें कुछ बल भी दिखाया।
पर अन्तमें दिल तोड़के निज कुलको लजाया॥

अकबरसे चतुर वीरके बन्दी हुए राना।
लज्जित हुआ साँगासे विकट वीरका बाना॥ १०॥

पर अन्य सुवीरोंने विकट मार मचाई।
मुग़लोंकी अनी कोटपै चढ़ने नहीं पाई॥

सन्ध्या हुई, फिरने लगी रजनीकी दोहाई।
चित्तौरके महलोंमें घटा शोककी छाई॥
अब कैसे करें, जायं कहाँ, कौन बचावे?
रानाको मुगल-क़ैदसे जा कौन छुड़ावे?॥ ११॥

चित्तौरमें वीरोंकी कमी? ऐसी न थी बात।
रजपूत करें युद्धसे भय? ऐसी न थी बात॥
क्या मौतसे डरते थे? नहीं, यह भी न थी बात।
क्या युद्धकी सामग्री न थी? य भी न थी बात॥
इस क्रूर उदयसिंहके हित प्राण गँवाना।
सब क्षत्री समझते थे र य भाड़में जाना॥ १२॥

राना ही निरुत्साह थे, तब वीर करैं क्या?
राना ही नहीं लड़ते, तो सरदार लरैं क्या?
कायर हो जो मालिक, तो भला दास मरैं क्या?
रण-अग्निसे सरदार डरै, दास जरैं क्या?
रानाको निरुत्साह समझ वीर थे ख़ामोश।
यह हाल निरख 'बीरा'का बस उड़ गया सब होश॥ १३॥

अकबरकी कुटिल नीतिसे भययुत हुई बीरा।
रानाके अचल प्रेमसे फिर बन गई धीरा॥
सुकुमार कलेजेको किया कूटके हीरा।
रानाके छुड़ानेका उठाया वहीं बीरा॥
"निज प्रेमके आधारको बन्धनसे छोड़ाऊँ।
या उनके लिये प्राणका बलिदान चढ़ाऊँ॥ १४॥

जिन हाथोंसे रानाने मुझे पान दिये हैं।
पहनाये हैं भूषण, मेरे सिंगार किये हैं॥
बहु बार कुसुम्भेके पियाले भी पिये हैं।
गलहार हुए, प्रेमके रस-चीर सिये हैं॥
उन हाथोंको बन्धनसे छुटा हार बनाऊं।
या उनके लिये प्राणका बलिदान चढ़ाऊँ॥ १५॥

जिस छातीसे मुझको है सहित प्रेम लगाया।
जिस दिलमें है रानाने मेरा नेह भराया॥
जिस मनमें है रानाने मेरा वास बनाया।
जिस चित्तमें हरदम है मेरा ध्यान समाया॥
उन सबके लिये मैं भी तो कुछ करके दिखाऊं!
या उनके लिये प्राणका बलिदान चढ़ाऊँ॥ १६॥

जिस प्रेमसे मेरे लिये बदनामी उठाई।
जिस नेहसे जगमें मेरी मर्याद बढ़ाई॥
जिस प्रीतिसे निज वंशकी की लोक-हँसाई।
जिस छोहसे मेरे लिये सब लाज गँवाई॥
उस प्यारका बदला तो सकल जगको दिखा दूँ।
या उसके लिये प्राणका बलिदान चढ़ा दूँ॥ १७॥

जिस शाहने प्यारेको मेरे क़ैद कराया।
और चाहता है मुझको भी निज नारि बनाया॥
आया है उमड़ सैन सहित, देश दबाया।
मेवाड़को है चाहता अधिकारमें लाया॥

उस वीर यवन-जाततको कुछ स्वाद चखा दूँ ।
कैसी हू मैं 'वीरा' उसे कुछ भी तो बता दूँ ॥ १८ ॥

कैसो है य मेवाड़-धरा जगको दिखा दूँ ।
वीरत्वके इतिहासमें निज नाम लिखा दूँ ॥
नारीके विकट क्रोधका परसाद चिखा दूँ ।
इस दुष्ट मुग़लज़ादेको कुछ सीख सिखा दूँ ॥

चित्तौरमें अब भी है कोई नारि छबीरा ।
जो प्रेममें है फूल, तो वीरत्वमें हीरा" ॥ १९ ॥

निज प्रेमके आवेशसे दिल उसका भर आया ।
वीरत्व भी निज देशका रग-रगमें समाया ॥
सुकुमारपना, भीरुपना धोय बहाया ।
रण-साजसे निज अङ्गको फौरनही सजाया ॥

विकट भेष है, हिम्मतको पकड़ लो ।
यह चित्र है उसका, इसे फिर धीरसे पढ़ लो ॥ २० ॥

कौशेय वसन, स्वर्णके नग दूर बहाये ।
लोहेके कवच-कूँड़से निज अङ्ग सजाये ॥
जूड़ेको छोड़ ऐसी तरह बाल बँधाये ।
बिछुवा कसा, दो छोटेसे खञ्जर भी खोंसाये ॥

अङ्गार हुई आँखें, तो तमतमसे हुए गाल ।
बिजलीसे दसन, भौंह कुटिल, लालसा है भाल ॥ २१ ॥

फरकते अधर दोनों हैं भुजदण्ड फड़कते ।
उत्साहसे छातीके केवाड़े हैं धड़कते ॥

नथने हैं बने धौंकनी, है दांत कड़कते।
पहनी हुई चोलीके हैं सब बन्द तड़कते।
उत्साहसे फूली न समाती है बदनमें।
करकीं सभी चूड़ी, तो कवच तङ्ग है तनमें॥ २२॥

काँधेपै पड़ी ढाल इधर, चाप उधर है।
माथा व सिरोहीसी सजी पतली कमर है॥
ढालीमें कड़ाबीन सहित साँक तबर है।
कत्ती व कटारीका कमरबन्दमें घर है॥
इक हाथमें तेग़ा लिये, इक हाथमें भाला।
दुर्गा सी बनी धामसे बाहर चली बाला॥ २३॥

दुर्गेशके ढिग जाके सकल वीर बुलाये।
जुड़ जानेपै ललकारके यों बैन सुनाये॥
"क्यों वीर-वरो! वीरोंके क्यों कर्म भुलाये?
किस हेतुसे क्षत्रियत्वके सब धर्म बहाये?
मेवाड़के मस्तकपै लगे नीलका टीका।
यह देखके चेहरा न पड़ा आपका फीका?॥ २४॥

मेवाड़से वीरत्वने क्या डेरा उठाया?
क्षत्रित्वका क्या हो गया इस गढ़से सफाया?
चित्तौने क्या आज सकल तेज गँवाया?
रजपूतिनो कोई नहो सुत वीरसा जाया?
क्या वीर-प्रसू भूमि हुई वीर-रहित आज?
क्यों बन्दी हुआ तुर्कका, इस राज्यका सरताज?॥ २५॥

क्या बह गया रघुवंश-रकत नससे तुम्हारे ?
या सूख गया तनमे तुरुक-त्रासके मारे ?
रानाको करा बन्दी, पड़े पाँव पसारे !
बे-फायदा क्षत्रित्वका बाना फिरौ धारे !
जपूतिनी माताओंकी औलाद नहीं तुम ?
क्या करते हो, क्यों हो गई है बुद्धि सकल गुम ? ॥२६॥

निश्चय है य संसारमें इक रोज़ है मरना।
है मूढ़पना लोकमें निज नाम न करना॥
रजपूत हो वाजिब नहीं वैरीसे पछरना।
सर राखके, सरदारको यों क़ैदमें मरना॥
है किसने पढ़ाया तुम्हें यह पाठ अधूरा ?
क्या जानते हो इससे पड़ेगा कभी पूरा ? ॥२७॥

निज दासियाँ लै जाती हूँ रानाको छोड़ाने।
आई हूँ तुम्हें लाभकी एक बात बताने॥
तलवारको रख, वस्त्र जो सब धार ज़नाने।
मुँह ढाँपके जा बैठ रहो मेरे ठिकाने॥
यों क़ैदसे बच जाओगे पाओगे बड़ा नाम।
कर जाओगे, संसारमें अख्लासे बड़ा काम॥२८॥

मरदाना कठिन कामसे श्रम हो गया भारी।
कुछ दिनके लिये शौक़से बन जाइये नारी॥
हम काम तुम्हारा करैं तुम रीत हमारी।
प्यारेका तजौ नाम बनो प्राण-पियारी॥

घर देखना जनता न कभी अपनी सी सन्तान।
खो जायेगा संसारसे मेवाड़का सन्मान" ॥ २९ ॥

वीराने जो यह व्यङ्ग-वचन-धार बहाई।
मेवाड़के वीरत्वमें फिर जान-सी आई॥
बाँछे हुए वीरोंकी नई सैन सजाई।
और रातहीको चढ़के मुग़ल-सैनपै धाई॥

वीरा भी चढ़ी घोड़े पै सब शस्त्र सँभारे।
आगेही दिखा पड़ती थी उत्साहके मारे॥ ३०

उस ओर मुग़ल-सैन थी जय-रात मनाये।
कुछ सोये थे, कुछ मस्त थे जय-भङ्ग उड़ाये॥
अकबर था उदयसिंहको निज पास रखाये।
पहरा था विकट वीरोंका सब ओर लगाये॥

यह ध्यान था, "है कौन जो रानाको छोड़ावे?
मरनेके लिये बाघकी बलि माँदमें आवे? ॥ ३१ ॥

वीराको भी कल भोरही अब क़ैद कराऊँ।
चित्तौरमे मज़बूतसा थाना भी बिठाऊँ॥
रानाको लिये चैनसे निज धामको जाऊँ।
क्षत्रानीके सङ्ग शौक़से रस-केलि मचाऊँ॥

फिर कौन है जग्ग जो करे सामना मेरा?
हुङ्कारसे हो जायँगे सब तीनके तेरा" ॥ ३२ ॥

इस मानसी मोदकका मज़ा लेता था अकबर।
इतनेमें सुनी दूरसे कुछ युद्धकी खर-भर॥

भालोंकी चमक देखी, सुनी तीरोंकी सर-सर !
कर ग़ौर जो देखा तो लखी फ़ौजकी भगदर ॥
तेग़ोंकी खचाखच, सिरोहीकी खपाखप ।
ठाँ-ठाँय कराबीनकी, कत्तीकी गपागप ॥ ३३ ॥

बीरोंको कतर बीराने रानाको छोड़ाया ।
अच्छेसे चपल घोड़ेपै असवार कराया ॥
दो ज्वान किये सङ्ग, उन्हें घरको भगाया ।
तब शाहके डेरोंकी तरफ़ पैर बढ़ाया ॥
डेरोंके निकट युद्ध हुआ घोर घमासान ।
मुगलोंने भी मालिकके लिये वार दिये प्रान ॥ ३४ ॥

चित्तौरके वीरोंने ग़ज़ब मार मचाई ।
बीराने भी हिम्मतसे करामात दिखाई ॥
जिस तुर्कपै सर सूँतके तलवार चलाई ।
कन्धेसे गिरा शीश, वहीं भूमि चुमाई ॥
भाड़ी-सी बनी, मुण्ड थी मुग़लोंके कतरती ।
जो सामने आता, उसे दिखलाती थी धरती ॥ ३५ ॥

तम्बूके निकट जाके कहा ज़ोरसे ललकार ।
"लो शाहजी ! 'बीरा'का करो प्रेमसे सत्कार ॥
मैं आई हूँ लो, पहले मेरी चूम लो तलवार ।
फिर शौकसे पर्यङ्कपै तुम करना मुझे प्यार ॥
बीराके अचल प्रेमके कुछ फूल तो सहलो ।
हो वीर पुरुष, बीराके हंकासे न दहलो ॥ ३६ ॥

जिस नारिसे रण-रङ्गमें लड़नेसे डरोगे।
उस नारिसे कैसे भला रति-रङ्ग करोगे ?
किस तेजसे फिर सेजपै निज पाँव धरोगे ?
बीराका अचल प्रेमसे मन कैसे हरोगे ?
मैं आई हूँ दिल्लीशपै निज रोश चढ़ाने।
या मारके दिल्लीशको, प्राणेश छोड़ाने" ॥ २७ ॥

यों कहके कड़ी हाँकसे वीरोंको पुकारा।
"छत्रानियोंकी पी हो जो कुछ दूधकी धारा ॥
रजपूतोंके हो पूत, हो चित्तौर तुम्हारा।
बस, जान लो इस वक्त है क्या काम हमारा ॥
बस, इससे अधिक और मैं क्या तुमको सुनाऊं ?
मैं नारि हूँ, तुम वीर हो, क्या तुमको सिखाऊं ?" ॥ २८ ॥

'मैं नारि हूँ, तुम वीर हो' इस बातको सुनकर।
वीरत्वकी मर्यादको निज ध्यानमें गुनकर ॥
आवेशमें आ, वीर-उचित क्रोधसे भुनकर।
मुग़लोंके विकट वीरोंको बस धर दिया धुनकर ॥
फिर आगे बढ़े ऐसे, कि अकबरको पकड़ ले।
चित्तौरके वीरत्वसे दुश्मनको जकड़ ले ॥ २९ ॥

अकबर भी निकल डेरोसे झट सामने आया।
निज वीरोंको ललकारके यों बोल सुनाया ॥
"क्यों भागते हो युद्धसे, पा मर्दकी काया ?
हिम्मत करो, बढ़ शत्रुका कर डालो सफाया ॥

संसार कहेगा, कि भगे नारिसे डरकर ।

इससे तो भला है, कि गिरें युद्धमें मरकर" ॥ ४० ॥

ललकार सुने, वीर मुग़ल लौटे सँभलकर ।
लड़ने लगे, हिम्मतसे, महा क्रोधसे जलकर ॥
गिरने लगे वीरोंके वहीं मुण्ड मचलकर ।
नद्दी बही इक लालसी रण-थलसे निकलकर ॥

हर ओर पड़ा शोर, कि "मारो, धरो, धावो ।

बैकुण्ठ खुला है न तनक देर लगावो" ॥ ४१ ॥

अकबरके स्वयं लड़नेसे रजपूत सहमकर ।
कुछ पीछे हटे जाते थे, लड़ते न थे थमकर ॥
'वीरा'ने विनय की कि "हरी ! युद्ध सुगम कर" ।
और आगे बढ़ी जोशसे निज घोड़ेपै जमकर ॥

करने लगी तलवारसे मुग़लोंका सफ़ाया ।

वीरत्वसे निज नामको कर सत्य दिखाया ॥ ४२ ॥

चित्तौरके वीरोंने भी वीराकी निरख दूम ।
रण-खेतमें बढ़-बढ़के मचाने लगे सब धूम ॥
वीराकी थी तलवार, कि हनुमानकी थी लूम ।
जिस ओरको फिर जाती, मचाती थी वहीं घूम ॥

वीराके विकट क्रोधकी ज्वालासे डराकर ।

अकबरकी भगी फ़ौज, मचा शोर सरासर ॥ ४३ ॥

अकबरको भी निज जान बचानेकी पड़ी सिर ।
रण-खेतमें इक तुकका बचा न रहा थिर ॥

भगते भी चले जाते थे, लखते भी थे फिर-फिर ।
मीराके विकट खौफ़से कितने हीं पड़े गिर ॥
यों भागके दिल्लीशने निज जान बचाई ।
चित्तौरपै मुग़लोंको थी यह पहली चढ़ाई ॥ ४४ ॥

इक नारिसे यों हारके दिल्लीश भगा घर ।
माशूक़को पाया नहीं, नानीसी गई मर ॥
बदनाम मुग़ल-सैन हुई पीठ दिखाकर ।
चित्तौरके वीरोंका कलेजेमें धँसा डर ॥
लेखक जो मुसलमान थे, ऐसाही समझ कर ।
इस युद्धकी चरचा नहीं लिक्खी है कहींपर ॥ ४५ ॥

क्षत्रानी थी या और किसी वंशकी जाई ?
यह बात किसी लेखमें लिक्खी नहीं पाई ॥
चित्तौरकी रानाकी थी घर-डाली लुगाई ।
रण-भूमिमें अकबरसे लड़ी कीर्त्ति कमाई ॥
इस हेतुसे हम इसको हैं क्षत्रानी ही कहते ।
वीरत्व इन्हें इसका हैं कुछ मोदसा लहते ॥ ४६ ॥

'है प्रेम अजय तत्व' य दुनियाको दिखाया ।
'निज धर्मसे जय होती है', प्रत्यक्ष लखाया ॥
मेवाड़के रजपूतोंका सम्मान रखाया ।
इस रक्खी हुई नारिने क्या-क्या न सिखाया ?
गुण-ग्राम ग्रहण कीजिये गम्भीरसे होकर ।
मीराका बड़ा दोष बहा दीजिये धोकर ॥ ४७ ॥

कर्मा देवी

पाठकजी ! सँभल बैठिये निज होशमें आकर ।
श्रोता भी सजग होके सुनें कान लगाकर ॥
किस भाँति यवन-वीरको कर्माने भगाकर ।
रक्खा है सुयश हिन्दका निज तेज दिखाकर ॥
पति-हीन, निबल बेवाने क्या काम किया है ।
इस हिन्दके वीरत्वको क्या मान दिया है ॥ १ ॥

रावल था समरसिंह जो मेवाड़का स्वामी ।
सामन्त पिथौराका, बड़ा युद्धमें नामी ॥
वीरत्वमें जिसके न थी रत्तीकी भी खामी ।
कायरको सदा क्रोधसे कहता था 'हरामी' ॥
'कर्मा'* थी इसी वीर समरसिंहको रानी ।
रहती थी जनम-भूमिपै निज दिलसे दिवानी ॥ २ ॥

'केगर'के महायुद्धमें दिल्लीश पिथौरा ।
क़ैदी बना गोरीका, मचा हिन्दमें हौरा ॥
सामन्त समरसिंह भी हो क्रोधसे बौरा ।
रण-भूमिसे मालिकके लिये स्वर्गको दौरा ॥

---

* इस वीर क्षत्राणीका नाम किसीने 'कर्म-देवी' किसीने 'कूर्म-देवी' और किसीने 'कर्मा-देवी' लिखा है; पर हमें इस 'भीम-कर्मा' क्षत्राणीका नाम 'कर्मा-देवी' ही अधिक अच्छा और प्रामाणिक जँचा है।

फहराने लगी हिन्दमें यवनोंकी पताका।
वीरत्वने भारतसे लिया साथ सभाका ॥ ३ ॥

मरनेपै समरसिंहके कर्मा हुई बेवा।
पर दिलमें समाई थी जनम-भूमिकी सेवा ॥
निज पुत्र करनसीको (१) बना देशका राजा।
निज हाथसे करने लगी सब देशको रक्षा ॥
सेनाको दिया धीर, उधर कोष सँभाला।
रैयतको अभय करके बड़ा काम निकाला ॥ ४ ॥

जिस राज्यमें रैयतका सदा होता है सम्मान।
आनन्द-सहित राजा भी हो जाता है बलवान ॥
सेनामें भी आ जाती है वीरत्वकी इक शान।
भर जाता है धन कोषमें, घर-घरमें सुधन-धान ॥
रहता है सदा देशमें सुख-शान्तिका डेरा।
खाता है वही मुँहकी तनक टेढ़ा जो हेरा ॥ ५ ॥

जय पाके शहाबू (२) तो तुरत ग़ोर सिधाया।
दिल्लीमें कुतुबदीनने (३) निज राज्य जमाया।
उस वक़्त जो यवनोंने था उत्पात मचाया।
लिखनेमें निबल लेखनीने शीश नवाया ॥

(१) 'करणसिंह' को राजपूतानेमें 'करनसी' कहकर पुकारते हैं।

(२) शहाबू—शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी।

(३) कुतुबुद्दीन ऐबक—शहाबुद्दीन ग़ोरीका गुलाम तथा एक भागका सेनापति भी था। गुलाम-वंशका प्रथम बादशाह यही हुआ है।

इतनेसे समझ लीजिये, बस लाखों धुरन्धर।
डर-डरके मुसलमान हुए, या गये यम-घर ॥ ६ ॥

नित शाम-सुबह हिन्दुओंके शीश चढ़ाना।
सुर-धाम मिला धूलमें, मूरत भी तोड़ाना ॥
कन्याएँ छिना, दासी बना, धाम मराना।
क्षत्रानियोंसे नीच टहल घरकी कराना ॥
बस, ऐसीही बातोंको समझता था यवन-धर्म।
हिन्दूसे यवन करनेको माने था महा कर्म ॥ ७ ॥

यों लूटता सब देशको और ग्राम जलाता।
हिन्दुत्वको हठ धर्मसे मिट्टीमें मिलाता ॥
दिल्लीश कुतुबदीन महाक्रोध दिखाता।
सेवकसे हुआ शाह अहंकारमें माता ॥
सेना लिये चित्तौरको आ घेरा उमड़ कर।
ज्यों इन्द्रने ब्रजधामको घेरा था घुमड़कर ॥ ८ ॥

कर्माने कहा,—"शाहजी कुछ धर्म विचारो।
दिल्लीश हो, अब आप तो मरतेको न मारो ॥
बालकसे व बेवासे न तक़रार उभारो।
वीरोंका है यह धर्म, इसे ध्यानमें धारो ॥
अबलासे लड़े वीर कभी यश नहीं पाते।
इस हेतुसे नारीको नहीं वीर सताते" ॥ ९ ॥

कर्माके संदेसेपै न ऐबकने दिया ध्यान।
कहलाया, कि "इस बातसे घटती है मेरी शान ॥

या युद्ध करो या तो बनो आज मुसलमान ।
महलोंमें मेरे चलके रहो बनके मेरी जान ॥
बेटा मेरा बनकर बनै नव्वाब करनसीं ।
तब नाम मेरा सत्य हो दिल्लीश कुतुबदीं" ॥ १० ॥

इस बातको सुन क्रोध न कर्माका समाया ।
आरक्त हुए नेत्रके मिस शीशपै आया ॥
फर्राये अधर, कोपसे चेहरा दमक आया ।
भौहैं तनीं, ज्यों कालने कोदण्ड चढ़ाया ॥
बुलवाके गढ़ाधीशको सब हाल सुनाया ।
'फौरनही सजे सैन' यही हुकम लगाया ॥ ११ ॥

मर्दाना किया भेस, सजे युद्धके बाने ।
बुलवा लिये चित्तौरके सब वीर पुराने ॥
निज पुत्र करणसिंहको रख ठीक-ठिकाने ।
फाटकसे कढ़ी सैन लिये होत मियाने ॥
घोड़ेपै चढ़ी, आगे बढ़ी भाला उठाये ।
रण-थलमें पहुँच तुर्कोंसे ये बैन सुनाये ॥ १२ ॥

"ऐबकसे कहो, आई हूँ मैं गढ़से निकलकर ।
और आप भी आये हैं बड़ी दूरसे चलकर ॥
हटनेका नहीं काम है शस्त्रोंसे दहलकर ।
मैदानमें रण-रङ्ग मचै खूब सँभलकर ॥
या मुझको पकड़ रङ्ग-महल अपना बसाओ ।
या आप मेरे हाथसे यमधामको जाओ ॥ १३ ॥

विधवाको सतानेसे अगर तुम नहीं डरते।
कन्याओंके संग करते हो सब कर्म अकरते॥
तुर्कानियोंके प्रेमसे मन-चित नहीं भरते।
छत्रानियोंसे प्रेमकी अभिलाष हो करते॥
तो आओ निकल, युद्धमें कुछ ज़ोर दिखाओ।
निज हाथसे लो मुझको पकड़, कण्ठ लगाओ॥ १४॥

चित्तौरकी रानीसे हो जो रङ्ग मचाना।
चित्तौरके रावलको हो जो पुत्र बनाना॥
रजथानमें करना हो जो निज ठीक ठिकाना।
आ लीजै पकड़ हाथ मेरा, छोड़ बहाना॥
अब, मैं भी खुशीसे बनूँ दिल्लीशकी बेगम।
हो जाय तुरुक-वंशका रघुवंशका सङ्गम"॥ १५॥

सुन बात य ऐबक भी ग़ज़ब जोशमें आया।
'रानीको पकड़ लूँ' यही बस दिलमें समाया॥
कुछ सैन लिये रानीकी दिशि ज़ोरसे धाया।
ज्यों चन्द्र लखे सिन्धुने निज ज्वार बढ़ाया॥
यह देखके कर्मानें दी निज वीरोंको ललकार।
आगे बढ़ी, घोड़ेपै चढ़ी, करने लगी मार॥ १६॥

बन्दूककी बौछारसे चित्तौरके वर-वीर।
गिरने लगे रण-भूमिमें, भगने लगा सब धीर॥
इस ओरसे सब वीर चलाते थे विकट तीर।
यवनोंके बदन छेदके देते थे महा पीर॥

पर, तुर्क थे ज्यादा व इधर अल्प थे रजपूत।

और दूरसे लड़नेसे लगी थी मनो कुछ छूत॥ १७॥

निज वीरोंसे रानीने कहा ज़ोरसे ललकार।
"हे वीर-वरो! पिलके सिरोहीकी करौ मार"॥
यों कहके बढ़ी आगे, लिये हाथमें तलवार।
बस, गूँज उठी दममें वहाँ, खाँड़ेकी झनकार॥

इस ओर हुआ टप, तो उधर टपसे गिरा सिर।

कट हाथ गया इसका, तो उसका गया दिल चिर॥१८॥

इस भाँतिसे रजपूतोंने तलवार चलाई।
कर डाली घड़ी दोकमें यवनोंकी सफाई॥
जिस ओर बढ़े बोलके रानीकी दुहाई।
उस ओर फटीं तुर्क-सफै, ज्यों फटै काई॥

तलवारसे लड़नेमें चतुर हिन्दके रजपूत।

बढ़ बढ़के दिखाने लगे रण-भूमिमें करतूत॥ १९॥

इस मारसे घबराके कुतुबदीन भी हटकर।
गोली लगा बरसाने ज़रा दूरपै डटकर॥
इस ओरसे तब तीर चले घातमें सटकर।
गिरने लगे यवनेशके योधा वहीं कटकर॥

बन्दूककी गाली थीं, कि थीं स्वर्गकी नारी।

सीनेसे लगीं, प्राण-सहित स्वर्ग सिधारीं॥ २०॥

इस ओरके थे तीर, कि थे सर्पके बच्चे।
छू पाते तनक अङ्ग, तो थे कामके सच्चे॥

यवनोंके विकट वीरोंको देकर महा दखे ।
विष-बलसे उन्हें कर दिया यों चित्तके कखे ॥
था एक पियासा, तो उठी एकके ज्वाला ।
इस ओर अँधेरा था, तो उस ओर था काला ॥ २१ ॥

कर्मोंने अजब लक्ष्यसे कुछ तीर चलाये ।
सर्राते हुए शाहके सब तनमें समाये ॥
तब शाह कुतुबदीन बड़े क्रोधमें आये ।
कर सकते थे क्या ? चारों तरफ़ मेघसे छाये !
विष-बलसे कुतुबदीनके नैनोंकी गई जोत ।
क्या सकता है तम-तोममें कर छोटासा खद्योत ? ॥ २२ ॥

हाथी भी कुतुबदीनका तीरोंसे हुआ अन्ध ।
बस, क्रोधमें आ करने लगा दलमें अँधाधुन्ध ॥
यह देखके कर्मोंने किया शीघ्र य परबन्ध ।
निज सेनको वचनोंसे दी उत्साहको शुभ गन्ध ॥
"हाँ, वीर वरो ! युद्धमें अब हाथ दिखाओ ।
यवनेशको रणभूमिमें कुछ सीख सिखाओ" ॥ २३ ॥

उत्साहसे रजपूतोंने फिर सूँत ली तलवार ।
'महारानीकी जय' बोल, लगे करने विकट मार ॥
उस ओर यवन-सेनमें थी प्यासकी हुंकार ।
इस ओरसे कुछ वीरोंने की तीरोंकी बौछार ॥
दिल्लीपको बस पड़ गये यों जानके लाले ।
करते हों मनों चार तरफ़ भाले कसले ॥ २४ ॥

बाणोंके विकट विषसे था आँखोंमें अँधेरा।
और प्याससे बस प्राणोंका था ओठोंपै डेरा॥
इक ओरसे तलवार लिये कर्माने घेरा।
इक ओरसे था भीलोंके तीरोंका दरेरा॥
चित्तौरकी रण-भूमि करबला (१) सी बनी थी।
दिल्लीशके सिर मौत हरइक ओर तनी थी॥ २५॥

दिल्लीशको कर्माने विकट क्रोधसे दाबा।
ज्यों मरते हुए प्राणीको यमदूत-सहाबा (२)॥
बस, भूल गया क़िबला किधर, है कहाँ काबा?
चिल्ला उठा, "बस भागो, यहाँ मौत है बाबा!"
मैदानसे सब वीर यवन डरके भगे यों।
रखनेसे कड़ी धूपमें काफूर उड़े ज्यों॥ २६॥

भगते हुए यवनोंको किया देशसे बाहर।
भुट्टे से पड़े खेतमें दिखलाते यवन-सर॥
मेवाड़की इस नारीने ऐबकको हराकर।
इस हिन्दके वीरत्वका रक्खा बड़ा आदर॥
तब हिन्दकी क्षत्रानियाँ करती थीं विकट काम।
अब हिन्दके क्षत्री भी बने बैठे हैं बेकाम॥ २७॥

खाना व पड़े लोटना और तोंद बढ़ाना।
कुछ नीचसी कुलटाओंके सङ्ग रङ्ग मचाना॥

---

(१) करबला—वह स्थान, जहाँ मुसलमानोंके पैग़म्बर हसन-हुसेनकी मृत्यु हुई थी।

(२) यमदूत-सहाबा—यमके दूतोंका समूह।

विद्वान व बूढ़ोंके कभी पास न जाना ।
आ जायें अकस्मात तो मिलना न मिलाना ॥
दिन-रात विषय-भोगका आनन्द उड़ाना।
अब सभी इसे जानते हैं राज्यका बाना ॥ २८ ॥

जिसने कि विपत-जालमें निज धर्म बचाया।
निज हाथोंसे दो दुष्टोंको यम-धाम भँकाया॥
पतिका न किया मोह, न सुत-नेहकी माया।
निज वंशके गौरवके लिये प्राण गँवाया॥
अज्ञानी कहे चित्तको होता नहीं सन्तोष।
प्रत्यक्ष महादेवी कहूँ, जो न लगै दोष॥ १॥

मशहूर था इस हिन्दमें खिलजीका घराना।
था शाह मुबारकका महा क्रूर ज़माना॥
ऐसेही समयका है मुझे बात सुनाना।
गुजरातके इतिहासमें है इसका ठिकाना॥
इस बातपै, पाठकजी! अगर हो तुम्हे शङ्का।
पाटनकी तवारीखमें लो देख निशंका॥ २॥

कल्याण-कुली खेमसी* रजपूत था बङ्का।
था रानीपुरा ग्रामका नरपाल निशङ्का॥
रैयतमें अचल न्यायका बजवाता था डङ्का।
वीरत्वमें हर ओर पड़ा उसका था हङ्का॥
'सरदार बा' इस वीरकी थी प्यारी कुमारी।
वीरत्वमें नरसिंह थी, रूपमें नारी॥ ३॥

---

*खेमसी—खेमसिंह।

उस वक्तमें पाटनका था नव्वाब युवा सा।
था नाम तो रहमत, मगर था खूनका प्यासा॥
बुलवाके वहीं खेमको और देके दिलासा।
सरदारके सँग ब्याहकी जतलाई निज आसा॥
पर खेमने नव्वाबको यह बात न मानी।
नव्वाबने तब युक्ति सहा भेदकी ठानी॥ ४॥

सरदारके भाईको निकट अपने बुलाया।
सम्मान-सहित उसको सखा अपना बनाया॥
थोड़ेही दिनों बीच उसे ऐसा लुभाया।
'ब्याहूँगा बहिन तुमको' यही बैन हराया॥
बस, देके वचन 'मूलसी' (१) निज धामको आया।
कुछ रोजमें नव्वाबने यह पत्र पठाया॥ ५॥

"यदि मूलसी! तुम वादेको पूरा न करोगे।
यदि खेमसी! आगेहीकी हठ जीमें धरोगे॥
सरदारको सँग मेरे अगर अब न वरोगे(२)।
क्षत्रित्वके आवेशमें आ युद्ध करोगे॥
तो जान लो, दुनियाँमें बड़ा दुःख भरोगे।
पछताओगे और मौत भी कुत्तेकी मरोगे"॥ ६॥

'सरदार'की भावजने सुनी बात य सारी।
निज पतिको वहीं क्रोधसे दी डाँट य भारी॥

---

(१) मूलजी—'मूलसिंह' (सरदारबाका भाई)

(२) वरोगे-ब्याहोगे।

"खाविन्द हो तुम मेरे, मैं हूँ आपकी नारी।
पर, जातिके अभिमानसे कहती हूँ पुकारी॥
धिक्कार तुम्हें! देते हो निज बहिन यवनको।
चुल्लूमें डुबा डालिये इस क्षत्रीके तनको॥ ७॥

मैं अपनी ननद ब्याहमें रहमतको न दूँगी।
चढ़ आनेपै नव्वाबसे मैं युद्ध करूँगी॥
और आजसे अब आपकी शय्या न चढ़ूँगी।
निज मुँहसे कभी आपको निज पी न कहूँगी॥
बस, जानजो कितनी है तुम्हें जातिकी परवाह।
अधिकार तुम्हें कब है, कि भगनीका करो ब्याह?" ॥ ८॥

'रूपा' का कथन 'मूल' ने रहमतको सुनाया।
रहमत भी ग़ज़ब जोशसे दल साजके आया॥
रूपाने भी सब युद्धका सामान सजाया।
नव्वाबसे लड़ युद्धमें वीरत्व दिखाया॥
पर, अन्तमें वीरोंकी तरह स्वर्ग सिधारी।
शत बार नमस्कार तुझे राजकुमारी! ॥ ९॥

भौजाई हों यदि ऐसी तो ननदोंका है सौभाग।
इस दीन-दुखी हिन्दका सौभाग्य उठे जाग॥
पर अब तो ननद-भाभीमें हम देखते हैं लाग।
अनबन न सही, ढूँढ़े नहीं मिलता है अनुराग॥
भाभी व ननद होती हैं अब मूर्त्ति कलहकी।
वह मरती नहीं, इनको न ज्वाला जहां लहकी॥ १०॥

नव्वाबने 'सरदार'को तब क़ैद कराया ।
माँ-बाप थे बूढ़े, उन्हे भी बाँध मँगाया ॥
आनन्द-सहित वीर-यवन धाम सिधाया ।
रख महलोमें 'सरदार'को यों प्रेम जताया ॥
"बन जाओ मेरी जान ! नही जान न जानो ।
माँ-बापको भाभीके निकट सोताही मानो" ॥ ११ ॥

सरदार भी कुछ सोचके बोली, कि "यवन-वीर !
बेगम बनूँगी आपकी, पर कुछ तो धरो धीर ॥
दिन तीन गुज़र जानेपै तुम आना मेरे तीर (१) ।
इस वक्त मैं नापाक हूँ, पहने हूँ मलिन चीर" ॥
ह छलके यवन-वीर न निज तनमें समाया ।
मिलनेके लिये रङ्ग-महल खूब सजाया ॥ १२ ॥

दिन तीन गुज़र जानेपै सरदार बनी यों ।
सिङ्गार किये आई हो सुरपतिकी परी (२) ज्यों ॥
जिस ठाटसे सरदार थी, था रङ्ग-महल त्यों ।
दिलमें जो थी दोनोंके व मैं बात कहूँ क्यों ?
क्षत्रीकी कुमारीसे यवन-बालका सयोग !
निज बुद्धिके अनुसार समझ लेहींगे सब लोग ॥ १३ ॥

रहमतके लिये रात थी वह मोदकी माता ।
'सरदार'के हित मानो रहा रूठ विधाता ॥

---

(१) तीर—निकट, पास ।

(२) परी—अप्सरा ।

पर, ईशका कर्त्तव्य समझमें नहीं आता।
करता है वही, उसको जो है खूबही भाता॥
कितनाही चतुर होवै कोई और बली भी।
मतलबसे अधिक होवै ख़बरदार छली भी॥ १४॥

रहमत गया सरदारसे जब रङ्ग मचाने।
सरदारने आदर किया बैठाके ठिकाने॥
फिर प्रेम जता उसको लगी मदसे छकाने।
मुसकाके नज़ाकतसे किये कोटि बहाने॥
मदिरासे छका उसको तो बेहोश बनाया।
महलोंसे निकल बनकी तरफ़ पैर उठाया॥ १५॥

पाठकजी! ज़रा सोचिये, था खूब अँधेरा।
और आप अकेली थी, विकट वनका दरेरा॥
नारी थी, नवोढ़ा थी, अतुल रूपका डेरा।
थी राजकुमारी, न किया कोसका फेरा॥
पर, धर्म बचानेके लिये शक्ति बढ़ आई।
छः कोस निकल प्रात कुटी साधुकी पाई॥ १६॥

निज धर्मकी रक्षामें लगाता है जो तन-मन।
बन जाता है बस रङ्ग-महल उसको विकट वन॥
रक्षाके लिये देता है जगदीश भी निज गन।
सौ मनका गरू भार भी हो जाता है इक कन॥
कुछ बात असम्भव नहीं रह जाती उसे फिर।
निज धर्म समझ देता है जिस बातमें जो सिर॥ १७॥

उस साधुसे सरदारने सब बात बताई।
उस साधुने 'शाबाश' कहा, शक्ति बढ़ाई॥
"है धन्य तुझे बेटी! है तू वीरकी जाई।
भय छोड़ दे, कल्याण करेगी महामाई॥
यहाँ तुझको यवन-जात कोई पा नहीं सकता।
हिन्दूके सिवा अन्य यहाँ आ नहीं सकता" ॥ १८ ॥

चंदौलीके राजाका कुँवर, रूपका भण्डार।
बैरीके (१) लिये सिंह, बड़ा बातका सरदार॥
आखेटको आ, आया वहीं साधुके दरबार।
सरदारकी सब बातको सुन, होगया ग़मख्वार (२)॥
"इक पाखमें इमदाद करूँगा मैं तुम्हारी।
अम्बाके दिवालेमें (३) मिलूँ सेन सँभारी॥ १९ ॥

दो, चार छः दिन बाद वही राजकुमारी।
लै साधु-वचन, अम्बाके मन्दिरको सिधारी॥
फिर राहमें सिर आई मुसीबत बड़ी भारी।
नव्वाबके वीरोंकी मिली मगमें सवारी॥
पहचानके सरदारको वीरोंने लिया घर।
पञ्जेमें फँसी तुर्कोंके कुछ सकती न थी कर॥ २० ॥

---

(१) चंदौलीके राजकुमारका नाम 'बैरीसिंह' था। आगे इसका नाम केवल 'बैरी' लिखा गया है।

(२) ग़मख्वार—सहानुभूतिकर्ता।

(३) अम्बा-देवीका आश्रम उस साधुकी कुटीसे दस-बारह कोसकी दूरी-पर एक विकट बनमें था।

सरदारको पानेके लिये सारे यवन जात।
ललचाने लगे और लगे करने बड़ी बात॥
"मै लूँगा, महीं लूँगा" य कह घूसे चले लात।
फिर क्रोधसे करने लगे तलवारके आघात॥
लड़-भिड़के वहीं चारों हुए खूनमें लथपथ।
सरदारने धीरसे लिया अपना नया पथ॥ २१॥
कुछ आगे चली, भील मिले राहमें छः-सात।
सब दौड़े उसे लूटने और करने लगे घात॥
सरदारने तब उनसे कही धीरसे यह बात।
"मारो न मुझे, दूँगी मैं धन तुमको भले भ्रात!
अम्बाके दिवालेके पुजारीके निकट आज।
पहुँचा दो मुझे, तुमको मैं दे डालूँगी यह साज॥ २२॥
भीलोंने कहा, "गहना य सब पहले उतारो।
दो हमको, चलें धाम, इधर तुम भी सिधारो॥
औरत न अगर होतीं, तो बस दिलमें विचारो।
बिन मारे न धन लेते, यह है धर्म हमारो॥
इक साथी हमारा य तेरे साथमें जाकर।
लौटेगा तुझे अम्बाके मन्दिरको दिखाकर"॥ २३॥
गहने दिये सब उनको, लिया साथमें एक भील।
मन्दिरमें पहुँच, पाया पुजारीको महाशील॥
रहने लगी छिपकर वहाँ, कर भेषको तबदील।
वादेकी वफ़ाईमें न की 'बैरी' ने कुछ ढील॥

पन्द्रहवें दिवस सेन लिये आया वहाँपर।
अम्वाक विवाहमें थी सरदार जहाँपर ॥ २४ ॥

सरदारने रण-खेलके हित साज सजाया।
तलवार, तमंचा भी कमर-कसमें लगाया ॥
कन्धेपै पड़ा त्रोण, धनुष हाथमें आया।
इक हाथमें भाला भी लिया विषका बुझाया ॥

कच्छीसे चपल घोड़पै जब रान जमाई।
सब वीरोंने जाना, कि य है कालिका माई ॥ २५ ॥

अपने लिये भौजाईका रण-भूमिमें सोना।
माईका विकट लोभसे निज गर्वको खोना ॥
माँ-बापका रहमतके यहाँ कैदमे होना।
दुर्वाक्य यवन-जातके और प्रेम पिरोना ॥

यादोंने सरदारको यों कोप दिलाया।
भुज-दण्ड फड़कने लगे, चेहरा दमक आया ॥ २६ ॥

बस, बोल 'महामायाकी जय' फौज रेंगाई।
वैरीको लिये, वैरीपै दी बोल चढ़ाई ॥
रहमतने भी सुध पाके सकल सेन सजाई।
मैदानमें आ करने लगा खूब लड़ाई ॥

दिन चार तलक दोनों तरफ वीर कटे खूब।
रहमत भी गया जान, कि मिलता नहीं महबूब ॥ २७ ॥

दिन पाँचवें रहमतने विकट युद्ध मचाया।
वैरीके महावीरोंको यम-धाम पठाया ॥

सब ओरसे सरदारको यों घेरमें लाया।
ज्यों चार-छः कुत्तोंने हो बिल्लीको दबाया॥
उस वक्त विकट क्रोधसे सरदार उठो जल।
बैरी था बहुत दूर, था हर ओर यवन-दल॥ २८॥
प्राणोंको तजा मोह, लिया हाथमें भाला।
घोड़ेको दपट सामने रहमतके उछाला॥
इस ओर झपट एकके मस्तकको उड़ाया।
उस ओर लपक एकको घोड़ेसे गिराया॥
जिस ओरको फिर जाती, वहीं धूम मचाती।
घोड़ेकी चपल चालसे औचटमें (१) न आती॥ २६॥
इस मारसे नव्वाबके भय दिलमें समाया।
पर लाजसे घोड़ेको कुदा सामने आया॥
इस ज़ोरसे सरदारने भालेको चलाया।
लग पाता तो रहमतका वहीं होता सफाया॥
पर घोड़ेके हट जानेसे वह चूक गई वार।
तब क्रोधसे लो सूत वहीं म्यानसे तलवार॥ ३०॥
जय बोल महाकालीकी इस ज़ोरसे घाली।
कन्धे हुए रहमतके वहीं शीशसे खाली॥
फिर क्रोध सहित पेटमें दी भोंक भुजाली (२)।
यह देख, यवन-वीर भगे, सुध न सँभाली॥

---

(१) औचट—प्रहारकी घात।

(२) भुजाली—खुखुड़ी नामका शस्त्र।

'जय कालिका माईकी' हरइक ओर उठा शोर।

सरदारके जय-नादके बाजे बजे घनघोर॥ ३१॥

भालेसे उठा शीशको घोड़ेको कुदाते।
बैरीको लिये साथमें जय-नाद बजाते॥
कुछ और यवन-वीरोंको यम-धाम पठाते।
आनन्द-सहित पहुँची यवन-कोटके हाते॥

पाटनके सिंहासनपै तो वीरोंको बिठाया।

और क़ैदसे माँ-बापको फ़ौरनही छुटाया॥ ३२॥

माँ-बापने सरदारका बैरीसे किया ब्याह।
आनन्द-सहित करने लगे प्रेमका निर्वाह॥
कुछ दिनमें हुआ पुत्र, बढ़ा और भी उत्साह।
दो वर्ष गये, गुजरे हों ज्यों डेढ़ही सप्ताह॥

आनन्दके दिन बीतने लगते नहीं कुछ देर।

दो वर्ष गये भाग्यने फिर खाया उलट-फेर॥ ३३॥

दिल्लीमें खबर पहुँची जो पाटनके पतनकी।
बस, शाह मुबारकने वहीं ऐसी जतन की॥
पैंतीस सहस फौज सजी क्रोध-मगनकी।
आवेशसे थी सुध न जिन्हें अपने बदनकी॥

निज मन्त्री जो खुसरो था उसे मन्त्र बताया।

पाटनके विजय करनेको गुजरात पठाया॥ ३४॥

खुसरोने भी सुन पाई थी सरदारकी शोभा।
निज हाथमें लानेके लिये चित्त था लोभा॥

कुछ कामसे, कुछ क्रोधसे उस ओरको दौरा।
दो भावोंके आवेशसे बस बन गया बौरा॥
दो दिनका सफ़र एक ही दिन करता सिधाया।
अति शीघ्र पहुँच मोरचा पाटनपे जमाया॥ २५॥

बैरीने भी उत्साह सहित सेन सजाई।
दिन सात हुई खेतमें घनघोर लड़ाई॥
पर अन्तमें लेता हुआ बैरीकी बधाई।
रण-खेतसे गिर, करहो दी सुरपुरकी चढ़ाई॥
सरदारने पति-मृत्युको छन धीर न छोड़ा।
निज धर्मसे उस वक्त भी निज मुँहको न मोड़ा॥ २६॥

था आठ महीनेका फ़क़त गोदमें इक पूत।
सौंपा उसे निज सासको और दिल किया मज़बूत॥
निज साथमें ले, शेष बचे कोटके रजपूत।
दुर्गा-सी बनी, घोड़े चढ़ी, खड्ग ली खर सूँत॥
जय बोल महामायाकी रण-भूमिको धाई।
खुसरोने य जाना कि बला शीशपै आई॥ २७॥

जिस ओर लपक जाती थी सरदारकी तलवार।
मुण्डोंके उधर ढेर थे, रुण्डोंके थे अम्बार॥
यवनोंके दहल जाते थे दिल सुनतेही हुंकार।
पर शाहके डर, करते थे रण-थलमें विकट मार॥
इस भाँतिसे हर रोज़ विकट मार मचाती।
सन्ध्याके समय हर्ष-सहित धामको आती॥ २८॥

इक मासतक ऐसीही विकट युद्ध मचाई ।
छः-सात सहस शत्रु-अनी काट गिराई ॥
दो-तीन सहस खेतमें निज सेन गवाँई ।
पर अन्तमें, अफ़सोस ! बनी कुछ न बनाई ॥
घायल हो, गिरी भूमिमें खुसरोने किया क़ैद ।
निज डेरेमें रखवाके लगा करने कुछ उम्मैद ॥ ३९ ॥

निज हाथोंसे खुसरोने कसी घावोंपै पट्टी ।
हर भाँतिसे करने लगा उपकारकी सट्टी ॥
उसको न था मालूम कि यह धर्मकी हट्टी ॥
धन-लोभसे पढ़नेको नहीं प्रेमकी पट्टी ॥
अब्बासको उसको जो तनक होश न आया ।
खुसरोने स्कन्ध साधके निज प्रेम दर्शाया ॥ ४० ॥

"हे प्राण-प्रिये ! देखो इधर दास खड़ा है ।
यह देख दशा दिलमें मेरे शोक बड़ा है ॥
मैं कैसा करूँ प्रेमका यह पन्थ कड़ा है ।
और दिलमें तुम्हारे भी अजब ध्यान अड़ा है ॥
तुम हठ न अगर करतीं, तो यह हाल न होता ।
निज प्यारी बनानेमें मिनट मात्र न खोता ॥ ४१ ॥

पर ख़ैर, अभी कुछ भी नहीं करसे गया है ।
जो बात मेरी मान लो कुछ मुझपे दया है ॥
ऐसाही चला आता है यह फ़न न नया है ।
:होंसे भी सम्बन्धमें कुछ ऐसी हया है ?

हुई एक यवन शाहने छत्रानी विवाही।
राज़ीसे हो या कैसीही फैलाके तबाही ॥ ४२ ॥

तुम जानती हो, शाह मुबारक तो है कमज़ोर।
मैं ही हूँ सकल राज्यमें धनवान व शहज़ोर ॥
दिल्लीमे पहुँच, उसको कतर फेकूँगा इक ओर।
'ख़ुसरो है शहंशाह' पड़ेगा यही बस शोर ॥

अब तुमको भला होनेमें बेगम मेरी प्यारी!
बतलाओ तो कुछ हानि है, कुछ लाज कि ख्वारी?" ॥ ४३ ॥

ख़ुसरोकी य बातें सुनीं सरदारने जिस दम।
आँखें हुईं अङ्गार, हुआ मुँह भी तमातम ॥
घायल थी विकट घावोंसे, बल हो गया था कम।
छः घरटेसे बेहोश थी, पर उठके उसी दम ॥

बस दममेंही ख़ुसरोको पटक चित्त गिराया।
चढ़ छातीपै खञ्ज़रसे किया दममें सफ़ाया ॥ ४४ ॥

"रे दुष्ट! तू छत्रानीको है लोभ दिखाता!
इस हिन्दकी सतियोंको है तू दोष लगाता?
मैं नारि हूँ, पति-हीन हूँ, इक पुत्रकी माता।
पर तेरे लिये अब भी मेरा बल है विधाता ॥

कितनी ही घुने सोंठ, रहै लौंग बराबर।
त्यौंही तुझे मैं अब भी दिखा सकती हूँ यमघर" ॥ ४५ ॥

यों कहके दिया हूल कलेजेमें कटारा।
पल मारते ख़ुसरो वहीं यम-धाम सिधारा ॥

सरदारने फिर एक दफ़ा धीर सँभारा।
डेरेसे निकल, घरको भगी, ज्यों बहै नारा॥
चकराके गिरी भूमिपै, फिर घाव खुले सब।
लोहूके पनाले बहे फिर कौन बचै तब?॥ ४६॥

इस भाँतिसे सरदार विपति-भीर उठाकर।
दो दुष्टोंको निज हाथसे यम-धाम पठाकर॥
क्षत्रित्वका, नारित्वका सत्धर्म दिखाकर।
आनन्दसे बासा किया सुर-धाममें जाकर॥
भारतमें हुआ करती थीं इस भाँतिकी नारी।
पर अब तो बड़े सिंह भी डरपोक हैं भारी॥ ४७॥

किरण देवी

अकबरसे महावीरको धरतीपै गिरावै।
नौरोज़के मेलेको भी मिट्टीमें मिलावै॥
बहुतोंके सती-धर्मको निज बलसे बचावै।
ख़ाविन्दको भी शत्रुके फन्देसे छोड़ावै॥
इस ओजमयी नारीको बोरा न कहोगे।
रस वीरका अन्दाज़ भला कैसे लहोगे?॥ १॥

अकबर जो शहंशाह था इस हिन्दका नामी।
नृप-नीतिका भण्डार था, पर था बड़ा कामी॥
छल-बलसे किया करता था वह काम हरामी।
इस योग्य न था, उसको कहैं हिन्दका स्वामी॥
राजा हो, प्रजा-नारीपै जो मनको चलावै।
उस पापकी मूरतका भला कौन मनावै?॥ २॥

महलोंमें बड़े शानका बाज़ार लगाता।
नौरोज़का मेला उसे मशहूर कराता॥
उमराकी बहिन, बेटियाँ, मेलेमें बुलाता।
धोखेके लिये बेगमें अपनी भी पठाता॥
जहाँको मनाही थी, वहाँ जाने न पावैं।
नारी ही फ़क़त मेलेका सब साज सजावैं॥ ३॥

पर आप सदा अपना पुरुष-भेष छिपाकर ।
नारीसा बना फिरता था नित मेलेमें जाकर ।'
अच्छी सी किसी नारिको फन्देमें फँसाकर ।
ले जाता. विकट भूलभुलैयाँमें भुलाकर ॥
और बातसे उस नारिका सतधर्म नसाता ।
निज नाममें यों पापका इक दाग़ लगाता ॥ ४ ॥

थे राजा बीकानेरके भाई जो पृथीराज ।
निज नारि 'किरणदेवी' सहित करते विकट साज ॥
रहते थे नज़रबन्द वहीं भाईके हित काज ।
अनहित न करैं राजका जिससे कि मुग़ल-राज ॥
पर शाहका यह पाप न दम्पतिको सुहाता ।
'कैसा करैं जो इससे बचे, मनमें न आता ॥ ५ ॥

इक साल किरणदेवीने यह मनमें विचारा ।
"इस बार तो बचनेका नहीं धर्म हमारा ॥
निज धर्म तो मुझको है मगर प्राणसे प्यारा ।
कुछ ऐसा करूँ, जिससे मिटै कष्ट ये सारा ॥
या शाहको वध मेलेका सब स्वाँग मिटा दूँ ।
या प्राणको तज वंशको आफ़तसे छुटा दूँ" ॥ ६ ॥

आ पहुँचा समय मेलेका सब साज सजाया ।
अकबरने किरणदेवीको मेलेमें बुलाया ॥
जाते समय निज पतिको किरणने ये सुनाया ।
"बस, आज मेरा या तो है अकबरका सफाया ॥

तुम मेरे लिये शोक न करना मेरे प्यारे !
            बैर-रक्तसे उज्ज्वल करूँगी यशको तुम्हारे" ॥ ७ ॥

बस, वस्त्र-अलङ्कारोंसे निज अङ्ग सँवारा।
ज़ेड़मे लिया खोंस विकट एक कटारा ॥
अकबरकी कुटिल नीतिने वह क्रोध उभारा।
गुस्सेसे 'किरण' होगई तन-मनसे अंगारा।

अकेली चली संग लिये एकही दासी।
            कुछ भय नहीं यदि नारि हो यों ख़ूनकी प्यासी ॥ ८ ॥

जब वीर-उचित शानसे पहुँची वहाँ जाकर।
अकबरकी चतुर दूतियाँ उससे मिलीं आकर।
धीरेसे मधुर बातोंमें बस उसको भुलाकर।
ग़ायब हुईं सब भूलभुलैयाँसे फँसाकर ॥

फ़ौरन ही किरणदेवीने सब जान लिया हाल।
            इक दममें मिटा चाहता संसारका जंजाल ॥ ९ ॥

इक ओरसे इक नारि नवेली निकट आई।
आदरसे कहा, "आओ सखी ! क्या हो भुलाई ?
मैं तुमको अभी देती हूँ बेगमसे मिलाई।
घबराओ नहीं, बोलो हँसो भयको भगाई ॥

ईश्वरकी कृपा जानके आनन्द मनाओ।
            हँस-खेलके मुझको भी तनक रङ्ग दिखाओ" ॥ १० ॥

'बेगमसे मिला दूँगी' वचन सुनके किरणका।
मर्दाना सी आवाज़से, माथा वहीं ठनका ॥

अवसर न दिया उसको किसी और वचनका।
सब काम बिगड़ जायगा मौक़ा दिये क्षणका॥
यह सोच उसे भूमिपै यों धमसे गिराया।
मौक़ाही सँभलनेका उसे हाथ न आया॥ ११॥

"री दुष्ट मुग़लज़ादी! ये क्या बात सुनाई?
क्षत्रानी कहीं करती है तुर्कोंसे मिताई?
तू जानती है, मैं हूँ सकतसिंहकी जाई।
चित्तौरका राना (१) है मेरे बापका भाई॥
बेगमसे मिलानेका तुझे देती हूँ इनआम।
अब आगेसे करना न पड़ेगा तुझे कुछ काम"॥ १२॥

यों कहके गला उसका तो इक करसे दबाया।
इक हाथसे सीनेपै कटारा भी अड़ाया॥
"ले बोल हरामिन! कि तू है कौनकी जाया?
किसने है तुझे मुझसे ये कहनेको पठाया?
यदि सत्य कहैगी, तो तेरा प्राण बचैगा।
बकनेसे वृथा खूनसे खञ्जर ये रँगेगा"॥ १३॥

संकटमें पड़े प्राण, तो यों बोल सुनाया।
"शाबाश किरण देवी! तू है वीरकी जाया॥
सुनता था सदा जैसा, तुझे वैसाही पाया।
पड़नेकी नहीं तुझपै मेरे (२) छद्मकी छाया॥

---

(१)—राना—महाराणा प्रतापसिंह। इनकी बहुत बड़ी सचित्र जीवनी हमारे यहाँ छपी है। दाम २॥) रुपया है। (२) छद्म—छल।

बस, जान ले अकबर ही तेरे नीचे पड़ा है।

दिल्लीशके सीनेपै कटारा य अड़ा है" ॥ १४ ॥

"रे दुष्ट ! छली ! तेरा तो मुख देखना है पाप।
राजा तो है रैयतके लिये धर्मका इक बाप ॥
लगवाता है क्यों नामपै अपने तू बुरी छाप ?
क्यो करता है यह पाप, ज़रा सोच तो कुछ आप ?

बस, कर लिया सब जो कि तेरे मनमें समाया।

अब आज मेरे हाथसे होता है सफ़ाया ॥ १५ ॥

तुझको किसी वीरासे पड़ा ही नहीं पाला।
करता रहा डरपोकोंसे मुँह अपना तू काला ॥
अब आज तू क्षत्रानीका बल देखले आला।
दे प्राण, कि बन जा मेरे खाविन्दका साला ॥

बस, अब तो तेरा प्राण-पखेरू हूँ उड़ाती।

इक आनमें खञ्जरको हूँ उस पार धँसा।" ॥ १६ ॥

अकबरने विनय की, कि "मुझे मार न माई।
निज दास मुझे जान, तुझे राम-दोहाई ॥
तू आजसे भगिनी है मेरी, मैं तेरा भाई।
जैसा तू कहै, वैसा करूँ चित्त लगाई ॥

पर अब तो मेरे प्राण मुझे दानमें दे दे।

वीरामें क्षमा भी है, कृपया यह भी तो लै ले" ॥ १७ ॥

"कर आज मेरे पतिको नज़र-क़ैदसे आज़ाद।
नौरोज़का मेला भी य कर आजसे बरबाद ॥

रखना सदा हर नारिके सत्धर्मकी मर्य्याद।
अल्लाहको सौगन्द-सहित इसकी रखो याद॥
औ तुझको अभी छोड़ दूँ, कर चैनसे निज राज।
यदि झूठ कहेगा तो मुझे जान ले यमराज" ॥ १८ ॥

अकबरने सभी बातें किरणदेवीकी मानी।
'ऐसा ही करूँगा' ये किया वादा ज़बानी॥
सौगन्दसे निज धर्म-सहित रहनेकी ठानी।
वादे भी किये पूरे, चुकी पापकी घानी॥
इन साहसी ललनाओंका करता हूँ नमस्कार।
हो हिन्दमें ऐसाही छवीराओंकी भरमार ॥ १९ ॥

टोड़ाके महाराज नृपतिसिंहकी बेटी।
थी रूपका भण्डार, तो वीरत्वकी पेटी॥
थी वीरमती नाम, न थी कामकी चेटी।
निज धर्मकी माता थी, बहुत बुद्धि-लपेटी॥
धाराके महाराज उदयभानुका बेटा।
जगदेवने इस रत्नको था भाग्यसे व्याहा॥ १॥

जगदेव प्रमर-वंशका इक रत्न था अनमोल।
सहता था बहुत अपनी विमाताके विकट बोल॥
पर एक दिवस क्रोधसे मन ऐसा हुआ लोल।
अन्तरकी विकट आँचसे ज्यों लाल हो भूगोल॥
निज भाग्य-परीक्षाके लिये देशको छोड़ा।
पाटनको चला वीर, दौड़ाता हुआ घोड़ा॥ २॥

उस वक्त थी यह वीरमती बापके घरमें।
इस हेतु समाया यही जगदेवके सरमें॥
"अब रखतो दिया ही है क़दम आज सफ़रमें।
देखूँगा, कि क्या शक्ति है क्षत्रीके हुनरमें॥
बस, इक मज़र प्यारीको भी देखने जायें।
फिर जाके किसी राजाकी सेवामें टिकायें"॥ ३॥

यों सोचके पहुँचा वहीं ससुरालमें आकर ।
ससुरालको चिन्तित किया सब हाल सुनाकर ॥
दिन तीनमें परदेश चला सबको रुलाकर ।
तब वीरमती बोली य निज मातुसे जाकर ॥
"आज्ञा हो तो प्राणेशके संग मैं भी पधारूँ ।
परदेशमें पति-सेवा करूँ, जन्म सुधारूँ" ॥ ४ ॥

माताने सुनी बात, तो आनन्द मनाया ।
पुत्रीको बड़े प्रेमसे निज धर्म सिखाया ॥
"है नारिका यह धर्म, कि हो जौनकी जाया ।
हर वक्त रहे सङ्गमें, ज्यों देहकी छाया" ॥
यों कहके बिदा हेतु तुरत साज-सजाया ।
जगदेवने इस हठको सुन खेद जताया ॥ ५ ॥

पर, सासके समझानेसे सब सोच बहाकर ।
परदेश चला साथमें निज नारि लिवाकर ॥
सामान जो पाया था, सो दीनोंको लुटाकर ।
घोड़ोंपै चढ़े दोनोंही हथियार लगाकर ॥
जय बोल महामायाको पाटनको सिधारे ।
[illegible]की विकट बातोंको निज ध्यानमें धारे ॥ ६ ॥

हथियार हो कुछ हाथमें, तलवार हो या तीर ।
निज नारि हो निज साथमें, हो चित्त भी गम्भीर ॥
घोड़ा जो सवारीका हो, वह होवै ज़रा धीर ।
शुभ गन्ध हो सोनेमें, जो हों आनन्द रघुबीर ॥

इतनेहीसे सामानसे कुछ करके दिखावे।

क्षत्री है वही साँचा, वही वीर कहावे॥ ७॥

दो रास्ते पाटनको थे, इक फेरसे जाता।
नज़दीकसे था दूसरा, पर शेरका भय था॥
जगदेवने पूछा, कि "चलैं कौनसा रस्ता"?
तब वीरमती बोली कि, "क्या शेर करैगा?

भयभीत अगर आप हैं वन-राजके डरसे।

अच्छा तो य होता, कि कभी कढ़ते न घरसे" ॥ ८॥

यों वीरमती-वाक्यसे जगदेव लजाया।
मुस्काके, ज़रा प्रेमसे लज्जाको छिपाया॥
फिर वीर-उचित शानसे घोड़ेको फिराया।
भययुक्त हो मारगसे वहीं अश्व चलाया॥

जगदेवके सँग वीरमती चलती बराबर।

कुछ प्रेम-सहित वारता करती हुई हँसकर॥ ९॥

चलते हुए वह घोर विपिन-भाग जब आया।
जिस भागमें था शेरने आतङ्क जमाया॥
जगदेवने तब वीरमतीको ये सुनाया।
"हो जाओ सजग, करना है हिंसकका सफ़ाया॥

पीछे मेरे घोड़के चलो, हेरते सब ओर।

बू पातेही ये घोड़े मचावेंगे महा शोर" ॥ १०॥

होती ही थीं ये बातें, कि 'हय' वीरमतीका।
यों हींस उठा, जैसे कि डर भारी हो जीका॥

जगदेवका घोड़ा भी बड़े ज़ोरसे हींसा।
और सामने दिखलाई पड़ा शेर बलीसा॥
जगदेवने तलवारको झट करसे थहाया।
और धीर सहित घोड़ेको आगेको बढ़ाया॥११॥

जगदेव तो इस शेर-तलक जाने न पाया।
वीराने वहीं तान धनुष तीर चढ़ाया॥
इस ज़ोरसे, इस लघसे, वह तीर चलाया।
सर छेदके उस शेरका जा कण्ठ समाया॥
गुर्राया महानादसे और कूद-उछल कर।
यम-धामको जा पहुँचा पवन चाल हो चलकर॥१२॥

जगदेवने निज प्यारीकी करतूत निहारी।
लज्जा भी हुई, साथही आनन्द भी भारी॥
"क्यों प्यारी! अगर ऐसी है करतूत तुम्हारी।
प्यासी ही न रह जायगी तलवार हमारी?
कुछ भाग भला मुझको भी इस काममें देतीं।
वाजिब था तुम्हें, कीर्ति अकेली न य लेतीं"॥१३॥

"प्राणेश! तुम्हारी ही दया मेरा सुबल है।
मैं सत्य ही कहती हूँ तनक इसमें न छल है॥
सब तेज तुम्हारा ही है, जो मुझमें अमल है।
तुम जानते हो, रोनाही अबलाओंका बल है॥
प्राणेशको दूँ कष्ट मैं यों साथमें रहकर।
संसार हँसावेगा भला क्या मुझे कहकर?"॥१४॥

यों प्रेम-भरे नम्र मधुर बैन सुनाकर।
पति-चित्तमें निज प्रेमका धन चार गुना कर॥
फिर शेरके नख-दाँत धरे झोलेमें लाकर।
पाटनको चले दोनों ही निज अश्व बढ़ाकर॥
पाटन पहुंच तालके तट डेरा लगाया।
विश्राम किया, घोड़ेको भी घास खिलाया॥ १५॥
टिकनेके लिये अच्छी जगह खोज निकाले।
तब प्यारीको लै जाके वहाँ सुखसे बिठाले॥
और वीरमती रहके यहाँ श्रमको मिटाले।
आनन्द सहित घोड़ोंको कुछ दाना खिलाले।
यह सोचके जगदेव तो बस्तीको सिधारे।
और वीरमती ठहरी रही ताल-किनारे॥ १६॥
पाटनमें रहा करती थी इक वेश्या धनवान।
छल-छद्ममें वह काटती शैतानके भी कान॥
नाम उसका था जामौती, नगर-भरके नये ज्वान।
फन्देमें पड़े उसके, सभी देते थे धन-प्रान॥
कोतवालका लड़का उसे धन खूब गहाता।
नित एक नई नारिका सत्-धर्म नसाता॥ १७॥
जामौती भी उसके लिये नित एक नवेली।
छल-छद्मसे बहलाके लिवा लाती अकेली॥
और रातको ठहराती उसे अपनी हवेली।
सत्धर्मका उसके था बस अल्लाह ही बेली॥

अब, रातको कुतवाल-छुवन ढालके आता।
जिस तरहसे हो, उसका वहीं धर्म नसाता ॥ १८ ॥

जामौतीकी इक दूती गई ताल-किनारे।
बैठी थी जहाँ वीरमती धीर सँभारे ॥
सब भेद ले जामौतीसे जा बैन उचारे।
"बस, आज तो खुल जायेंगे सौभाग्य हमारे ॥

है तालके तट आई भली नारि अकेली।
पति ग्रामको आया है वह बैठी है, अकेली" ॥ १९ ॥

जामौतीने झट साजके सुखपाल सवारी।
और साथमें निज लेके भली चार-छः नारी ॥
जगदेवकी फूफू बनी, और पास पधारी।
छल-प्रेमसे वीरासे यही बात उचारी ॥

बसे छध पाके तुम्हें लेने हूँ आई।
प्यारी बहू! घर चल करो आनन्द बधाई" ॥ २० ॥

वीरा यही समझी, कि फूफू-सास है मेरी।
पैरों पड़ी और लाजसे मुख-ओर न हेरी ॥
प्रतिपालमें आज्ञाके भी कुछ की नहीं देरी।
उठ साथ चली, जैसे कि चरवाहेकी छेरी ॥

सत्यमें, वीरत्वमें कुछ छल नहीं बसते।
वे अन्यके छल-छद्मकी शंका नहीं करते ॥ २१ ॥

वीरमती वीरा व सत्धर्ममें पूरी।
चित्तमें सन्देह, न शङ्का थी अधूरी ॥

समझी, कि है सम्बन्धिनी स्वामीकी अदूरी।
किस भाँति मिटा डालूँ मैं कुल-कानिकी कूरी ॥
यह सोचके जामौतीके सँग धाम सिधारो।
जामौतीने रहनेको दी इक ऊँची अटारी ॥ २२ ॥

जामौती थी धनवान, विभव उसका अटल था।
घरमें थीं बहुत दासी, भवन राज-महल था ॥
दरवान थे, पहरू थे, बड़ा दासोंका दल था।
इस हेतुसे बस वीराका विश्वास अचल था ॥
सचमुच ही वो समझी, कि य है राज-दुलारी।
सम्बन्धमें फूफू है मेरे पतिकी पियारी ॥ २३ ॥

बस, शाम हुई और हुआ खाना भी तैयार।
जामौतीने वीरासे कहा खानेको दो बार ॥
वीराने कहा, "पतिको जिमा करता हूँ आहार।
बुलवा दो उन्हें, या तो मेरा जान लो इनकार" ॥
जामौतीने सिखलाके नई दासी पठाई!
वीराके निकट जाके उसे बात सुनाई ॥ २४ ॥

"जगदेवजी कहते हैं, कि तुम भोग लगाओ।
मैं फूफाके ढिग बैठा हूँ, मत लाज लजाओ ॥
मैं खा चुका, तुम शौक़से निज भूख बुझाओ।
फूफूजी कहैं सोई करो, हठ न बढ़ाओ ॥
दस-ग्यारह बजे आऊँगा मैं पास तुम्हारे।
बैठे हैं अभी सारे सुजन पास हमारे" ॥ २५ ॥

दस बज गये, जगदेव नहीं आये अभीतक ।
जामौती भी खानेके लिये करती है बक-भक ॥
ग्यारह बजे, बारह बजे, सन्नाई निशा छक ।
जगदेव नहीं आया तो वीराको हुआ शक ॥
बिन खायेही ना एक तरफ़ खाटपै बैठी ।
यों सोच रही थी, मनो थी सोचमें पैठी ॥ २६ ॥

जगदेव भी जब लौटके उस ताल-तट आया ।
और वीरमतीको न किसी ठौरमे पाया ॥
घबराया बहुत शोकसे इस ओरको धाया ।
उस ओर फिरा, पूछा, पता कुछ नहीं पाया ॥
तब हारके उस ताल-किनारेही रहा बैठ ।
पत्नीके विरह मानो रहा शोक-गुफा पैठ ॥ २७ ॥

बजतेही गजर बारहका, कोतवालका बेटा ।
जामौतीसे जा पूछा, "कोई माल है ताज़ा" ?
जामौतीने 'जी हाँ' कहा, कोठेपै पठाया ।
हज़रतने बड़ी शानसे जा कोठेपै देखा ॥
औरत थी, छलावा थी, कि इन्द्रकी परी थी !
शंकासे, अजब शानसे खाटपै परी थी ॥ २८ ॥

कामीने कहा, "प्यारी ! बहुत सोच न कीजै ।
लो, लाया हूँ यह मोतीकी माला, इसे लीजै ॥
मुद्दतसे रहा शौक़में, टुक ध्यान तो दीजै ।
ऐसा करो इस दिलका भी अरमान तो कीजै ॥

जामौतीने है मेरा बहुत माल उड़ाया।

तब आज तुम्हे लाके मुझे तुमसे मिलाया" ॥ २९ ॥

जामौती कोई दूती है, यह सुनके सहम कर।
उठ बैठी सँभल सेजपै, बैठी वही जम कर॥
बोली कि, 'अजी' सत्य मैं कहती हूँ क़सम कर।
धोखा हुआ है तुमको, ज़रा सोचो तो थम कर॥

ऐसा न हो, पड़ जाय मनोरथ सभी सूना।

धोखेमें दहोके, कहीं खा लेना न चूना॥ ३०॥

मैं रण्डी नहीं और न हूँ रण्डीकी जाई।
निज नाहको तजि, अन्य पुरुष हैं मेरे भाई॥
तुम और जगह जाके करो चित्तकी भाई।
पर ह्याँसे चले जाओ, तुम्हें राम-दोहाई॥

इस दुःखिनी अबलाको सतानेदै न आओ।

ऐसा न हो, फल आपने कियेका अभी पाओ" ॥ ३१ ॥

कुतवालके बेटेने बहुत भाँति बुझाया।
धन देनेका वादा किया, फिर भय भी दिखाया॥
जामौतीसे बोला, "यही है तुमने सिखाया ?
करनेको निरादार मेरा है मुझको बुलाया ?

लो ज़ीनेके कर नीचेते अब बन्द किवारे।

कुछ कालमें मानैहीगी यह बैन हमारे" ॥ ३२ ॥

जब वीरमती समझी, कि यह जाल है सारा।
तब युक्ति सहित काम चलाना ही विचारा॥

बोली कि, "अधिक तुमसे मुझे कौन है प्यारा ?
मैं थाहती थी आपके इस प्रेमकी धारा ॥
सुन लीजे मेरा गान भी मदिरा भी उड़ाओ।
जब जाये नशा खूब तो फिर रंग मचाओ" ॥ २३ ॥

यों कहके सँभल बैठी, लगी छेड़ने कुछ तान।
"क्या खूब मेरी जान !" लगा कहने व शैतान ॥
भर-भरके प्याले भी लगा ढालने नादान।
थोड़ेही समय बाद वह बस हो गया मस्तान ॥
दम-पट्टीमें (१) ला छीन ली तलवार उसीकी।
सिर भी था मियाँजीहीका, पैज़ार (२) उसीकी ॥ २४ ॥

तलवार जो हाथ आई तो वीराका बढ़ा दिल।
ललकारके एकबारगी पापीपै पड़ी पिल ॥
पंजेमें फँसा, छक्के छुटे, बोल उठा दिल।
"ले इसको भली भाँति लगा कण्ठसे हिलमिल" ॥
यों बोल सपाटेसे लपक शीश उड़ाया।
और बाँधके गठरीमें तुरत नीचे गिराया ॥ २५ ॥

उस ओरसे आता था चला एक पहरुवा।
गठरीको उठा प्रेम सहित थानेमे लाया ॥
जब प्रात-समय खोलके कोतवालने देखा।
'हा राम !' यही कहके लगा पीटने मत्था ॥

---

(१) दम-पट्टी—भुलावा।

(२) पैज़ार—जूतो।

जामौतीका घर घेर लिया चारों दिशासे।

बँटने लगे कुतवालकी दायाके बतासे ॥ २६ ॥

जामौतीका घर झोंटा लगा बेंत लगाने
तब डरसे लगी पापिनी सब हाल बताने॥
सुन हाल सकल, कोठेके ऊपर लगा जाने।
देखा, कि खड़ी नारि है इक खड्गको ताने॥

ललकारके बोला, कि "निकल द्वारपै आओ।

क्यों मारा है तुमने इसे, सब हाल बताओ" ॥ २७ ॥

बीराने कहा, "सामनेसे दूर हो हटकर।
वरना, इसी तलवारसे पठवाऊँगी यम-घर॥
इस बधका सभी पाप है जामौतीके सरपर।
निर्दोष हूँ मैं आपके बच्चेके बराबर॥

यदि जानके अबला मुझे, कुछ ज़ोर करोगे।

बस, जानलो निज पापको तुम भोग मरोगे"॥ २८ ॥

कुतवालने निज ज्वानोंको यों हुक्म सुनाया।
"घुस जाओ, पकड़ लाओ, य है कौनकी जाया(१)॥
इसने मेरे फरज़न्दको (२) यम-धाम पठाया।
मैं भी करूँगा आज ही दुष्टाका सफाया॥

इस वक़ इसे क़ैद करेगा जो समर-धीर।

उसकोही फ़क़त समझूँगा मैं ज्वान महावीर"॥ २९ ॥

---

(१) जाया—स्त्री।

(२) फरज़न्द—लड़का।

यह सुनके वचन ज्वानोंको उत्साह समाया ।
और एकने उनमेंसे क़दम आगे बढ़ाया ॥
ज्यों उसने है दहलीज़ पै (१) निज पैर चढ़ाया ।
त्यों वीराने तलवारका इक हाथ जमाया ॥
सर धड़से जुदा होके लगा चूमने धरती ।
पापोंका यही फल है समझ लो जो कुदरती (२) ॥ ४० ॥

फिर दूसरा आया, उसे भी काट गिराया ।
फिर तीसरे चौथेको भी यम-धाम पठाया ॥
जो आता, वही होता था इक दममें सफ़ाया ।
जैसे हो रकतबीजको खाती महामाया ॥
इस भाँतिसे दल ज्वानोंका द्वारेपै किया नाश ।
कुतवालके सब होश उड़ी, मारी गई आश ॥ ४१ ॥

पाटनके महाराजने जब हाल य जाना ।
पहुँचा वहीं मौक़ेपै, किये क्षत्रीका बाना ॥
हल्ला पड़ा सब ग्राममें, लोगोंने बखाना ।
जगदेव भी सुन हाल, वहीं आके तुलाना (३) ॥
नर-नाहने ४ पूछा, कि "बता किसकी है नारी ?
किस हेतु है तूने मेरी यह सैन संहारी ?" ॥ ४२ ॥

"है वीरमती नाम, मैं क्षत्रीकी हूँ कन्या ।
पति मेरा है धाराके महाराजका बेटा ॥

---

(१) दहलीज़—चौकठ । (२) कुदरती—स्वाभाविक ।
(३) तुलाना—पहुँचा । (४) नर-नाह—राजा ।

जामौती मुझे लाई यहाँ दे बड़ा धोखा ।
लुटवाना मेरा चाहती थी धर्म अनोखा ॥
इस हेतु इन्हें मैंने है यम-धाम पठाया ।
आवैगा निकट, उसका यहाँ होगा सफ़ाया ॥ ४३ ॥

जबतक, कि मेरा स्वामी मुझे दृष्टि न आवै ।
है कौन जो तलवार मेरे करसे (१) छोड़ावै ॥
यदि वीर हो कोई तो मेरे सामने आवै ।
और आके मेरे अङ्गपै हथियार चलावै ॥
दम रहते तो इस तनको कोई छू न सकेगा ।
चाहेगा जो छूना, वही यम-धाम तकैगा" ॥ ४४ ॥

जगदेव खड़ा भीड़मे सब सुनही रहा था ।
जब सुन चुका. तब आके निकट प्रेमसे बोला ॥
"मैं आही गया, प्यारी ! तुम्हे अब नहीं शंका ।
फल पाया है सब दुष्टोंने, जिसने किया जैसा ॥
बस, क्रोध तजो आओ, चलें डेरपे अपने ।
अब छोड़के तुमको न कहीं जाऊँगा सपने" ॥ ४५ ॥

पति-बैन सुने वीरमती झट निकल आई ।
नर-नाहको परनाम किया नारि (२) नवाई ॥
जगदेवने सिधराजसे सब बात बताई ।
राजाने कहा, "बेटा ! मै देता हूँ बधाई ॥

---

(१) कर—हाथ ।

(२ नारि—गर्दन ।

बस, आजसे तू बेटी है, जगदेव जमाई ।
चलकर मेरे महलोंमें रहो मोद मनाई" ॥४६॥

सिधराजने सब संतको फ़ारनही बुलाया ।
'जगदेव है सेनापति' यह हुक्म सुनाया ॥
जामौताका सब माल-मता (१) दमम-लुटाया ।
दुतकारके निज राज्यसे भी दूर भगाया ॥

वीराको बड़े मानसे महलोंमें उतारा ।
जगदेवके कर सौंप दिया कोश भी सारा ॥४७॥

जगदेवने भी न्यायसे सब राज्य संभारा ।
जो राज्यके वैरी थे, उन्हें ढूंढ़के मारा ॥
सब कामोंमें वीरा भी सदा देती सहारा ।
इक युद्धमें थी साथ तो दुश्मनको पछारा ॥

वीराके विकट क्रोधका आतंक था छाया ।
सब वीर उसे कहते थे 'काली महामाया' ॥४८॥

इस हिन्दमें जब ऐसीही छत्राणी हों पदा ।
तब देशके टल सकते हैं कष्ट व बाधा ॥
हे राम! कृपाधाम! करो हिन्दपै दाया ।
छत्रानियां पैदा हों, जो हों दर्पमें दुगा ॥

अन्यायको महिषेश समझ शीश उड़ा दें ।
सुख-शांतिकी इस हिन्दमें धारा सी बहा दें ॥४९॥

---

(१) माल-मता—धन-सम्पति ।

कहते हैं सभी लोग जिसे आज महोबा ।
सोलहवीं सदीमें जहाँ चन्देल थे राजा ॥
चन्देलकी बेटी थी, विकट नाम था दुर्गा ।
निज नामके अनुसार थी, बलवान व वीरा ॥
लाके नराधीश दलपतिको थी ब्याही ।
उस वक्तमें इस हिन्दमें मुग़लोंकी थी शाही ॥ १ ॥

काबुलसे लगा ढाका तलक पूर्वमें फैला ।
कश्मीर था उत्तरमे, तो दक्षिणमें था बीजा ॥
इस सीमामें बजता था मुग़लज़ादोंका डंका ।
अकबर था शहंशाह महा राज्यका भूखा ॥
दलपति था उसी वक्त में मँडलाका प्रजापाल ।
स्वच्छन्द था राजा, व प्रजा भी न थी कंगाल ॥ २ ॥

मँडलाके सकल राज्यमें उपजाऊ मही थी ।
अधिकांशमे रेवा भी कृपा करके बही थी ॥
अकबरको इसे लेनेकी धुन लग ही रही थी ।
सरदारोंने यह बात कई बार कही थी ॥
र, गोंडवली राजासे यों राज्य छिनाना ।
मानों था विकट विन्ध्यके बाघोंको जगाना ॥ ३ ॥

पर काल-विवश छोड़के सुत तीन बरसका ।
दलपति तो इधर चुपकेसे सुरलोकको खसका ॥
उस ओरसे अकबरका बढ़ा और भी चसका ।
पर, सात बरस राज्यका टाँका नहीं टसका ॥

दुर्गावती निज पुत्रके हित राज्यका सब काम ।
निज हाथसे करती थी, सुमिरती थी सदा राम ॥ ४ ॥

आसफ जो था उस वक्तमें उज्जैनका नव्वाब ।
अकबरसे कहा, "हुक्म हो, मँडलापै करूँ दाब" ॥
अकबरने सहित हुक्म, दिया युद्धका अस्बाब ।
मँडलापै चढ़ा वीर, हो उत्साहसे गरक़ाब ॥

दुर्गापै य आसफ़की हुई ऐसी चढ़ाई ।
ज्यों शुम्भकी दुर्गापै विकट सैन थी धाई ॥ ५ ॥

नव्वाबसे दुर्गाने यही बात सुनाई ।
"ऐसा करो, जिसमें कि हो दोनोंकी भलाई ॥
पति-हीन दुखी बेवापै यों करना चढ़ाई ।
बालकका छिना राज्य, न पाओगे बड़ाई ॥

शाहोंको मुनासिब नहीं यों मनको चलाना ।
बल-हीनपै चहिये न कभी हाथ उठाना ॥ ६ ॥

क्षत्रानी हूँ, बिन मारे-मरे भूमि न दूँगी ।
दम रहते न रण-भूमिसे पग पीछे धरूँगी ॥
मानोगे मेरी बात तो कुछ मैं भी करूँगी ।
अन्याय करोगे, तो विकट रूप धरूँगी ॥

चन्देलकी बेटी नहीं तलवारसे डरती।
मॅडलाकी महारानी नहीं रणसे पछरती ॥ ७ ॥

पर एक दफे आपसे यह अर्ज़ है मेरी।
आशा है, कि मंज़ूरीमे करियेगा न देरी॥
जय पाके न कुछ आपको प्रगटेगी दिलेरी।
हारोगे तो सिर लादोगे बदनामीकी ढेरी॥

बस, खूब समझ-सोचके हथियार उठाना।
चातुर्य नही सोतेसे बाघिनको जगाना ॥ ८ ॥

अकबरको मेरी ओरसे यह बात सुनाना।
शाहोका मुनासिब नही बेवाको सताना॥
हो पुत्र मेरा ज्वान तो फिर राज्य छिनाना।
ज्वानोहीसे भिड़नेका है बस वीरोंका बाना॥

बालकपै तथा बेवापै है हाथ उठाता।
ससारमें वह वीर इज़्ज़तही नहीं पाता" ॥ ९ ॥

आसफने य वीरत्व-भरी नीति सुनी जब।
निज फौजके गर्रेसे (१) ठठा करके हँसा तब॥
रानीसे कहो जाके, "भला सुन तो लिया सब।
हल्ला (२) करूँ कब कोट पै? यह बात कहो अब॥

दिन तीनकी मोहलत है तुम्हें, सेन सजाओ।
इतनीही दया करता हूं, कुछ लाभ उठाओ ॥ १० ॥

गर्रा—घमण्ड।

हल्ला—चढ़ाई।

दुर्गाने सुनी बात तो यों क्रोधमें आई।
ज्यों दर्पमें मंजारी हो कुत्तोंकी सताई॥
"दाया करै मुझपर य यवन, भाई रे भाई!
मैं व्यर्थही संसारमें क्षत्रानी कहाई॥
दया करनेमें क्षत्रानी दया चाहे यवनकी।
इस हिन्दमें यह बात कहेगा कोई सनकी"॥ ११॥

यों कहके उसी रोज़ सजी सेन गोंड़ानी।
जिस सेनको लखि शत्रुका पित्ता बने पानी॥
हथियार लिये घोड़पै चढ़ गोंड़ोंकी रानी।
आसफ़की बड़ी फ़ौजके ढिग आय तुलानी॥
दर्पसे निज दुर्गाहीने आरम्भ किया युद्ध।
यह देखके आसफ़ भी हुआ मनमें महा क्रुद्ध॥ १२॥

चलने लगा हथियार विकट वेगसे रणमें।
खन्नाये सभी खाँड़े, चकाचौंध नयनमें॥
रुण्डोंसे पटी भूमि वहाँ थोड़े ही छनमें।
मुण्डोंसे महानादकी धुनि भर गई बनमें॥
उस ओरसे यवनोंने विकट वेगसे दाबा।
इस ओर ये ये गोंड़, कि भूतोंका शहाबा?॥ १३।

पर्वतकी अगम घाटियाँ रुण्डोंसे गईं पट।
नर-रक्तसे खोहोंकी शिला मिलके गईं सट॥
बैताल कहीं पीते थे नर-रक्त घटाघट।
लोथोंपै कहीं स्यार मचाते थे कटाकट॥

दो रोज़ युगल दलने विकट काट मचाई ।
आधीसे अधिक हो गयी सेनाकी सफ़ाई ॥ १४ ॥

दिन तीसरे दुर्गाने महा क्रोध जनाया ।
निज सेनको ललकारके यह हुक्म सुनाया ॥
"बस, आज जो रण-खेतसे घर लौटके आया ।
निज हाथसे कर डालूंगी मैं उसका सफ़ाया ॥

या आज यवन-सेनको मंडलासे भगाओ ।
या अन्त करो आज हो सुरलोक सिधाओ ॥ १५ ॥

रानीके सुने बैन, हुए गोंड़ अँगारा ।
बहने लगी चेहरोंपै विकट क्रोधकी धारा ॥
"यदि आज न रण-खेतमें यवनोंको पछारा ।
सब सेन सहित देशसे वनको न निकारा ॥

तो लौटके धामोंमें न निज पैर धरेंगे ।
सुख-सेजपै रण-खेतहीमें सैन करेंगे" ॥ १६ ॥

दुर्गाने सुनी गोंड़ोंकी यह वीर-प्रतिज्ञा ।
शङ्करको सुमिर हो गई निज दर्पसे दुर्गा ॥
घोड़ेपै चली वीरा लिये हाथमे भाला ।
सब बीरोंके दिल हो गये हिम्मतसे दुबाला ॥

'जय बोल महामायाकी' संग्रामको धाये ।
आसफ़ भी खड़ाही था उधर ताक लगाये ॥ १७ ॥

इस ओरसे गोंड़ोंने किया बेगसे धावा ।
उस ओरसे यवनोंने विकट वेगसे दाबा ॥

होने लगा हर ओरसे हुङ्कारका हमला।
सन्नाये कहीं तीर, कहीं भाला भी चमका॥
गुर्दाने कहा 'थप' तो कटारेने कहा 'चप'।
'छप' बोलो सिरोही, तो कहा खाँड़ाने 'खप-खप'॥ १८॥

दुर्गासे भी, दुर्गाको सुमिर हाथ उठाया।
वीरत्वके भण्डारसे लङ्गरसा लुटाया॥
इस वीरको भालेका जो फलहार कराया।
उस वीरको खाँड़ेका विमल नीर पिलाया॥
रण-गङ्गके तट रानीने यह ढङ्ग दिखाया।
जो सामने आया, उसे भरपेट छकाया॥ १९॥

गोड़ोंने भी जी-जानसे की डटके लड़ाई।
और मारके यवनेशकी सब फौज भगाई॥
रण-भूमिमें दुर्गाकी विजयकी थी दोहाई।
आसफसे बड़े वीरने जय-श्री नहीं पाई॥
हिन्दकी छत्रानियाँ यों होती थीं वीरा।
अब हिन्दके छत्री हैं फ़क्त कोटके कोरा!॥ २०॥

उज्जनमें जा फिरसे नई सेन सजाई।
दो वर्षमें आसफने की इक और चढ़ाई॥
इस बार भी दुर्गाने वही शान दिखाई।
निज शक्तिसे यवनोंको अनी मार भगाई॥
यों दो दफ़ा उज्जैनके आसफको हराया।
वीरत्वका यश लोकमें भरपूर भराया॥ २१॥

दो वर्ष गये बीत तो आसफने विचारा।
"अब फिरसे चढ़ाई करूँ दुर्गापै तिवारा॥
इस बार तो चल जायगा जादू भी हमारा।
दुर्गाके सिपाहोंको है धन-बाणने मारा॥
दो-चार, छः-दस-बीस मेरा सकते हैं क्या कर?
वल्लभ* छोटा सो बालक है, नहीं उसका है कुछ डर॥ २२

ले बीस सहस फौज चढ़ा मण्डला-गढ़पर।
दुर्गाने भी तैयार की निज सैन सँभलकर॥
वल्लभ भी चला लड़नेको निज घोड़ेपै चढ़कर।
दुर्गा भी चली हाथीपै ले साथमें परिकर॥
'जय कालिका' 'अल्लाह व अकबर' का पड़ा शोर।
होने लगा हर ओरसे संग्राम महा घोर॥ २३

वल्लभ था अवस्थामें फकत चौदा बरसका।
पर, शत्रुका दल देख, लगा खूनका चसका॥
तलवारसे काटा, किसीको साँगसे मसका।
जिस स्थानपै टूटा, किया यमराजके बसका॥
जिस ओर झपट जाता, उसी ओर था घमसान।
दम-भरमें कतर डाले कई झुण्ड मुसलमान॥ २४

दुर्गा भी धनुष-बाण लिये करती थी बौछार।
जिस ओरको धर तानती, करती थी विकट मार॥

---

* दुर्गावतीके पुत्रका नाम "वीर वल्लभ" था; परन्तु कवित में इतना बड़ा शब्द न समा सकनेके कारण केवल 'वल्लभ' लिखा गया है।

दुर्गाके निशित तोर थे या यमकी विकट धार।
लगते ही यवन गिरते थे बस मारके चिक्कार॥
...की विकट मारने यवनोंको छकाया।
पर, वरको महा फूटने दुर्गाका हराया॥ २५॥
वल्लभके कई घाव लगे, हो गया कमज़ोर।
घोड़ेसे गिरा, मच गया बस रणमें महा शोर॥
उठवाके उसे दुर्गाने पठवा दिया इक ओर।
गड़बड़ पड़ी सेनामें भगे रणसे लुकुमचोर ※॥
...देके मिला रक्खे थे आसफने कई गोंड़।
वे सेन सहित भाग उठे युद्धसे मुँह मोड़!॥ २६॥
यह देखके दुर्गा नहीं घबराई तनक भी।
लड़ती रही, मन आई नहीं भयकी भनक भी॥
इस वक्तमे द्रष्टव्य थी वीराकी सनक भी।
विश्राम नहीं लेती थी लड़नेसे छनक भी॥
, तीन सौ गोंड़ोंके लिये रणमें डटी थी।
हर ओर यवन वीरोंकी छेनाही पटी थी॥ २७॥
संयोगसे दुर्गाके लगा आँखमें इक तीर!
निज हाथसे खींचा उसे, पोड़ा सही गम्भीर!!
फिर दूसरे इक बानने गदनको दिया चीर!
उसको भी तुरत खींचके फेंका, न तजा धीर!!

※ लुकुमचोर—जान-बूझकर मुँह छिपानेवाले।

रण-भूमिमें करती रही बौछार सरोंकी।
अब जैसी नहीं देखते हम आज नरोंकी ॥ २८ ॥

हाथीकी अमारीमें जो सरदार था इक साथ।
भयभीत हो दुर्गासे कहा जोड़के निज हाथ॥
"महारानीजी! यवनोंसे न कटवाइये निज माथ।
अब छोड़के हठ, मान लो यवनेशको निज नाथ॥
दो फेंक धनुष-बाण, कहो, मान लो अब हार।
यह सुनके यवन-वीर नहीं घालेंगे हथियार" ॥ २९ ॥

दुर्गाने कहा, "ऐसा नहीं मुझको है मंजूर।
इस वक्त मेरे सामनेसे तुम भी हटो दूर॥
यों दीन वचन कहना, न क्या मरना है भरपूर?
इससे तो यही अच्छा है, रण-खेतमें हूँ चूर॥
कह दीन वचन शत्रुसे निज प्राण बचावे।
उस क्षत्रीको धिक्कार, उसे कालिका खावे" ॥ ३० ॥

यों कहके लिया खींच विकट एक कटारा।
हर नाम सुमिर ज़ोरसे निज पेटमें मारा॥
बस, प्राण-पखेरू वहीं सुरलोक सिधारा।
बहने लगी संसारमें शुभ-नामकी धारा॥
निज देशके निज नामके हित प्राण गँवाया।
दुर्गाका सुयश 'दीन' ने इस हेतु है गाया ॥ ३१ ॥

कर्मदेवी, कर्णवती, कमलावती

जिस वक्त कि अकबरने था चित्तौरको घेरा ।
हर ओरसे तोपोंका था घनघार दरेरा ॥
जयमलने किया जिस समय सुरलोकमे डेरा ।
चित्तौरकी रक्षाका पड़ा 'फत्ता' पै फेरा ॥
उस वक्तकी हूँ बात तुम्हे आज सुनाता ।
संवत् हू सही सोला सौ चौबीस बताता ॥ १ ॥

माताकी तरह जन्म-धरा * पूज्य व प्यारी ।
पीड़ित थी महा जिस समय यवनेशकी मारी ॥
फत्तासे विकट वीरने सब वार सँभारो ।
होने न दी चित्तौरके वीरत्वकी ख्वारी ॥
महतारा, बाहिन, पत्नी सहित युद्ध मचाकर ।
दिन तीन तलक रक्खा है चित्तौर बचाकर ॥ २ ॥

कर्मा थी फतेहसिंहकी जननी महा वीरा ।
थी कर्णवती जेठी बहिन युद्धमे धीरा ॥
कमलावती पत्नी थी फतेहसिंहकी वीरा ।
इन तीनोंका फत्ता ही था अनमोल सा हीरा ॥
जिसे जहानोंरसे जब जाके भिड़ा ज्वान ।
तब तीनोंने ऐसा किया निज चित्तमें अनुमान ॥ ३ ॥

---

* जन्म-धरा—जन्म-भूमि ।

"बेटा है मेरा सिर्फ अभी सोला बरसका ।
चक्खा नहीं कुछ स्वाद भी संसारके रसका" ॥
"भाईको मेरे यों लगै रण-खेतका चसका ।
मैं जेठी हो घरमें रहूँ, है काम अकसका (१)" ॥
"प्राणेशका चल युद्धमें मैं हाथ बटाऊँ ।
अर्द्धाङ्गिनी होनेका सही तत्व दिखाऊँ" ॥ ४ ॥

इस भाँतिके अनुमानसे ये तीनों सुवीरा ।
बाने सजे रण-खेतके, थीं चित्तमे धीरा ॥
बक्तरको पहन, बाँध लिया फेंटसे चीरा ।
सिर कूँड धरा, कटिसे कसा भाथ सतीरा (२) ॥
कंधेपै धनुष करकी अँगुलियोंमें अँगुस्तान ।
घोड़ेपै चढ़ीं, तीनों चलीं युद्धके मैदान ॥ ५ ॥

इक ओर था फत्ता तो महा युद्ध मचाता ।
जो सामने आता उसे बस भूमि चुमाता ॥
अकबरसा महावीर न था सामने आता ।
छल-छद्मसे निज सेनको हर ओर घुमाता ॥
इस भाँतिसे फत्ताको विचारा था थकाना ।
पर चल न सका कर्मासे यह छद्म पुराना ॥ ६ ॥

इक ओर बहू, बेटी सहित, घोड़ेपै असवार ।
कर्मा सी पहाड़ी पै डटी तकने लगी वार ॥

---

(१) अकसका—अनुचित ।

(२ भाथ सतीरा—तीरोंसे भरा तरकस ।

अकबर था किया चाहता फत्ताको गिरफ्तार।
यह देखके इन तीनोंने की तीरोंकी बौछार॥
और ज़ोरसे इन तीनोंने की ऐसी विकट मार।
अकबरके बहुत वीर हुए युद्धसे बेकार॥ ७॥

अकबरने य चाहा कि, "इन्हें जीता पकड़ लूँ।
करके क्षमा फिर प्रेमके बन्धनसे जकड़ लूँ॥
फत्ताको भी रण-भूमिमें निज हाथसे धर लूँ।
चित्तौरको इस भाँतिसे अधिकारमें कर लूँ॥
निज सेनमें सब वीरोंको यह बात सुनाई!
"जीता जो पकड़ ले इन्हें, वह है मेरा भाई"॥ ८॥

इस हेतु बहुत वीरोंने निज शक्ति दिखाई।
पर एक भी वीरा न किसी हाथमें आई॥
जो वीर निकट जाता, वही करके लड़ाई।
पड़ता वहीं इक आनमें, यम-घरमें दिखाई॥
इस भाँति हुए सैकड़ों यमधामके वासी।
तब छा गयी यवनेशके चेहरेपै उदासी॥ ९॥

क्षत्रानी अगर क्रोधसे निज जोशमें आ जाय।
कुल-धर्म अगर उसके ज़रा दिलमें समा जाय॥
वीरत्वका मद उसके तनक आँखमें छा जाय।
हथियार हो कुछ हाथमें, रण-भूमि भी पा जाय॥
फिर कौन है संसारमें जो उसको मनावे?
बिन प्राण दिये उसका नशा शान्त करावे॥ १०॥

अबलाका विकट क्रोध है तलवारकी धारा।
तिसपर भी जो क्षत्राणी हो और वश करारा॥
इतनेपै भी हो राज्यसे सम्बन्ध अन्यारा।
हो एक ही सुत, भाई, खसम, प्राणसे प्यारा॥
फिर उसके लिये नारि जो हथियार उठावे।
है कौन सुभट उसका जो फिर हाथमें लावे?॥ ११॥

अकबर ही स्वयं साथ लिये बीक विकट वीर।
तीनोंको पकड़ने चला मन धारे महा धीर॥
चढ़ते ही पहाड़ीपै लगे झड़ने विकट तीर।
और ज्वान पचासी गिरे तब छोड़ दिया धीर॥
कहेमे इशारा किया निज सैनको सनकार।
"अब काम अवश्य है करौ गोलियोंकी मार" ॥ १२॥

गोली चली हर ओरसे अवलाओंके दिस ज़ोर।
घोड़ेसे गिरी कर्णावती, घाव लगा घोर॥
यह देख, किया कमलाने रण और भी घनघोर।
बरसाने लगी तीर मघा-मेघसे हर ओर॥
कमलावती भी सासके दहने ही डटी थी।
हर ओर पहाड़ीके, यवन-सेन पटी थी ॥ १३॥

कमलावतीके तीन लगीं गोलियाँ इक साथ।
भुज-दण्ड हुए चूर तो बस झूल पड़े हाथ॥
घोड़ेसे गिरी कहके, "मेरे प्यारे! रे नाथ!
जाती हूँ मैं सुर-धामको गाती हुई गुण-गाथ॥

सम्भव हो तो हे प्यारे! मेरे पीछे ही आना।

इस युद्धमें यवनोंको न तुम पीठ दिखाना" ॥ १४ ॥

बेटी व बहू हो गईं रण-भूमिमें बेकाम।

यह देखके कर्माने लिया ज़ोरसे हरि-नाम॥

और करने लगी दोनोंके आरामका कुछ काम।

इतनेमेंही आ एक लगी गोली हृदय-धाम॥

बस, गोलीके लगते ही गिरी धमके वृद्धा।

छूटा न धनुष हाथसे, यों रणकी थी श्रद्धा॥ १५ ॥

फत्ताको ख़बर पहुँची, तो उस ओर पधारा।

महतारी, बहिन पत्नीका यह हाल निहारा॥

हर इकको उठाया, दिया निज करका सहारा।

मरही चुकी थी कर्णवती चोटके द्वारा॥

कमलाने तनक हेरके बस मूंद लिये नैन।

कर्माने कहे अन्त समय पुत्रसे ये बैन॥ १६ ॥

"हे पुत्र! रहे देहमें जबतक कि तनक प्रान।

निज देशके हित करना महा घोर घमासान॥

क्षत्रीका यही धर्म है, कर लेना भले ध्यान।

निज धर्मके पालनमें सहायक हो धनुष-बान॥

मैं चलती हूं कुछ मेरे लिये शोक न करना।

इस वक्त तेरा धर्म है तुर्कोंको कतरना॥ १७ ॥

निज देशके हित युद्धमें उत्साह दिखाना;

और पड़े निज रक्तसे रण-भूमि सिंचाना॥

निज शत्रुका सिर काटके चण्डीको चढ़ाना ;
क्षत्रीके विकट बानेको हर्गिज़ न लजाना ॥
धनु-बानसे, तन-प्रानसे निज देश बचाना ।
हे पुत्र ! मेरे दूधका यों मोल चुकाना" ॥ १८ ॥

यों कहके तजे प्राण, बसी स्वर्गमें जाकर ।
फत्ता भी फरागत हुआ लाशोंको जलाकर ॥
इन तीनों सुवीराओंने निज धर्म दिखाकर ।
इस हिन्दके इतिहासमें निज नाम लिखाकर ॥
उज्ज्वल किया मुख हिन्दका संसारके आगे
यश है ता है निज देशके हित प्राणको त्यागे ॥ १६ ॥

हे राम ! दयाधाम ! विनय मेरी पै दो कान ।
इस हिन्दके दुर्भाग्यपै दो कुछ तो भला ध्यान ॥
इस हिन्दमें हों क्षत्रियोंकी फत्ता सी सन्तान ।
महतारी, बहिन, पत्नी हों इन तीनोंके अनुमान ॥
हर नारिके शुभ चित्तमें उत्साह भरा हो ।
वीरत्व-सहित चित्तमें सत-धर्म खरा हो ॥ २० ॥
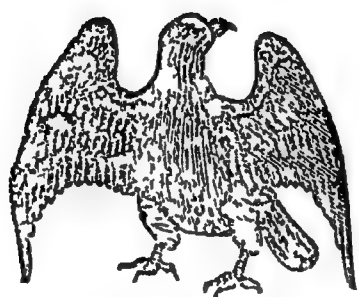
यश-पुष्प हैं दुनियामें अभी इनके महकते।
हैं नाम अमर इनके सितारोंसे चमकते॥
पुत्रोंको न होने दे कभी धर्मसे अनजान।
बस ऐसीही माताओंको यश देता है भगवान॥

भगवानदीन

"वैदेहीको लंकेशने दण्डकसे उड़ाया।
गृद्धेशने रोका तो उसे मार गिराया॥
फिर बागमें ले जाके उन्हें अपने बसाया।
रघुवीरको इस भाँति विरह-दुःख दिखाया॥
शवरीने तो निज रामको यों सत्य बनाया।
आनन्द-भवन रामको भी खूब रोलाया॥ १॥

आगे चले, सुग्रीवको निज मित्र बनाया।
बल-धाम विकट बालिको सुर-धाम पठाया॥
फिर मैथिलीकी खोजमें कुछ काल बिताया।
पातेही पता, सिन्धुको तत्काल बँधाया॥
ऐ मित्र! दल बोल दी लङ्कापै चढ़ाई।
संक्षेपसे यह राम-खबर तुमको सुनाई॥ २॥

रण-खेतमें अरि-पुत्रने है युद्ध मचाया।
वीरत्वसे हम लोगोंका है होश उड़ाया॥
वरदान विकट शक्तिसे है उसने जो पाया।
उस बलसे किये डालता है दलका सफाया॥
अब वीर लखनलालको इक साँग हनी है।
प्राणों पै समझ लीजिये बस आके बनी है॥ ३॥

लङ्काके चतुर वैद्य सुखेनाकी बताई।
मैं लेने गया था य उन्हीं हेत दवाई॥
अब जाता हूँ मै आप हैं, उनके सगे भाई।
कर लीजे जा कुछ आपसे बन आवै भलाई॥
बस, सूर्य उदय होते लखन फिर न बचेंगे।
ब्रह्मा भी अगर आके उन्हें आप रचैंगे॥ ४॥

हा! रामके संकटकी भला कौन कहूँ बात!
निज राज्य तजा, वनके सहे दुःख भी दिन-रात॥
पत्नीका विरह, युद्धमें मरता है पड़ा भ्रात!
अब इससे अधिक कौन कहूँ रामकी कुशलात?"
यों कहके महावीर तो लङ्काको पधारे।
उमड़ाये अवध-धाममें बस शोकके नारे॥ ५॥

हर ओर यही शोर था, "हा शोक! लखनलाल!
हा ईश! दयाधीश! य क्या सुनते हैं सब हाल!!
क्या फूट गया उर्मिलाका भाग्य-भरा भाल?
दशरथके महापुण्यका क्या लुट गया सब माल॥
कौशल्याके शुभ कर्मोंको हा ईश! यही फल?
यों रामपै क्यों छाया विपति घोरका बादल?॥ ६॥

क्या राज्यके विप्रोंने तजा होमका करना?
क्या छोड़ दिया क्षत्रियोंने न्याय बितरना?
क्या वैश्योंके मन भाया है गोरक्षा न करना?
क्या दासोंके मन आया है स्वच्छन्द विचरना?

गुरुदेवके जप-यज्ञका, हा ईश ! यही फल ?

यों रामपै क्यों छाया विपति घोरका बादल ? ॥ ७ ॥

क्या दिलमें भरतलालके कुछ लोभ है आया ?

शत्रुघ्नके क्या मनको मदनने है सताया ?

रघुकुलके किसी नरके हृदय पाप समाया ?

या मनमें किसी नारिके छल-छद्म है छाया ?

ऐसा नहीं तो कैसे विपत राम पे आई ?

रावणने हरी नारी, पड़ा मरता है भाई" ॥ ८ ॥

इस भाँति अवध-भरमें मचा ज़ोरसे हल्ला ।

था शोकसे खाली न कोई घर, न महल्ला ॥

मुखमें न दिया लोगोंने इक दाना भी ग़ल्ला ।

थे बैठे बने चित्र, धरे शोकका पल्ला ॥

यह हाल अवध-भरका सुमित्राने निहारा ।

थी वीरकी माता तो तुरत यह विचारा ॥ ९ ॥

यों शोकके करनेसे नहीं कोई बचा है ।

होता है वही, जो कि विधाताने रचा है ॥

रामूका* मृदुल चित्त विरह-रविसे तचा है ।

वैदेहीके हित शत्रुसे रण-घोर मचा है ॥

जूझा है अनुज, युद्धमें रामू है अकेला ।

भाईसे मदद पानेकी इस वक्त है वेला" ॥ १० ॥

---

* रामू—सुमित्राजी वात्सल्य भावसे 'राम' का 'रामू' कहती थीं ।

यह सोचके शत्रुघ्नको निज पास बोलाया।
सिर सूँघ बड़े प्रेमसे कर सिर पै फिराया॥
मातका मनोभाव उन्हें स्वच्छ दिखाया।
क्षत्रानीका क्या अर्थ है, यह साफ बताया॥
भाईके लिये भाईका कर्त्तव्य लखाया।
क्या तत्व है कुल उच्चका बस सत्य सुझाया॥ ११॥

"विप्रानी सदा धारती है गर्भ इसी हेत।
पैदा करे संसारमे इक व्यक्ति महाचेत॥
संसारके उपकारसे यश पावै महाश्वेत॥
खुद बावै, बोवावै भी सुमग धर्मके कुछ खेत॥
जो विप्र नहीं करता है तप-हेत कमाई !
माताने उसे जनके वृथा वैस गँवाई॥ १२॥

क्षत्रानी सदा धारती है गर्भमें बालक।
पैदा करै संसारमें नर-धर्मका पालक॥
दीनोंका बनै त्राण, हो दुष्टोंका भी घालक।
अन्याय-निवारक भी हो, शुभ न्यायका चालक॥
ऐसा न हो क्षत्री तो उसे कीट ही जानौ।
जननेमें वृथा कष्ट सहा मातुने मानौ॥ १३॥

वैश्यानी इसी हेत करै गर्भको धारण।
सुत उसका बनै देशकी सम्पत्तिका कारण॥
रक्षा करै गो-वंशकी, दुर्भिक्ष-निवारण।
विद्याका करै मान, जो है देश-उबारण॥

ऐसा न हो यदि वैश्य तो निश्चय ही अधम है।
निन्दा करैं उस माताकी जितनी ही सो कम है॥ १४॥

शूद्रानीके अवधानका बस एक सुफल है।
पैदा करै सुत ऐसा जो सेवामें अचल है॥
स्वामीहीको आशा, जिसे स्वामीहीका बल है।
सेवामें निपुण, धर्ममें रत, मनका निछल है॥
जो दास न तन-मनसे करे स्वामीकी सेवा।
अच्छा हो जो यमराज करैं उसका कलेवा॥ १५॥

क्षत्रानी हूँ बेटा! तुझे इस हेतु है पाला।
संसारमें भर जाय मेरे यशका उजाला॥
क्षत्रानियोंमें होने न दे मुँह मेरा काला।
संसारमे रघुवंशका कुछ बोल हो बाला॥
इस वक्त जा कहती हूँ उसे चित्तमें धर ले।
मौक़ा है भला नाम अमर अपना तू कर ले॥ १६॥

आया है जो संसारमें इक रोज़ है जाना।
भोंदू * है जो हाँ रह न करै यशका ठिकाना॥
क्षत्रीके लिये न्याय सहित धर्म कमाना।
बस, एक यही है कि धरै वीरका बाना॥
अन्याय निवारण करे, शुभ न्याय प्रचारे।
सद्धर्मका बाधा भी भली भाँति निवारे॥ १७॥

---

* भोंदू—बेसमझ, मूर्ख।

क्षत्रानी तभी पुत्रवती अपनेको मानै।
'रण-खेतमे जूझा है तनय' लोक बखानै॥
जूझा है लखनलाल बड़े ठौर-ठिकाने।
सँग भाईके जाता था बड़ी भाभीको लाने।
मैं अर्द्ध हुई पुत्रवती, अर्द्ध हूँ बाकी।
हे पुत्र! तुझे मेरी कमी जायगी ताकी?॥ १८॥

वश होके युवा-बैसके यदि मोह करैगा।
पत्नीके मधुर प्रेमका कुछ ध्यान धरैगा॥
इस वक्त अभी जाके न रावणसे लड़ैगा।
तो जान ले बस, पापके कुण्डेमें पड़ैगा॥
भाई भी तुझे जानेंगे पत्नीके वशीभूत।
जो पाके खबर कुछ न दिखावैगा तू करतूत॥ १९॥

रामूकी दशा देख, कि पत्नीसे छुटा है।
पत्नीको तजे वीर-भरत तपमें जुटा है॥
पत्नीसे पृथक् वीर-लखन रणमें कुटा है।
इन तीनो ही भ्राताओंका यों मोद लुटा है॥
तुझको नहीं वाजिब कि रहै घरमें सपत्नीक।
इस हेतु तुझे युद्धके हित जाना ही है ठीक॥ २०॥

भाईके लिये भाईका है धर्म महाना।
आनन्द-समय उसके महा मोद मनाना॥
निज बाहुके बल, बुद्धिके बल, भीर हटाना।
सम्पत्तिमें साझी हो, तो सङ्कट भी बँटाना॥

इस हेतु उचित है तुझे लंका अभी जाना।
माता ही समझ भाभीके हित युद्ध मचाना॥ २१॥
भावजको भी माताके सरिस चित्तमें धरना।
मर्याद रहे उसकी, वही काम भी करना॥
जो चाहे कोई उसके अचल धर्मको हरना।
बस, मारनेमें उसके कभी देर न करना॥
सङ्कटको तेरा जाना इसी हेतु उचित है।
बिन जाँचे ही कुछ देना मदद सत्य सहित है॥ २२॥
निज वंशकी सतियोंका सती-धर्म रखाना।
निज बन्धुका सङ्कटमें कुछ हाथ बँटाना॥
छोटोंको सहित नेह कुलाचार सिखाना।
गुरु लोगोंका भय मानके सम्मान बढ़ाना॥
बालोंका भली दृष्टिसे सम्मान भी करना।
यह उच्च-कुली धर्म है, निज ध्यानमें धरना॥ २३॥
तू रामके इस कामसे यदि पीछे हटैगा।
हे वत्स! अभी जाके न रण-थलमें डटैगा॥
वो जान ले बस, तुझसे मेरा चित्त फटैगा।
यह पाप अवज्ञाका न काटेसे कटैगा॥
रामू है विकट वीर अकेला ही लड़ैगा।
पर तुझको तो संसारमें शरमाना पड़ैगा?॥ २४॥
रामूकी य आपत्ति बहुत दिन न रहैगी।
लंकेशके शोणितकी नदी शीघ्र बहैगी॥

सुनते ही बकारेको जुड़े सैन्य अपारा ।
शस्त्रोंको सँभारा, भले अस्त्रोंको सुधारा ।।
सज-धजके सकल शूर, महल-द्वार पै आये ।
इतनेमें समाचार ये गुरुजनने पाये ॥ ३२ ॥

घबराये हुए दौड़े महल-द्वारपै आये ।
पूँछा कि "कहो तुम गये किस हेतु जुटाये ?
लङ्केशके क्या वीर हैं कुछ युद्धको आये ?
इस वक्तमें रण-घोष गये कैसे बजाये ?
शत्रुघ्न कहाँ है, मुझे अति शीघ्र दिखाओ ।
रण-नादकी सब सत्य कथा मुझको सुनाओ' ॥ ३३ ॥

इतनेहीमें बस आगये शत्रुघ्न वहींपर ।
पद छूके सकल हाल कहा उनसे सरासर ।।
सुन हाल, समझ तत्व, सुमित्राके गये घर ।
समझाया कि "क्या करती हो यों मोहमें आकर ?
तुमके वहाँ जानेसे न कुछ काज सरेगा ।
इस राज्यकी रक्षा कहो फिर कौन करेगा ? ॥ ३४ ॥

वर-पुत्र लखन-लाल तेरा है भला-चङ्गा ।
मिट जायगा अति शीघ्र ही लङ्केशका दङ्गा ।।
अतिशीघ्र लखन पावैंगे यश-नाम उतङ्गा ।
जय पावैंगे रघुवीर, य है बात अभङ्गा ।।
निर्दोष सती सीताको निज सग लिये राम ।
अति शीघ्र सुशोभित करेंगे आके अवध-धाम' ॥ ३५ ॥

गुरुदेवके कहनेसे सुमित्राको हुआ धीर।
शत्रुघ्नसे बोली, किये कुछ भाव-सा गम्भीर॥
"हाँ, जान लिया तू भी है सुत मेरा बड़ा वीर।
गुरु-राजके कहनेसे धरो छोर धनुष-तीर॥
अब सैन्यसे कह दो, सभी निज धामको जावैं।
अत्यन्त सुजग रहके अवध-राज्य रखावैं" ॥ २६ ॥

हे राम! दयाधाम! दया 'दीन' पै करना।
है तेरी कृपा-कोर कठिन काल-कतरना॥
अपकृत्योंपै मेरे कभी कुछ ध्यान न धरना।
इस काव्यके सब प्रेमियोंको मोद बितरना॥
भारतके लिये 'दीन' है यह नित्य मनाता।
शत्रुघ्नसे हों पुत्र, सुमित्रासी सुमाता॥ २७ ॥

वीरोंकी सुमाताओंका यश जो नहीं गाता।
वह व्यर्थ सुकवि होनेका अभिमान जनाता॥
जो वीर-सुयश गानेमें है ढील दिखाता।
वह देशके वीरत्वका है मान घटाता॥
दुनियामें सुकवि नाम सदा उसका रहेगा।
जो काव्यमें वीरोंकी सुभग कीर्ति कहेगा॥ १॥

वाल्मीकने जब वीर-चरित रामका गाया।
सम्मान सहित नाम अमर अपना बनाया॥
श्रीव्यासने तब नाम सुकवियोंमें है पाया।
भारतके महायुद्धका जब गीत सुनाया॥
क्या 'चन्द' भी हिन्दीका सुकवि आदि कहाता?
यदि वीर पिथौराका सुयश-गान न गाता?॥ २॥

'होमर' जो है यूनानका कवि आदि कहाया।
उसने भी सुयश वीरोंका है जोशसे गाया॥
'फिरदौसी'ने भी नाम अमर अपना बनाया।
जब फारसी वीरोंका सुयश गाके सुनाया॥
सब वीर किया करते हैं सम्मान क़लमका।
वीरोंका सुयश गान है अभिमान क़लमका॥ ३॥

इस वक्त हैं हिन्दीके बहुत काव्य-धुरन्धर।
आचार्य कोई, इन्दु कोई, कोई प्रभाकर॥
काव्याद्रि कोई, कोई हैं साहित्यके सागर।
हैं काव्यके काननके कोई सिंह भयङ्कर॥
मैं काव्य-सुकुल-कामिनीका बाल हूं अज्ञान।
इस हेतु मुझे भाता है माताओंका यश-गान॥ ४॥

कुन्ती सी अतुल वीर-सुमाताको नमस्कार।
सौ बार, सहसबार, अयुतबार नमस्कार॥
वैधव्य हो, सुत छोटे हों, आपत्तिका हो भार।
उस वक्त भी सुत देके करै दीनका उपकार॥
यश ऐसी सुमाताका सहित हर्ष न गाना।
है हिन्दकी माताओंका सम्मान घटाना॥ ५॥

जब भाग गये पाण्डु-तनय लाख-भवनसे।
माताको लिये साथ, चले जाते थे वनसे॥
थे दीन बहुत मनसे, बहुत छीन थे तनसे।
तब व्यास मिले आके, दिया धीर बचनसे॥
ले आके बसाया इन्हें 'इकचक्र'* नगरमें।
वे रहने लगे दीनसे इक विप्रके घरमें॥ ६॥

दुनियामें बहुत बार है यह हाल निहारा।
बहती नहीं है एकसी नित कालकी धारा!

---

* इकचक्र—(एकचक्रा-नगर) बिहारका 'आरा' नगर ही उस समयका एकचक्रा-नगर है।

कुन्ती जो थी कल एक बड़े भूपकी दारा।
हा! आज वही करती है भिक्षासे गुज़ारा!
नृप पाण्डुके सुत पाँच जो कल राजकुँवर थे।
भिक्षासे गुज़र करते, बसे विप्रके घर थे!॥ ७॥

'बक' नाम असुर एक था उस ग्रामका रखवार।
निज भोग लिया करता था वह पारीसे प्रतिबार॥
सह अन्न मनुज एक था उस दुष्टका आहार।
देते थे सभी, बस यही था ग्रामका आचार॥
इक रोज़ जो आ पहुँची उसी विप्रकी पारी।
रहती थी सहित पुत्र जहाँ पाण्डुकी नारी॥ ८॥

उस विप्रका घर बन गया इक शोकका आगार।
निज पुत्रके हित रोने लगा छोड़के डिंड़कार॥
"बस, एक यही पुत्र है, कुछ है नहीं दो-चार।
पुरखोंके लिये है यही जल-पिंडका आधार॥
हा! कैसे इसे आज असुरपतिसे बचाऊँ।
किस भाँतिका, मिस कौनसा इस हेतु बनाऊँ"? ॥९॥

ये शोक-भरे शब्द जो कुन्तीके पड़े कान।
ब्राह्मणके प्रबल शोकका त्योंही किया अनुमान॥
रोके न रुका कुन्तीसे क्षत्रित्वका अभिमान।
आपत्तिमें भी तजते नहीं धर्म सुधीमान॥
दायासे द्रवित होके मधुर बैन सुनाया।
उस विप्रका सब शोक वचन-चन्द्रमें बहाया॥ १०॥

"हे विप्र-प्रवर ! शोक तजो, चित्त सँभारो ।
धीरजको गहो, चित्तसे सब खेद निकारो ॥
हे विप्र-वधू ! तुम भी न कुछ सोच पसारो ।
इस शोकसे बेफ़ायदा तुम मनको न मारो ॥
कहनेसे मेरे चित्तका सब शोक हटा दो ।
निज पुत्रके बदले मेरा इक पुत्र पठा दो ॥ ११ ॥

तुम मेरे विपद्-कालमें आये हो बड़े काम ।
मुझको मिला है घरमें तुम्हारे बड़ा विश्राम ॥
उपकारका बदला भी तो देना है मेरा काम ।
क्षत्रानी कृतघ्नोंमें लिखाती नहीं निज नाम ॥
हैं पाँच सुवन मेरे तुम्हें देती हूँ एक पूत ।
भेजो उसे 'बक' पास, लखो उसकी तो करतूत" ॥ १२ ॥

यों कहके तुरत भीमको निज पास बुलाया ।
उस विप्रकी आपत्तिका सब हाल सुनाया ॥
क्षत्रानी-सुवन होनेका सब तत्व लखाया ।
उपकारके बदलेका भी सब मर्म बताया ॥
"सर्वत्र सदा धर्मके हित कष्ट उठाना ।
संसारमें देखा है गया वीरका बाना ॥ १३ ॥

हे पुत्र ! अगर रखता है कुछ वंशका अभिमान ।
क्षत्रित्वके शुभ तत्वका कुछ चित्तमें हो ध्यान ॥
संसारमें करवाना न हो बापका अपमान ।
जननीका भी मंजूर हो कुछ चित्तसे सम्मान ॥

तो आज मेरे कहनेसे छत इसका बचा ले।
इस विप्रकी आपत्तिको निज शीश चढ़ा ले ॥ १४ ॥

धिक्कार है उस विप्रको, जो वेद न जानै।
संसारके उपकारको जप-यज्ञ न ठानै॥
उस क्षत्रीको धिक्कार, जो विप्रोंको न मानै।
सब लोगोंकी रक्षाके लिये दुष्ट न भानै।

उस वैश्यको धिक्कार है जो गाय न पाले।
धन, अन्न रखा देशका दारिद्र न टाले ॥ १५ ॥

उस शूद्रको धिक्कार, जो सेवामें करै चूक॥
मालिकका सुविश्वास करै चूकसे दो टूक॥
उस नारिको धिक्कार, जो लै बैनकी बन्दूक।
पति-चित्त-हिरन मारनेको प्रेमकी दे डूक॥

धिक्कार है उस नरको, जो निज बैन न पाले।
बिन समझे ही बूझे जो वचन मुँहसे निकाले ॥ १६ ॥

धिक्कार बटुकको है, जो गुरु-बैन न मानै।
शिक्षामें करै ढील, सदाचार न ठानै॥
धिक्कार गृही कर्म तजै मर्म न जानै।
धिक् ऐसा यमी तपको तजै गप्प बखानै॥

सन्यासीको धिक्कार, जो मायामें रहै लीन।
दुनियाके प्रपंचोंमें रहै रामसे रतिहीन ॥१७॥

धिक्कार है भूपालको, जो नीति न जानै।
आधीन प्रजा-जालको निज पुत्र न मानै॥

धिक्कार प्रजा, भूपकी निन्दा जो बखानै।
राजासे कपट करके वृथा वाद ही ठानै॥
सब भाँतिसे उस व्यक्तिपै धिक्कारका है भार।
नर हो न भजे ईश, करै कुछ भी न उपकार॥ १८॥

धिक्कार है भाईको, जो भाईको सतावै।
आपत्तिमें सह प्रेम न कुछ हाथ बँटावै॥
धिक्कार है उस सुतको जो पितु-नाम धरावै।
निज कृत्यसे पुरषोंको नरक-द्वार झँकावै॥
धिक्कार युवकको है, जो कुल-धर्म न पाले।
युवतीको है धिक्कार जो कुल-लाजको घाले॥ १९॥

उस पुत्रको धिक्कार, जो माताको लजावै।
जननीकी अवज्ञाका महापाप कमावै॥
उस मातुको धिक्कार, जो सुत क्रूर बनावै।
कुल-धर्म-सहित उसको न शुभ कृत्य सिखावै॥
उपकारका शुभ तत्व कभी कुछ न सुझावै।
दुखियोंकी मदद करनेका मतलब न बुझावै॥ २०॥

सब भाँतिसे धिक्कार उसे वेद बतावै।
इस जगमें किसीके भी कभी काम न आवै॥
सामर्थ्यके होते भी न करतूत दिखावै।
निज शक्तिसे दीनोंका न दुख दर्द हटावै॥
निज देहके पोषणहीमें सब शक्ति लगा दे।
आलस्यको धारे रहे कुल-धर्म भगा दे॥ २१॥

इस जगकी प्रजा-मात्रको विधि-बद्ध चलाना।
अन्यायकी जानिब न कभी चित्त डोलाना॥
दुष्टोंको दबाना सदा, दीनोंको बचाना।
विप्रोंके सुहित-हेतु सदा युद्ध मचाना॥
क्षत्रीका तनय होके जो ऐसा नहीं करता।
वह जान लो, पुरखाओंको है अपने निदरता॥ २२॥

यह नीति परखनेको लखो रामका आचार।
दण्डकमें किया सूपनखा सङ्ग जो व्यवहार॥
पत्नी भी तजी, भाईको छोड़वा दिया घरबार।
अन्याय परख, कर दिया लंकेशका संहार॥
सुग्रीवकी रक्षाके लिये बालिको मारा।
दलि-दुष्ट सुभुज विप्रका मख-साज सँभारा*॥ २३॥

इस विप्रने कैसा बड़ा उपकार किया है।
हम सबको भवन अपनेमें विश्राम दिया है॥
अत्यन्त सदयतासे भरा इसका हिया है।
आपत्तिने इस वक्त इसे घेर लिया है॥
इस वक्त अगर इसकी मदद तू न करेगा।
क्षत्रित्वका अभिमान भला कैसे धरेगा?॥ २४॥

मेरे तो हो तुम पाँच सुवन इसके फ़कत एक।
यह विप्र दयावान है, विप्रानी बड़ी नेक॥

---

* श्री रामकी अदाग्र कार्य्यावलीसे परिचित होनेके लिये आप हमारे यहांसे ३२ चित्रोंसे युक्त "श्रीराम-चरित्र" नामक बृहद ग्रन्थ मँगाकर देखें। प्रथम रंगीन जिल्द ४॥) रु०, रेशमी जिल्द ६) रुपया।

इस हेतु मेरे चित्तमें आ बैठी है यह टेक ।
करतूतसे इस विप्रकी आपत्तिको दूँ छेंक ॥
यदि तेरे चले जानेसे सुत इसका बचे आज ।
तो जानूँ कि मैंने भी किया लोकमें कुछ काज ॥ २५ ॥

मैंने जो पिलाई है तुझे दूधकी धारा ।
आपत्ति टले विप्रकी, पा उसका सहारा ॥
हो जायगा दुनियामें सफल जन्म हमारा ।
क्षत्रित्वके निज तत्वका बज जाय नगारा ॥
क्षत्राणियोंके चित्त महामोदसे भर जायँ ।
दुर्भाग्य घटे, वंश-पितर आज ही तर जायँ ॥ २६ ॥

क्षणभंगु मनुज-देहका है कौन ठिकाना ?
पानीके बबूलेका है उपमान बखाना ॥
उपकारमें इक विप्रके यों जानका जाना ।
दुनियाके दुखी लोगोंको दुष्टोंसे बचाना ॥
मौका है बड़े भाग्यसे ऐसा कभी आता ।
मिल जाय जिसे, धन्य है उसकीही सुमाता ॥ २७ ॥

इस हेतु मेरे हुक्मसे 'बक' पास तू जा आज ।
इस विप्रका यह पुत्र बचा कर ले महाकाज ॥
नाहीं जो करेगा, तो मुझे होगी बड़ी लाज ।
वह 'नाहीं' तेरे होगी मेरे नाशका इक साज ॥
हो तेरे अगर सिरपै मेरे प्रेमका कुछ भार ।
हो जा अभी इस विप्रके इस कार्य्यको तय्यार" ॥ २८ ॥

मताके सुने बैन ये उपकारके साने।
द्विजराजकी आपत्ति लगी ध्यानमें आने॥
विप्रानीके देखे जो युगल ओंठ फुराने।
करुणासे महानदमें लगे भीम नहाने॥

पछरेशकी करतूतका जब पूरा सुना हाल।
भुजदण्ड फड़क उट्ठे हुए नेत्र भी कुछ लाल॥ २९॥

"हे मातु! भली भाँति मुझे तूने लखाई।
नर-देह सफल करनेकी तदबीर बताई॥
संसारमें क्षत्रीको मिले ऐसी ही माई।
तो क्षत्री भी इसलोकमें कर जाय कमाई॥

औरोंकी कमाई हूँ सदा भोग लगाता।
घरमें ही पड़ा रहता हूँ आलस्यमें माता॥ ३०॥

आलस्यमें भुज-दण्ड शिथिल जाते हैं होते।
बहते हैं बहुत मन्द मेरे खूनके सोते।
दिन-रात गुजरते हैं बहुत सोते-ही-सोते।
हो सकता है यह कैसे भली मातुके होते?

तू सत्य सुमाता है, सुभग धर्म लखाया?
कर्तव्य मनुज-देहका यह मुझको सिखाया"॥ ३१॥

यों कहके असुर पास तुरत भीम सिधारे।
पकवानका इक टोकरा निज शीशपै धारे॥
चिल्लाके कहा जाके असुर-राजके द्वारे।
"मैं लाया हूँ, भोग सकल हेत तुम्हारे॥

खो खाओ इसे और मुझे भोग लगाओ।
खा-पीके बड़ी मौजसे आनन्द मनाओ" ॥ ३२ ॥

यों कहके लगे आप ही पकवान उड़ाने।
यह देखके राक्षसका रहा दिल न ठिकाने।
बोला कि अरे दुष्ट! लगा भोग लगाने?
क्यों क्रोध दिलाता है मुझे तू बिना जाने?
ले आता हूँ अब, तुझको उड़ा जाता हूँ कच्चा।
फल ऐसी ढिठाईका तुझे देता हूँ बच्चा" ॥ ३३ ॥

यों कहके लपक भीमकी दिशि हाथ बढ़ाया।
झट हाथ पकड़ भीमने पृथ्वीपै गिराया॥
औंधाके उसे पीठपै घुठनेसे दबाया।
पद-शीश पकड़ हाथसे ऊपरको उठाया॥
यों तोड़की गुरियोंको तड़ाकेसे उड़ाये।
यम-धाम उसे भेजके निज धामको आये॥ ३४ ॥

विप्रानीको कुन्तीने सकल हाल सुनाया।
उस विप्रने आ भीमको छातीसे लगाया॥
"जीते रहो, भैयाजी! मेरा शोक मिटाया।
सब ग्रामके लोगोंका विपति-भार हटाया"॥
यह 'दीन' रहेगा सदा यह बात मनाता।
भारतमें हों छत भीमसे, कुन्ती सी सुमाता॥ ३५ ॥

भारतमें सदाहीसे चली आती है यह रीति ।
आश्चर्यभरी मिलती है क्षत्रानियोंकी नीति ॥
निज मानकी रक्षामें दिखाई न कभी भीति ।
रखती ही चली आई हैं वीरत्वसे निज प्रीति ॥

मर्य्यादको रक्षामें स्वपतिको भी संहारैं ।
संसारके सुख-भोग सकल भाड़में डारैं ॥ १ ॥

बस, नाम जो 'अबला' इन्हें मुनियोंने दिया है ।
महिलाओंके सङ्ग भारीसा अन्याय किया है ॥
जाँचा नहीं किस धातुका नारीका हिया है ।
अमृतकी मधुर धार है, या विषका बिया है ॥

जानी नहीं जाती, कि है गति नारिको कैसी ।
अच्छीसे अधिक अच्छी, अनैसोसे अनैसी ॥ २ ॥

इक नारिको सौतिनके सदाचारका अभिमान ।
रक्षामें सवति-मानकी निज स्वामीका अपमान ॥
लेना भी सवति-पुत्रको निज पुत्र-सरिस मान ।
समझो तो भला कैसा था इस नारिका विज्ञान ॥

ऐसी ही कथा आज हूं मैं तुमको सुनाता ।
नारीके सबल चित्तकी हूं बात बताता ॥ ३ ॥

वन-वास-समय पार्थने गुण-रूपकी भारी।
ब्याही थी मनीपुरमें इक राजकुमारी॥
चित्रांगदा शुभ नाम था, थी प्रेम-पिटारी।
इक पुत्र हुआ इसके बड़े तेजका धारी॥
था 'बभ्रु' सहित नाममें 'वाहन' का समावेश।
वीरत्वमें था मानो विजय*हीका अपर वेश॥ ४॥

मणिपूरमें रहते हुए इक नाग-कुमारी।
जो प्रेमकी सरिता ही थी और रूपकी क्यारी॥
आसक्त हुई पार्थके गुण-रूप निहारी।
अर्जुनने किया उसको सहित नेह-स्वनारी॥
था नाम उलूपी, न भरी उसकी मगर गोद।
ये दोनों रहा करतीं मनीपुरमें सह-मोद॥ ५॥

चित्राङ्गदाके पुत्रको अपनाही सुवन जान।
बभ्रूका किया करती थी अति नेहसे सम्मान॥
अर्जुनने उसे धायका पद देके किया मान।
फिर अन्य किसी देशको बस कर गये प्रस्थान॥
बभ्रु भी समझता था इसे अपनी ही माता।
इसके ही निकट रहता, सदा खेल मचाता॥ ६॥

बचपनहीमें बभ्रू हुआ मणिपूरका महाराज।
करने लगा अति न्याय-सहित राज्यका सब काज॥

---

* विजय—अर्जुन।

जब राय युधिष्ठिरने रचा यज्ञका सब साज ।
हय छोड़ किया पार्थको सब फ़ौजका सिरताज ॥
फिरता हुआ जब अश्व मनीपूरमें आया ।
बभ्रू भी पिता जानके सम्मानको धाया ॥ ७ ॥
कुछ भेंट लिये पार्थके दर्शनको जब आया ।
यह देखके अर्जुनके हृदय क्रोध समाया ॥
ललकारके बभ्रूको यही वैन सुनाया ।
"तू पुत्र नहीं मेरा, मेरा नाम धराया ॥
रे दुष्ट! मेरे ध्यानमें ऐसा ही है आता ।
है पुत्र किसी औरका, कुलटा तेरी माता ॥ ८ ॥
कुछ-सूझता है तुमको, कि है दिन कि अँधेरा ?
सम्बन्ध मेरे साथमें क्या आज है तेरा ?
मैं आज विपक्षी हूँ, तुझे देके दरेरा ।
ले जाऊँगा सब कोश तेरा लूट घनेरा ॥
मैं बनके तेरा बाप नहीं आया हूँ इस ठौर !
मैं तेरा विपक्षी हूँ, ज़रा बातपे कर ग़ौर ॥ ९ ॥
हट जा तू मेरे सामनेसे, मुँह न दिखाना ।
'अर्जुनका सुवन हूँ' न कभी जीभपे लाना ॥
माताने तेरी मुझको छला आज य जाना ।
नारीका युवा-कालमें क्या ठीक-ठिकाना ?
यदि पुत्र मेरा होता तो रण-साज सजाता ।
घोड़ेको पकड़, क्रोध-सहित युद्ध मचाता ॥ १० ॥

रे क्रूर ! अगर रखता है कुछ वंशका अभिमान ।
और चाहता है मुझसे बचें तेरे अधम प्राण ॥
तो अस्त्र पकड़, साजके वीरत्वका सामान ।
उत्साह-सहित युद्धमें कर मुझसे घमासान ॥
तब जानूँगा माता तेरी है मेरी दुलारी ।
नाहीं तो पिता कहके मुझे देना न गारी ॥ ११ ॥

सुन बात अलूपीने, जो थी साथमें आई ।
ललकारके बभ्रूको यही बात सुनाई ॥
"हमपर जो महाबाहुने है जीभ चलाई ।
यह दोष मिटानेके लिये कर तू लड़ाई ॥
चित्रांगदाने तुझको जना, मैंने है पाला ।
करवाता है क्यों बापसे यों मुँह मेरा काला ? ॥ १२ ॥

निज बाहुके बल दोष हमारा य छुटा दे ।
पाण्डवको गिरा भूमिमें, या प्राण लुटा दे ॥
निज हाथसे या मेरा गला धड़से हटा दे ।
जननीहीको निज मारके अपमान मिटा दे ॥
इन बातोंमें जो भावे वही करके दिखा वीर ।
पाण्डवके हैं ये बैन, कि अपमानके हैं तीर ? ॥ १३ ॥

क्षत्रानी कोई ऐसे वचन सुन नहीं सकती ।
ये बैन सुने आग है सीनेमें धधकती ॥
पत्नी न अगर होती, तो खुद मैं ही धमकती ।
यों लड़ती कि बस बुद्धि न यों इनकी सनकती ॥

क्षित्र पुत्रका अपमान, सदाचारकी शङ्का।

क्षत्रानी नहीं सहती थ है बात अशङ्का ॥ १४ ॥

सुर पूजके कुन्तोने इन्हें वीर किया है।
निज दूधका बस पाँचवाँ हिस्सा ही दिया है॥
तूने तो युगल मातुका सब दूध पिया है;
क्या इनसे भी शङ्का है तुझे, कैसा हिया है?

तेरे तो दशस अशके सम इनमें है कस-बल।

ललकारके बस युद्धके हित खेतमें अब चल ॥ १५ ॥

हमको भी समझ रक्खा है ज्यों पञ्चभतारी*।
कीचकने सभा-बीच जिसे लात थी मारी॥
था वीर दुशासनने पकड़ खींची थी सारी।
करता था जयद्रथ भी जिसे अपनी ही नारी॥

पंचाली-कसम होके अहङ्कार ह भारी।

क्षत्रानी सभी सूझती हैं पचभतारी ॥ १६ ॥

क्या हो गया तू वीरके बानेसे पतित आज ?
क्या डर गया तू देखके अर्जुनका विकट साज ?
कहलायेगा तू कैसे मनीपूरका महाराज ?
जब करता है तू जानके यह क्रूर-सरिस काज॥

क्षत्री हो नहीं, जिसमें न वीरत्व न बल हो।

वह आग नहीं, जिसमें न गर्मी न अनल हो ॥ १७ ॥

---

* पंचभतारी—द्रौपदी।

वह पुत्र नहीं, माताको अपवाद च ॥ ।
माताकी भी सुन गारी न कुछ जोशमें आवै ॥
निज शक्तिको दिखलाके न अपवाद मिटावै ।
उस दोष-लगैयाको न कुछ सीख सिखावै ॥

उस पुत्रसे संसार हो अ त शीघ्र ह। खाली ।
माताके सदाचार ख रक्खे न जो लाली ॥ १८ ॥

ललकार सुने क्षत्री तो यमको नहीं डरते ।
रण-खेतके हित नित्य विनय रामसे करते ॥
देखा नहीं तुझको कभी अभिमानसे जरते ।
इस भाँति किसी खेलसे रथ करके पकरते ॥

इस, आज मुझे अपना तू रण-खेल दिखा दे ।
इस वीरको अपवादके हित सीख सिखा दे" ॥ १९ ॥

माताके सुने बैन तो उत्साह भर आया ।
अर्जुनको सजग करके यही बैन सुनाया ॥
"निज पूज्य पिता जानके दर्शनको था आया ।
तुमने तो मेरी माँको बुरा दोष लगाया ॥

रण-खेल । द लवे नो तुम्हें आज दिखा दूँ ।
क्षत्रीका असल पुत्र हूँ, जारज हूँ, कि क्या हूँ ॥ २० ॥

जारजकी हूँ पहचान तुम्हें ठीक बताता ।
ह अपने अहङ्कारमें नित रहता है माता ॥
द अपने पिताको भी नहीं शीश नवाता ।
ननोंमे विनय-भाव नहीं भूलके

संसारके सब व्यक्तियोंमें दोष लगाना।
जारजका बताते हैं सुबुध लोग य बाना ॥ २१ ॥

निज नारिका भी उसको नहीं होता है विश्वास ।
चिढ़ता है विकट भावसे करनेहीसे परिहास ॥
नित खोजताही रहता है पर-छिद्रका आभास ।
दुनियाकी न है लाज, न ईश्वरका उसे त्रास ॥

छिप-छिपके किसी आड़में निज काम चलाना ।
जारजका बताते हैं सुबुध लोग य बाना ॥ २२ ॥

अत्यन्त मलिन सूझता है स्वच्छ सरोवर ।
सब मूर्ख नज़र आते हैं विद्वान, चतुर नर ॥
अपनेहीको है मानता गुण-बुद्धिका सागर ।
सुरपतिको नहीं मानता वह अपने बराबर ॥

आपत्तिमें धर बैठता है भेष जनाना ।
जारजका बताते हैं सुबुध लोग य बाना ॥ २३ ॥

बदलेमें सदा करता है उपकारके अपकार ।
निज गुरुहीपै कर बैठता है छलका विकट वार ॥
शुभ कर्मके उद्योगमें बनता तो है कर्त्तार ।
पर अन्त निबहता नहीं, रह जाता है झख मार ॥

सतियोंके सदाचारमें सन्देह जताना ।
जारजका बताते हैं सुबुध लोग य बाना ॥ २४ ॥

कहता तो है कुछ और, पै करता है सदा और ।
सर्वत्र सदा रखता नही एकसा निज तौर ॥

बस छलही कपटतक है सदा उसकी बड़ी दौर।
ईश्वरकी महाशक्तिपै करता नहीं कुछ गौर॥
निज भूलको औरोंके सदा शीश चढ़ाना।
जारजका बताते हैं सुबुध लोग य बाना॥ २५॥

निर्दोष असल क्षत्रीकी सुन लीजिये पहचान।
बल-बुद्धिको तज रखता है बस वंशका अभिमान॥
गुरु-जनका सदा करता है निज चित्तसे सम्मान।
वचनोंसे विनय-भावका हो जाता है अनुमान॥
बे-समझे किसीपर न कभी क्रोध जताना।
बुध लोग जनाते हैं असल क्षत्रीका बाना॥ २६॥

सम्मान-सहित करता है हर व्यक्तिका विश्वास।
गंभीर बना रहता है करनेपै भी परिहास॥
वह खोजता हर रोज़ नहीं पर-छिद्रका आभास।
संकोच है दुनियाका, तो ईश्वरका बड़ा त्रास॥
आता नहीं हीलेसे जिसे काम चलाना।
बुध लोग बताते हैं असल क्षत्रीका बाना॥ २७॥

अपनी ही तरह स्वच्छ-हृदय जानता सबको।
अपनेसे अधिक विज्ञ, चतुर मानता सबको॥
भरपूर सुगुण बुद्धिसे अनुमानता सबको।
सर्वत्र उचित रीतिसे सम्मानता सबको॥
आपत्तिमें भी करता नहीं छल न बहाना।
बुध लोग बताते हैं असल क्षत्रीका बाना॥ २८॥

उपकारका बदला भी है उपकारसे देता।
शिक्षकको वो रक्षकको है सम्मानसे सेता (१)॥
वह बनता है जिस वक्तमें जिस कार्यका नेता।
तब पूर्ण किये बिन कभी हारी नहीं देता (२)॥
सतियोंके सदाचारमें शंका न जताना।
बुध लोग बताते हैं असल क्षत्रीका बाना॥ २६॥

जो बात है कहता, उसे है करके दिखाता।
रखता है वचन-कर्ममें बस एकसा नाता॥
छल उसके निकट भूलके आने नहीं पाता।
बस, ईशकी इच्छासे है नित नेह लगाता॥
हो जाय कभी भूल तो निज भूल मनाना।
बुध लोग बताते हैं असल क्षत्रीका बाना॥ ३०॥

सबसे खरी पहचान असल क्षत्री-सुवनकी।
बतलाता हूँ, सौगन्ध है ऋषियोंके वचनकी॥
परवाह उसे रहती नहीं तनकी न धनकी।
परवाह उसे रहती है क्षत्रित्वके पनकी॥
जननीकी जनम-भूमिकी इज्ज़तको बचाना।
बुध लोग बताते हैं असल क्षत्रीका बाना॥ ३१॥

जननीके जनम-भूमिके हित जनको लगा दे।
जनसे न चले काम तो फिर धनको लगा दे॥

---

(१) सेता—सेवा करता।
(२) हारी नहीं देता—हार नहीं मानता।

घनसे न सरै काज तो फिर तनको लगा दे ।
तनसे भी न हो काज तो प्राणनको लगा दे ॥
माताका वचन-कर्मसे सम्मान बचाना ।
बुध लोग बताते हैं असल क्षत्रीका बाना ॥ २२ ॥

वह क्षत्री ही क्या, माताकी इज़्ज़त न रखावै ।
निज जन्म-धरा हेत न निज तनको लगावै ॥
प्राणोंका करै मोह, कुयश शीश चढ़ावै ।
अपवाद लगैयाको न कुछ सीख सिखावै ॥
मुझसे न सहा जायगा यह माताका अपवाद ।
मर जाऊँगा या बलसे करूँ आपको बर्बाद" ॥ २३ ॥
यों कहके विकट युद्धमें अर्जुनको पछारा ।
निज बलसे स्वमाताका कुयश-भार उतारा ॥
अर्जुनने कहा, "सत्य है तू पुत्र हमारा ।
वीरत्वके आकाशका अति शुभ्र सितारा" ॥
प्रभुमीरसे रहता है सदा 'दीप' मनाता ।
बभ्रू सा सुवन हो, सो अनूपी ही कमाता ॥ २४ ॥

रेणुका
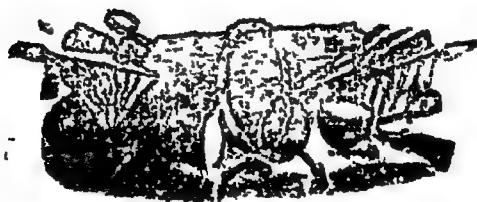
संसारमें यदि कोई है यश मानने लायक़।
संसारमें यदि कोई है गुरु जानने लायक़॥
संसारमें यदि कोई है कर चूमने लायक़।
संसारमें यदि कोई है पद पूजने लायक़॥
तो सत्य शपथ खाके हूं दिल मेरा बताता।
है व्यक्ति फ़क़त एक, जिसे कहते हैं 'माता'॥ १॥

दुनियामें अगर कोई है उपकार करैया।
तन-मनसे, वचन-धनसे कठिन कष्ट हरैया॥
निज प्रेमके पनसे न क़दम एक टरैया।
हों दोष हज़ारों तो न चित एक धरैया॥
अनुमानस, अनुभवसे है दिल मेरा बताता।
है व्यक्ति वही एक जिसे कहते हैं 'माता'। ॥ २

जगमें है अगर कोई करामात करैया।
ईसाकी करामातको भी मात करैया॥
बस, एक नज़र-मात्रसे मन मोद भरैया।
बस, एक वचन-मात्रसे सब दुःख हरैया॥
तो सत्य शपथ खाके बता देता हूँ भैया!
है एक वही व्यक्ति, जिसे कहते हैं 'मैया'॥ ३॥

निज प्रेमसे चाहै तो सुधा-धार बहा दे ।
संतप्त-हृदय जगको सुधा-सरमें नहा दे ॥
आकाशसे ला चाँदको सुत-करमें गहा दे ।
निज पुत्रको अमरेशासे धनि-धन्य कहा दे ॥
संसारमें यदि कोई है यों रवि जसैया ।
बस एक वही है, जिसे सब कहते हैं 'मैया' ॥ ४ ॥

निज क्रोधसे चाहै तो प्रलय-काल मचा दे !
संसारको आपत्तिकी भट्ठीमें तचा दे ॥
अभिमान भी अमरेशका इकदममें लचा दे ।
हर, विष्णु-विधाताको अँगुलियोंमें नचा दे ॥
संसारमें यदि कोई है यह शक्ति रखैया ।
बस, एक वही है, जिसे सब कहते हैं 'मैया' ॥ ५ ॥

ध्रुवने जो महा उच्च अचल थान है पाया ।
बस जान लो है माताके वचनोंका दिलाया ॥
यूरुपमें बुनापार्टने है नाम कमाया ।
समझो उसे माताकी कृपा-दृष्टिकी छाया ॥
दुनियामें सिकन्दरने जो सख्याति है पाई ।
यदि गौरसे समझो तो है माताकी दिलाई ॥ ६ ॥

अब आज सुनाता हूँ तुम्हें एक कथा और ।
समझो ता भला इसका ज़रा चित्तमें कर ग़ौर ॥
माताके वचन-बाणकी देखो तो ज़रा दौर ।
इक आनमें संसारका पलटा ही दिया तौर ॥

निज क्रोधसे संसारमें इक आग जलादी ।
'हय-हय' से विकट वंशकी सब शेखी भुलादी ॥ ७ ॥

यमदग्नि ऋषीश्वर जो थे तप-तेजके धारी ।
था 'रेणुका' रेणुककी सुता उनकी ही नारी ॥
जङ्गलमें रहा करते थे फल-मूल-अहारी ।
थी उनको सहज भावसे बस शान्ति ही प्यारी ॥

नर-वीर परशुराम सहित पांच थे बेटे ।
आश्रममें रहा करते थे निज वंश समेटे ॥ ८ ॥

उस वक्त था इक क्षत्रियोंका वंश विकट वीर ।
कृतवीर्य था उस वंशका महिपाल समर-धीर ॥
उस वंशका 'हय-हय' था बड़ा नाम भी गम्भीर ।
हर व्यक्ति था उस वंशका संग्राममें दलवीर ॥

उस वंशके आतंकसे मृगराज थे डरते ।
उस वंशके पशुओंपै कभी घात न करते ॥ ९ ॥

कुछ द्वेषसे यमदग्निको राजाने सताया ।
गो-वंश सकल छीनके आश्रमको लुटाया ॥
विनतीपै भी कुछ रेणुकाके ध्यान न लाया ।
निर्दोष ही ऋषि-राजको भी मार गिराया ॥

उस वक्त परशुरामजी आश्रममें नहीं थे ।
फल-मूलके हित वनमें गये दूर कहीं थे ॥ १० ॥

जब आये परशुराम तो यह हाल निहारा ।
बहती है पिता-कण्ठसे इक रक्तकी धारा ॥

माताके युगल नेत्र हैं, ज्यों अश्रु-पनारा।
आश्रमका तपोभाव भी छिन-भिन्न है सारा॥

हैं भग्न हवन-कुण्ड, कमण्डल भी हैं सब नष्ट।
आसन भी हैं छितराये हुए रक्तसे हो भ्रष्ट॥ ११॥

कुछ शिष्य जो गुरु हेत लपक रणमें लड़े हैं।
कुछ मारे गये, थोड़ेसे घायल ही पड़े हैं॥
कुछ भाग गये वनमें, जो कुछ मनके कड़े हैं।
वे अब भी स्वगुरु-पत्नीकी सेवामें खड़े हैं॥

समझानेसे भी शान्त नहीं रेणुका होती।
व्याकुल है, परशुरामका ले नाम है रोती॥ १२॥

लखि आये परशुरामको निज धीर सँभारा।
बस रोकली फौरन ही प्रबल अश्रुकी धारा॥
समझाके कहा, "पुत्र! लखो हाल हमारा।
राजाके प्रबल वीरोंने है इनको सँहारा॥

मैं अब तो जलाती हूं सती-धर्मसे काया।
तुम सोचो, कि राजाने तुम्हें कैसा बनाया॥ १३॥

मारा है, पिता माताको है राँड़ बनाया।
इस शान्ति-भवन ठौरको शोणितसे सिँचाया॥
बटुकोंको सताया, तुम्हें पितु-हीन बनाया।
सुख-शान्तिका दाता सभी गो-वंश छिनाया॥

क्या ऐसे अधम भूपसे डर जाओगे प्यारे?
तब कैसे कहाओगे भला मेरे दुलारे?॥ १४॥

निज राज्यका मद साधुजनोंको है दिखाता।
लघु बालकोंको जो है जनक-हीन बनाता॥
अबलाओंकी विनती नहीं कुछ ध्यानमें लाता।
है वस्तु पराई जो ज़बर्दस्ती छिनाता॥
तो ऐसे अधम भूपके आतंकसे डर जाय।
कहे रेणुकाका पुत्र, हरे! आज ही मर जाय॥ १५॥

हे राम! अगर तुममें पिता-भक्तिका हो लेश।
माताका वचन मानना समझे हो अगर वेश॥
गोवंशके छिन जानेका हो तुमको अगर क्लेश।
स्वीकार हो कुछ मानना निज धर्मका उपदेश।
तो ऐसे अधम वीरको कुछ सीख सिखा दो।
संसारको वीरत्वके आदर्श दिखा दो॥ १६॥

हे राम! अगर चाहते हो मुझको रिझाना।
परलोकमें प्राणोंको मेरे तोष दिलाना॥
ऋण मेरा अगर चाहते हो जल्द चुकाना।
संसारमें यदि चाहते हो नाम कमाना॥
तो ऐसे अधम वीरको कुछ सीख सिखा दो।
संसारको वीरत्वका आदर्श दिखा दो॥ १७॥

क्षत्राणीको रण-खेतमें पति-मृत्युका क्या शोक?
हथियारसे कट मरनेसे मिलता है अमर-लोक॥
स्वामीने तो एकत्र किया ही था सुयश-लोक।
उनके लिये सुरलोकमें जानेकी नहीं रोक॥

पर मेरे तो चितको है यही शोक सताता।

कह ले न कोई रेणुका थी क्रूरकी माता ॥ १८ ॥

तर्पण मुझे दरकार नहीं तीर्थके जलका।

पिण्डा नहीं दरकार गया-धामसे थलका॥

करना न कभी ध्यान मेरी ओर टहलका।

आतङ्क सुना चाहती मैं तेरे हूँ बलका॥

मंजूर अगर हो मेरे प्राणोंको रिझाना।

तो मेरी चिता रक्तकी धारासे बुझाना ॥ १९ ॥

तर्पण हो मेरे नामसे यदि तुमको कराना।

'हय हय'से विकट वंशके शोणितको बहाना॥

श्रद्धासे अगर श्राद्धसे हो पिण्ड चढ़ाना।

रण-खेतमें उस वंशके मुण्डोंको लुढ़ाना॥

मंजूर मेरे नामपै हो विप्र जिमाना

उस वंशको कर बोटियाँ गिद्धोंको खिलाना ॥ २० ॥

निज रक्तके आधारसे है तुमको रचाया।

निज दूधके आधारसे है तुमको जिलाया॥

निज गोदके आधारसे है तुमको बढ़ाया।

निज सीखके आधारसे है वीर बनाया॥

इन बातोंके बदले हो अगर मुझको रिझाना।

रिपु-रक्तसे यह जलती चिता मेरी बुझाना" ॥ २१ ॥

इक्कीस दफा पीटके निज हाथसे छाती।

निज पुत्र परशुरामको यों बैन सुनाती॥

होती है सती रेणुका पति-प्रेममें माती।
संसारकी आँखोंको है यह दृश्य दिखाती॥
पति-शोकमें वीरा नहीं निज तनको जलाती।
जल-जलके है रिपु-वंशमें इक आग लगाती॥ २२॥

इस वीर सुमाताके वचन मान परशुराम।
संसारको है ज्ञात किया कैसा विकट काम॥
उस वंशका इक्कीस दफ़ा मेट दिया नाम।
माताको वचन-शक्तिका बस देख लो परिणाम॥
माता ही अगर चाहें तो संसार सँभल जाय।
डरपोंकका डर एक झपाटेमें म"ल जाय॥ २३॥

हे राम! दया धाम! कृपा-कोर इधर हो।
ऐसी ही सुमातासे भरा सबहीका घर हो॥
हर पुत्र परशुराम सरिस वीर प्रवर हो।
दुष्टोंके दबानेमें जिसे नेक न डर हो॥
दिन हिन्दके फिर जायं, बजे मोद-बधाई।
बस 'दीन' के मनमें है यही बात समाई॥ २४॥

बिंदुला

आलस्य-भरे चित्तको उत्साह दिलाना।
कायरको निमिष-मात्रमें वर वीर बनाना॥
अत्यन्त विलासीसे महत्कार्य कराना।
क्रूरोंसे भी निज वंशकी मर्याद रखाना॥
वह शक्ति अगर है कहीं इस मर्त्य-भुवनमें।
तो मित्र प्रवर! पाओगे माताके वचनमें॥ १॥

जननीके वचन क्रूरको हैं शूर बनाते।
भोगीको, विलासीको हैं वैराग सिखाते॥
कायरसे पलकमें हैं घमासान कराते।
आलसको हटा मनमें हैं उत्साह बढ़ाते॥
जादू हैं, छलावा हैं, महामायाके कन हैं।
हैं मन्त्र महा सावरी या मातु-वचन हैं॥ २॥

सौवीर सहित सिन्धुका(१) इक राज्य था प्राचीन।
था छोटा मगर आदिसे वह राज्य था स्वाधीन॥
बिँदुला थी उसी राज्यकी महरानी स्वपति-हीन!
सञ्जय था सुवन एक, महा क्रूर (२) विषय-लीन॥

---

(१) 'सौवीर' सहित 'सिन्धु' अर्थात् सिन्धु-सौवीर।

(२) क्रूर—नामर्द, डरपोक।

बिंदुलाही किया करती थी सब राज्यकी संभार।
संजयके महलमें थी विलासोंहीकी भरमार॥ ३॥
जिस शीशपै हो राज-मुकुट शान दिखाता।
जिस शीशपै हो छत्र सदा रोब जमाता॥
ढुर-ढुरके चँवर जिसकी बलायें हो हटाता।
बहुतोंके जिगर-जान हो जिस शीशके त्राता॥
उस सिरमें विषय-वासनाका वास अजब है।
कुल, देश, प्रजावर्गके हित घोर ग़ज़ब है॥ ४॥
जिस हाथमें इक देशके सम्भारकी हो बाग।
जन, धनकी, प्रजा-प्राणकी जिस हाथमे हो लाग॥
शोभित हो रजादण्डसे जो हाथ महाभाग।
लिपि जिसकी विधाताहीकी लिपि होती है बेदाग़॥
उस हाथमें आलस्यका बसना ही अजब है।
कुल, देश, प्रजावर्गके हित घोर ग़ज़ब है॥ ५॥
हाँ! राजमुकुट देखके यह ख्याल न करना!
आनन्दसे भरना है, इसे शीशपै धरना॥
नग-ज्योति सहित स्वर्णकी आभाका उभरना।
धारकके महाप्राणकी है ज्योतिका जरना॥
देखनेहीको सुख देती है रत्नोंकी चमाचम।
राजाके लिये है वही आपत्ति धमाधम॥ ६॥
संजयकी विषय-वासना, आलस्य ढिलाई।
हर ओर निकट, दूर लगी पड़ने सुनाई॥

इक भूप पड़ोसीने नई सैन सजाई।
'बम' बोलके बस ठान दी संजयपै चढ़ाई॥

...भाव पड़ोसीका, न दुर्भाग्य, न संयोग।
बस, इसको समझ लीजिये कर्मोंका अटल भोग॥ ७॥

जिस व्यक्तिके मत्थे हो अमित जीवोंका सब भार।
जिस व्यक्तिकी इच्छा हो अमित लोगोंको दरकार॥
कहते हों अमित लोग जिसे मानसे सरकार।
जो होवै प्रजावर्गके धन-प्राणका रखवार॥

... व्यक्तिका आलस्य अनुत्साह, अनाचार।
उन सबके लिये होता है अपत्तिका भण्डार॥ ८॥

क्षत्री था, युवा बैस थी, था खून भी तनमें।
पर, भोग-विलासोंने किया वास था मनमें॥
भाता था उसे रहना सदा रङ्ग-भवनमें।
इस हेतु न जा सकता था उत्साहसे रनमें॥

संसारमें फल भोग-विलासोंका निहारा।
कर देते हैं भोगीको महा नीच नकारा॥ ९॥

हर ओरसे जब शत्रुने गढ़ आनके घेरा।
बिँदुलाको लगा सूझने हर ओर अँधेरा॥
देखा, कि प्रजापर है महा कष्टका फेरा।
इस वंशकी मर्य्यादमें लगता है दरेरा॥

निज पुत्रको समझानेके हित पास बोलाया।
अज्ञान-तिमिर बैन-प्रभाकरसे हटाया॥ १०॥

"हे पुत्र ! युवाकाल विलासोंमें बिताना !
घर आये हुए शत्रुसे यों आँख छिपाना ॥
दिन-रात सखा सङ्ग लिये रङ्ग मचाना ।
ललकारके सुननेपै न हथियार उठाना ॥
ऐसा तो नहीं मैंने सुना क्षत्रीका बाना ।
यों करना तो है वंशकी मर्य्याद मिटाना ॥ ११ ॥

घर रहनेसे कोई भी अमर-पद नहीं पाता ।
रण करनेसे हर व्यक्ति भी मारा नहीं जाता ॥
यश और कुयश, हानि तथा लाभका दाता ।
जीवनका तथा मृत्युका कर्त्ता है विधाता ॥
यह सोच कि क्षत्री नहीं निज धर्मसे डिगते ।
यमराज भी आजायें तो रणसे नहीं भगते ॥ १२ ॥

निश्चय है, कि हर व्यक्ति किसी रोज़ मरैगा ।
है काल अटल, तेरे न टारेसे टरैगा ॥
संसारके भोगोंसे कभी जो न भरैगा ।
कर्त्तव्यका अवसर भी सदा ही न परैगा ॥
बस, सोच-समझ ले, कि तेरा धर्म है क्या आज ?
कर्त्तव्यको कर रख ले मेरे दूधकी तू लाज ॥ १३ ॥

क्षत्रित्व तो इस कोटके कलसोंपै धरा है ।
वीरत्वका अभिमान मेरे पयमें भरा है ॥
उत्साहसे भरपूर मेरा रक्त खरा है ।
कर्त्तव्यके पालनमें न आलस्य ज़रा है ॥

फिर पुत्र मेरा होके न रण-साज सजेगा।
जननियोंमें मेरा बहुत दूध लजेगा॥ १४॥

बस, राज्य गया जान, जो आलस्य करेगा।
सुख-भोग मिटा जान, जो वैरीसे डरेगा॥
मर्य्याद मिटी जान, जो अरि करमे पड़ेगा।
क़ैदी सा बना जेलमें दिन-रात सड़ेगा॥

उत्साहसे रण-भूमिमें यदि युद्ध करेगा।
बिलसेगा धरा-धाम कि, सुर-धाम भरेगा॥ १५॥

उत्साह किया रामने कपि-दलको जुटाया।
उत्साहसे वारीशको इक दममें बँधाया॥
लङ्काके विकट कोटको इक दममें ढहाया।
रावणसे प्रबल शत्रुको यम धाम पठाया॥

वीरोंका त उत्साह महामन्त्र ही जानो।
उत्साहको दासो है सकल सिद्धियाँ मानो॥ १६॥

ऋषिराज सवन वीर परशुरामकी गाथा।
पढ़-सुनके ठनकता भी नहीं तेरा है माथा?
सामान, सखा, सैन्य, बता साथमें क्या था?
बस, चित्तमें इक युद्धका उत्साह भरा था॥

उत्साहके बल देख तो क्या नाम कमाया।
इक्कीस दफ़ा वैरियोंको मार गिराया॥ १७॥

उत्साह ही इस जगमें सफलताका पिता है।
उत्साह ही वैरीके लिये जलती चिता है॥

उत्साह ही माधुर्यमें स्वादिष्ट सिता (१) है।
उत्साहका इस जगमें अजब ढंग किता (२) है॥
उत्साह पै रहता है सदा [illegible] काय।
वीरोंका सुकृत्योंने है यह जोग लखाया॥ १८॥

कर्त्तव्यका पालन ही है बस धर्म कहाता।
कर्त्तव्यका पालन ही है सब पुण्यका दाता॥
कर्त्तव्यका पालन ही है सुरलोक दिलाता।
कर्त्तव्यका पालन ही है संसारका त्राता॥
कर्त्तव्यके पालनमें जो है ढील दिखाता।
वह मानो है ससारकी बुनियाद ढहाता॥ १९॥

ससारसे हर व्यक्ति अकेला ही है आता।
फिर अन्त समय जगसे अकेला ही है जाता॥
कर्त्तव्यके पालनसे जो है पुण्य कमाता।
वह पुण्य ही दो रूपसे है मोदका दाता॥
घर धर्म-पुरुष सगमें सुरलोक सुधार।
यश-रूपसे ससारमें प्रख्याति पसारै॥ २०॥

कर्त्तव्यके पालनसे उभय लोकका आनन्द।
लेते न बनै जिससे उन्हें जानो महा मन्द॥
बस, अब न विषय वसनाके छोड़ दो छल छन्द।
कर्त्तव्यके पालनसे बनो सच्चे अक्लमन्द॥

---

(१) सिता—चीनी।
(२) किता—तार।

बल देतो, उठो देरके करनेका नहीं काम ।
वैरीको भगा मारे ले आकर का विश्राम" ॥ २१ ॥

ये मातु-वचन सुनते ही संजयको हुआ ज्ञान ।
बस, जाग उठा चित्तमे क्षत्रित्वका अभिमान ॥
निज सैन्य सजा शत्रुसे जाकर किया घमसान ।
उत्साहके कर्त्तव्यके साथी बने भगवान ।

सब सैन्य-सहित शत्रुको यों मार भगाया ।
ज्यों भानु लखे भगती है तम-तामसी माया ॥ २२ ॥

संजयसे विलासीको महावीर बनाना ।
आलस्य-भरे चित्तमे उत्साह भराना ॥
कायरको, कुमति, क्रूरको कर्त्तव्य सिखाना ।
निज वंशके अभिमानको गिरनेसे बचाना ॥

ये कृत्य कठिन सकता है कर कौन विधाता ?
अनुभव है मेरा कहता, कि बस एक 'सुमाता' ॥ २३ ॥

हे राम ! दयाधाम ! शरण-पाल अनाखे ।
हम सबको बना दीजिये कर्त्तव्यके चोखे ॥
इस हिन्दने आलससे बहुत खाये है धोखे ।
सम्पत्तिको जाती है विषय-वासना सोखे ॥

मैं प्रगट कीजिये विदुला-सी सुमाता ।
सिखलाके बना दे हमें कर्तव्यका ज्ञाता ॥ २४ ॥

दुर्बल देवी

हर हिन्दके बालकको जो हो वीर बनाना ।
सन्तानको कर्त्तव्यका हो ज्ञान कराना ॥
आलसको छुटा, भरना हो उत्साह-खज़ाना ।
कायरको धराना हो जवाँमर्दका बाना ॥
मंजूर हो निज देशकी मर्य्याद रखाना ।
तो हिन्दकी माताओंके गुण गाके सुनाना ॥ १ ॥

माताओंके गुण-गानका अभ्यास भुलाना ।
है उनकी सुभग कीर्तिमें इक दाग़ लगाना ।
इस पापके फल-भोगकी तादाद बताना ।
है शक्तिसे बाहर, सही अन्दाज़ लड़ाना ॥
माताओंके गुण-गान भुलानेका कुफल है ।
हर व्यक्ति, जिसे देखो, व कायर है निबल है ॥ २ ॥

हे हिन्द-निवासो ! ज़रा इस ओर निहारो ।
धर ध्यानमें इस मेरे कथनको तो विचारो ॥
यदि सत्य हो कुछ इसमें तो ले चित्तमें धारो ।
यदि झूठ जँचै, जाते हो जिस पंथ, सिधारो ॥
तुम भूल गये जबसे सुमाताओंका गुण-गान ।
वीरत्वने उस दिनसे किया हिन्दसे प्रस्थान ॥ ३ ॥

भारतकी वही भूमि, वहीं वायु, वही जल।
है अन्न वही और वही फूल, वही फल॥
गङ्गा भी वही, सिन्धु वही, विन्ध्य-हिमाचल।
क्या हेतु, मनुष्योंमें नहीं है वही कस-बल?
बैसालसे, चौंड़ासे, पिथौरासे, शिवासे।
आल्हासे, समरसीसे कहाँ वीर हैं लासे? ॥४॥

माताओंके गुण-गान जो होने लगें घर-घर।
फिर पैदा हों इस हिन्दमें वैसे ही प्रबल नर।
बल-सीम महा भीमसे, अर्जुनसे धनुर्द्धर।
हों सत्यव्रती राय युधिष्ठिरसे भी बढ़कर॥
सहदेवसे विद्वान् हों, सुन्दर हों नकुलसे।
हों भीष्मसे पनपाल लसें कीर्त्ति अतुलसे॥५॥

देवल सी सुमाताका सुनाऊँ तुम्हें गुण-गान।
निज पूतोंको जिसने था बनाया महा बलवान॥
निज धर्मका पुत्रोंको सिखाया था भला ज्ञान।
वीरत्व लखे जिनका ज़माना भी था हैरान॥
आल्हा था बड़ा वीर तो ऊदल था विकट वीर।
हाथोंहीसे शेरोंको पकड़ डालते थे वीर॥६॥

विधवा हुई देवल तो युगल बाल थे नादान।
कर्त्तव्यका था उनके दिलोंमें न उचित ज्ञान॥
मारा है पिता किसने, किया किसने है हैरान?
घर-बारका सब लूट लिया किसने है सामान?

इन बातोंकी आल्हाको, न ऊदलको ख़बर थी ।
बस, खेलना खाना ही फ़क़्त मनकी लहर थी ॥ ७ ॥

देवल थी चतुर, बच्चोंको निज हाथ खेलाती ।
नहलाती थी पर भूमिपै थी नित्य लेटाती ॥
निज साथ ही रखती थी, जहाँ आप थी जाती ।
नित प्रेम-सहित रातको निज सङ्ग सुलाती ॥

वीरोंके चरित रातको किस्सोंमें सुनाती ।
कुछ लानेके मिस दूर अँधेरेमें पठाती ॥ ८ ॥

निज साथ लिये जाके पहाड़ों पै घुमाती ।
लँघवाती कभी नाला, कभी खोह झँकाती ॥
धावासे कभी घाटी पै चढ़नेको बताती ।
मिस करके जड़ी कोई शिखरपरसे मँगाती ॥

इस भाँति सदा खेलमें वीरत्व सिखाती ।
क्षत्रीका परम धर्म सिखा, वीर बनाती ॥ ९ ॥

ले जाके अखाड़ेमें पटा-बाँक सिखाती ।
भालेके, कभी सैफ़के सब हाथ बताती ॥
वन-जीवोंका आखेट चतुरतासे कराती ।
धनु-बाणका अभ्यास भी खुद करके दिखाती ॥

बिछुआको, कटारीकी, करावीनकी घातें ।
निज हाथसे कर-करके सिखाती भली बातें ॥ १० ॥

घोड़ेकी सवारीके सकल मर्म बताये ।
हाथीके चलानेके भी सब तर्ज़ सुझाये ॥

तेगाके, तवर, तीरके सब दाँव सिखाये।
रण-खेतमें रथ हाँकनेके ढङ्ग दिखाये॥
सिखलाया डमरू-व्यूह, गरुड़-व्यूह बनाना।
गज-व्यूह, चक्र-व्यूहसे सेनाका लड़ाना॥ ११॥
सब व्यूहोंका फिर तोड़ भी पुत्रोंको बताया।
शरपंजरी करना भी सहित प्रेम सिखाया॥
नगफाँस, उरगफाँससे बचना भी सुझाया।
विष-बाल (१) विकट फाँससे बचना भी लखाया॥
फिर मोरचाबन्दी व क़िलाबन्दी सिखाई।
किस भाँतिसे होती है बुरजबन्दी बताई॥ १२॥
सिखलाया गुणी लोगोंका सम्मान भी करना।
बिगड़े हुए हथियारको फिर शोधके धरना॥
सुर, विप्र, गऊ, भूमिके हित शत्रु कतरना।
निज वंशकी मर्य्यादसे तिल-मात्र न टरना॥
जननीकी जनम-भूमिकी मर्याद बताई।
वीरत्वकी हर बात सहित-नेह सिखाई॥ १३॥
जब पुत्र हुए ज्वान तो सब भेद बताया।
माँड़ाके करिङ्गाका कपट-कार्य सुनाया॥
चतुराईसे निज चित्तका सब भाव जताया।
उत्साह दिलानेको वचन एक सुनाया॥

---

(१) विषबाल—विष-कन्या।

"जो बापका बदला न ले, वह पूत नहीं है ।
दबता है जो निज धर्ममें मज़बूत नहीं है ॥ १४ ॥

नौ मास असह भार जो माता है चलाती ।
निज रक्तको कर स्वेत है दो वर्ष पिलाती ॥
खुद कष्ट अमित सहती है, कर वज्रकी छाती ।
चन्दनसा समझ प्रेमसे मल-मूत्र उठाती ॥

उस मातुका जिस पूतने जियरा न जुड़ाया ।
हा खेद ! वह संसारमें फिर काहेको आया ? ॥ १५ ॥

क्षत्रीका सकल धर्म तुम्हें मैंने सिखाया ।
रण-खेलमें अत्यन्त चतुर तुमको बनाया ॥
अब ज्वान हुए, समझो तो अपना व पराया ।
सानन्द रखै तुमको भवानी महामाया ॥

इतनाही तो हूँ चाहती लो बापका बदला ।
यश-नीर मेरे स्वामीका हो जाय न गंदला ॥ १६ ॥

जो पूत न निज मातुके मन मोद बढ़ावै ।
निज पितुकी न कुल-कीर्ति ध्वजा ऊँचे चढ़ावै ॥
नौ मासका ऋण, मोल न दुधवाका चुकावै ।
कायर हो पिता-वंशमें कुछ दाग़ लगावै ॥

उस पुत्रका होना है न होनेके बराबर ।
बस, जान लो उस पुत्रको भू-भार सराउर" ॥ १७ ॥

यों कहके वचन पुत्रका उत्साह बढ़ाया ।
रण-साज सजा भोड़ाको रण-हेत पठाया ॥

सुत-प्रेमसे खुद साथमें जा हाथ बँटाया ।
मौँड़ाके करिंगाको ठिकाने ही लगाया ॥
इस भाँतिसे निज पूतोंका यश जगमें अचल कर ।
निज नाम अमर कर बसी सुर-धाममें चलकर ॥ १८ ॥

माता है वही पुत्रोंको कुल-धर्म सिखावै ।
दुनियामें अचल कीर्त्ति कमाना ही बतावै ॥
पुत्रोंका असल छोह न मनमें कमी लावै ।
निज धर्ममें रत होनेका उत्साह बढ़ावै ॥
पुत्रोंको न होने दे कमी धर्मसे अनजान ।
बस, ऐसी सुमाताओंको यश देता है भगवान ॥ १९ ॥

जिस माताने निज पुत्रको निज धर्म सिखाया ।
उसने ही है संसारमें शुभ नाम कमाया ॥
पुत्रोंको भी दुनियामें विभव-भोग कराया ।
शुभ कीर्त्ति सहित वंशका सम्मान बढ़ाया ॥
यश-पुष्प हैं दुनियामें अभी उनके महकते ।
हैं नाम अमर उनके सितारोंसे चमकते ॥ २० ॥

ध्रुव-मातु 'सुनीती'का * सुभग नाम सुमिर लो ।
मन्दालसाका† नाम भी निज ध्यानमें धर लो ॥

---

* 'ध्रुव' का सचित्र जीवन-चरित्र हमारे यहाँ छप रहा है, जिसमें उनकी माता 'सुनीति' के भी अचल पातिव्रत्यका हाल दिया गया है ।

† 'मन्दालसा' की सम्पूर्ण आदर्श जीवन-कथा हमारे यहाँसे २० रंग-बिरंगे सुन्दर-सुन्दर चित्रोंसे सुशोभित होकर 'महासती मदालसा'के नामसे निकली है । दाम १।।) रु०, रंगीन जिल्द २), सुनहरी रेशमी जिल्द २।)रु०

सह प्रेम सुमित्राको नमस्कार भी कर लो।
कुन्ती-सी सुमाताको सहस बार खबर लो॥
ऐसीही सुमाताओंने भारतको बढ़ाया।
खुद कष्ट सहे, पुत्रको निज धर्म पढ़ाया॥ २१॥

माताकीही शिक्षासे हुए बुद्ध यशोधर।
माताकीही शिक्षासे बढ़ा वीर सिकन्दर*॥
माताकीही शिक्षासे विजेता बना बाबर†।
माताकीही शिक्षा भी शिवाको हुई हितकर॥
ऐसीही सुमाताएँ जो चाहें सो धरें कर।
जैसा ही चहें, वैसा करें पुत्रको गढ़कर॥ २२॥

देवलने रँड़ापेमें भी हिम्मत नहीं हारी।
धर वीर बना पूतोंका निज कीर्ति पसारी॥
बदला लिया पति-शत्रुसे कहलाई सुनारी।
यों दी है मदद हिन्दके वीरत्वको भारी॥
इस हेतु है देवलको नमस्कार हमारा।
ऐसीही सुमाताएं हैं भारतका सहारा॥ २३॥

---

*वीर 'सिकन्दर'का सचित्र जीवन चरित्र हमारे यहाँ १।।=.में मिलता है।
† बादशाह 'बाबर' का जीवन-चरित्र हमारे यहाँ ।= में मिलता है।

पांचवाँ रत्न

वीर-पत्नी

इस हिन्दमें हो गुजरी हैं कुछ ऐसी भी नारी।
मर्दोंकी तरह युद्ध किये हैं बड़े भारी॥
स्वामीके भी मर जाने पै साहस नहीं छोड़ा।
निज धर्मके हित रणसे कभी मुंह नहीं मोड़ा॥

भगवानदीन।

रायमती

कोटाके निकट एक घने बनका निवासी
इक रायचरण व्यक्ति था आखेट-विलासी ॥
पत्नी थी यही रायमती स्वर्ण-लता सी।
कन्या थी सुभद्रा, जो थी इक चन्द्रकला सी ॥
आखेटसे करता था य परिवार गुजारा।
इसके ही सुयश-गानपै है लक्ष्य हमारा ॥१॥

यह रायमती देहसे नाजुक थी, निवल थी।
पति-देवसे सावित्री सरिस प्रीति अटल थी ॥
सादी थी रहन, अपने स्वभावोंमें निछल थी।
गृह-कार्यमें थकती न थी, मानों कोई कल थी ॥
पर क्रोध-समय देखा तो चण्डीसे प्रबल थी।
उत्साह से भरपूर थी, आखेट-कुशल थी ॥२॥

होता कभी अस्वस्थ जो पति, आप ही जाती!
जंगलके सघन मार्गोंमें रंचक न डराती ॥
बन्दूक़, कभी सांग, कभी तीर चलाती!
निज करके अचल लक्ष्यसे आखेट गिराती ॥
फिर उसको लिये कोटाके बाजारमें जाती।
आखेटकी बिक्रीहीसे गृह-कार्य चलाती ॥३॥

कहती न थी, पर चित्तमें रखती थी यही चाह ।
हो स्वामिको यदि व्याघ्रके आखेटका उत्साह ॥
राजा हो प्रजा, मान भी करने लगे नर-नाह ।
होने लगे परिवारका अच्छी तरह निर्वाह ॥
हो मेरे सुहागका सम्मान भी भारी ।
और मैं भी गिनी जाने लगूं वीरकी नारी ॥४॥

इसके लिये कुल-देव सदा अपने मनाती ।
एकान्तमें विनती यही दुर्गाको सुनाती ॥
मिलता जो कहीं साधु, उसे शीश नवाती ।
"मनसा फल" आशीष कभी उससे जो पाती ॥
दे उसको चरण-रजमें निज शीश चढ़ाती ।
आनन्दसे निज देहमें फूली न समाती ॥५॥

जब रायचरण शामको आखेटसे आता ।
आखेटका सब हाल स्वपत्नीको सुनाता ॥
आखेटकी बिक्रीसे जो धन-अन्न था लाता ।
सब प्रेम सहित हाथमें पत्नीके गहाता ॥
दूनाके [illegible] जब बात बताता ।
उस रोज स्वपत्नीको अधिक मोदमें.

जिस रोज सुनाता किसी लघु जन्तुका संहार ।
तब रायमती देती उसे प्रेमकी फटकार ॥
"लघु जन्तुके आखेटसे शोभा नहीं सरकार !
वीरत्वको [illegible] है करै वीरहीपर वार ॥

हारीत, लवा, क्रौंच कबूतरके शिकारी।
पा सकते नहीं जग में नाम ना भारी ॥७॥

मृग-बाल, शशी, पक्षी तथा मीनका संहार।
आखेट कहाता है अधम जान लो सरकार!
बिग, रीछ, हिरण, बेभा, श्वना शल्लकीपै वार।
आखेट य मध्यम है, सुनो प्राण के आधार!
घड़ियाल, मगर, बाघ, सुअर मारके लाना।
उत्तम है, शिकारोंमें, यही वीरका बाना" ॥८॥

जब पाती सुअवसर तभी यह बात सुनाती।
निज नाथके उत्साहको इस भांति बढ़ाती॥
स्वामीके, भी था चित्तमें यह बात समाती।
"नारी तो है, पर बात तो अच्छी है बताती॥
मिलजाय सुअवसर तो करूं बाघका आखेट।
प्यारी हो मुदित, दूर हो दारिद्रकी दरपेठ" ॥९॥

कुछ काल गये कोटामें सम्वाद य पाया।
नज़दीकके जंगलहीमें इक बाघ है आया॥
चौगिर्दके गांवोंमे उपद्रव है मचाया।
हर ओर किसानोंमें महा शोक है छाया॥
दस-बीस किसानोको है उस बाघ ने खाया।
दस-पांच आखेटियोंको ठिकाने हैं लगाया ॥१०॥

कोटाके धराधीशने डौंड़ी है पिटाई।
"देगा जो प्रजा मेरीको इस भयसे रिहाई॥

वह चाहे जो हो, भील, कि चत्री, कि कसाई।
धन, मान दे मानूँगा उसे निज सगा भाई॥
मारेगा जो इस बाघको मानूँगा उसे वीर।
सेनामें सुपद देके करूँ मान भी गम्भीर" ॥ ११ ॥

सुनते ही समाचार हुआ मोद तो भारी।
पर रायमतीने न कोई बात उचारी॥
दिन दूसरे आखेटकी लख पूरी तयारी।
कहने लगी निज स्वामीसे "यह काम है भारी॥
हो हुक्म, मदद करनेको मैं साथ चलूँ नाथ!
नारी भी तो पतिकाही हुआ करती है इक हाथ! ॥ १२ ॥

जो साथ नहीं लेते, तो घर शामतक आना।
उस वनमें उचित ही नहीं है रात बिताना॥
मिल जाय जो बघवा तो प्रथम हाँक सुनाना।
ललकार बिना उसपै न हथियार चलाना॥
वीरोंका नहीं काम, कि चुपचाप करैं वार।
बन्दूक य लो, साँग य लो, लो य है तलवार" ॥ १३ ॥

हथियार लिये रायचरण वनको सिधारा।
आशाकी उमङ्गोंने था सब भयको संहारा॥
अरमान य था "आज जो इस बाघको मारा।
खुल जायगा बस कलहहीसे भाग्य हमारा॥
धन प्यारी सुभद्राके विवाहार्थ धरूँगा।
सम्मानसे घरवालीके मन मोद भरूँगा।" ॥ १४ ॥

खाता हुआ इस भाँतिके आशाके बताशा।
हिम्मतसे भगाता हुआ भय और निराशा॥
लखता हुआ हर ओर सघन वनका तमाशा।
जाता था चला. मनमे सफलताकी थी आशा॥
आशाके कुसुम होते हैं अत्यन्त मनोहर।
आशाही बना देती है वीरोंको यशोधर॥ १५॥
आशाहीसे संसारके सब काम हैं चलते।
आशा न अगर होती तो सब हाथ ही मलते॥
वीरोंके तो आशाहीसे है काम निकलते।
क्रूरोके निराशाहीसे हैं चित्त दहलते॥
क्रूर व्यक्तिको यह चाहिये आशाको न त्यागे।
उत्साहसे निज धर्मके पालनसे न भागे॥ १६॥
रस्सीसे बँधा साथमें बकरा भी लिये था।
बन्दूक-भरी कन्धे पै, कुछ डर न हिये था॥
हर ओर चतुर नरकी तरह दृष्टि किये था।
हर पातके खड़केकी तरफ कान दिये था॥
चलता हुआ जा पहुँचा जहाँ खड्ग था इक ओर।
थी राह बहुत तङ्ग, इधर वन था महा घोर॥ १७॥
इतनेमे अचानकही गिरा बाघ जो आकर।
धक्केसे शिकारी तो गिरा खड्डमें जाकर॥
बेहोश हुआ पत्थरोंकी टक्करें खाकर।
बस, बाघने भी राह ली बकरेको उठाकर॥

इस भाँति बचे प्राण, मगर चोटसे बेहोश।
दिन-रात पड़ा रह गया उस खड्डमें खामोश ॥१८॥

बस, शामको जब रायचरण घर नहीं आया।
तब रायमती-चित्तमें कुछ सोच समाया॥
भयभीत हुई, समझी कि "या बाघने खाया?
या बाघको बध हर्षसे कोटाको सिधाया?

हे मातु कृपाधाम! भवानी महामाया!
प्राणेशकी रक्षा करो, लो यह मेरी काया" ॥ १९ ॥

इस भाँति बड़े खेदसे वह रात बिताई।
'कर्त्तव्य है क्या' सोचते निद्रा नहीं आई॥
भोजनकी तो क्या, जलकी भी सूरत न सोहाई?
कन्याको भी कुछ थोड़ी पँजीरी हां फँकाई॥

कन्धे पै तो बन्दूक थी, कन्या थी कमरपर।
तड़केही दिखाई पड़ी जङ्गलके भरपर ॥ २० ॥

बन्दूक वह गज गोलीको चबेन सा चबाती।
टोपीकी चिलम, दारूकी दम खींच लगाती॥
ठोंकते ही जीवोंके जिगर भूनके खाती।
थी नार बड़ी, खाते कभी भी न अघाती॥

मुड़ती हुई जिस ओर, विधाता था उसे बाम।
उँगलीके इशारेहीसे कर डालती बस काम ॥ २१ ॥

जा पहुँची जहाँ बाघका रमना था भयंकर।
और खोजने स्वामीके लग काटने चक्कर॥

वृक्षोंके घने झुरडोंमें फेंके कभी पत्थर ।
माँदोंमें, गुफाओंमें कभी झाँकती झुककर ॥
इस ओरसे उस ओर तलक टेर लगाई ।
सूरतको कहै कौन, कुछ आहट भी न पाई ॥ २२ ॥

क्लेशित हुई जब प्यासके और भूखके मारे ।
तब एक जगह बैठ गई ताल किनारे ॥
कुछ सोचके जल-देवके दो घूँट उतारे ।
फिर दूध पिला कन्याको ये बैन उचारे ॥
"बेटी सोजा, सुभद्रा! तेरी रक्षा करें भगवान् ।
मैं ढूँढ़ूँ तेरे बापको, या बाघके लूँ प्रान" ॥ २३ ॥

कन्याको वहीं छोड़के बन्दूक उठाई ।
इतनेहीमें इक झाड़ीसे डिंड़कार सी आई ॥
जैसे कि मृगी कोई हो च.ताकी सताई ।
बस, रायमती सुनतेही उस ओरको धाई ॥
देखा, कि मृगी छोपे हुए बाघ है बैठा ।
यह लखतेही बन्दूकके घोड़ेका उमैठा ॥ २४ ॥

छतियाई जो बन्दूक तो हिम्मतने भी की 'हाँ' ।
चिल्लाई मृगी फिर भी उधर एक दफा 'डाँ' ॥
इस ओरसे बन्दूक भी बोली कि 'अररधाँ' ।
'डाँ धाँ' हीके सँग बाघ भी चिल्लाया 'घररघाँ' ॥
कुछ कूद-उछल करके यमालयको सिधारा ।
बस, रायमती बोल उठी 'वह लखो मारा' ॥ २५ ॥

वस, बाघ-मृगी छोड़के कन्याको उठाया ।
नज़दीकके इक ग्रामके दिश पैर बढ़ाया ॥
उस गाँवमें जा अपना सकल हाल सुनाया ।
सुन हाल ज़िमींदारने लोगोंको बोलाया ॥
'इस नारिके संग जाये, उठा बाघको लाओ ।
इस नारिके स्वामीका भी कुछ टोह लगाओ ॥ २६ ॥'

सुनते ही किसानोंने बड़ा हर्ष मनाया ।
फौरन ही वहाँ जाके मरा बाघ उठाया ॥
मिल सबने पता रायचरणका भी लगाया ।
पीड़ासे कँहरता हुआ इक खड्डमें पाया ॥
इसको भी उठा प्रेमसे सब ग्राममें आये ।
'जय रायमतीजीकी' वचन सबने सुनाये ॥ २७ ॥

कोटाके धराधीशने संवाद य पाया ।
तब रायमती देवीको निज पास बोलाया ॥
सम्मान किया, खूब पुरस्कार दिलाया ।
करवाके दवा रायचरणको भी बचाया ॥
सेनामें सुपद देनेकी जब बात चलाई ।
तब रायमतीने वहीं निज अर्ज सुनाई ॥ २८ ॥

"सेनाका सुपद वीर पुरुषहीको है सजता ।
जो राज्यके हित शत्रुको है खूब तरजता ॥
निज स्वत्वके हित सिंह-सरिस रणमें गरजता ।
निर्भीक हो संग्रामके सब साज है सजता ॥

मैं नारि हूं, अबला हूं, मेरा धर्म ही है और।
अबलाओंके कृत्योंपै जरा कीजिये कछ गौर ॥ २९ ॥

गृह-कार्य परम धर्म है, पति सेवा महा काम।
पति-गेहही है नारिके हित मानो परम धाम ॥
सन्तानको रक्षा व सुशिक्षा करै निष्काम।
इतना ही है नारीके अहङ्कारका शुभ ठाम ॥

इस हेतु क्षमा करके मुझे दीजिये वरदान।
पति मेरेको सेनामें सुपद देके करो मान" ॥ ३० ॥

सुन रायमतीके ये वचन भूपने माने।
सम्मान सहित उसको किया घरको रवाने ॥
पतिको भी सुपद देके किया ठीक-ठिकाने।
बस, दुःख व दारिद्र सकल उनके पराने ॥

यदि नारिमें उत्साह हो, पति-प्रेम हो आला।
मिट सकता है परिवारका दारिद्र-कसाला ॥ ३१ ॥

हे रायमती! प्रेमसे लो मेरा नमस्कार।
वरदान दो, भारतमें हो वीराओंकी भरमार ॥
तुम सी ही सुवीराओंका है मुझको अहङ्कार।
यश-गान तुम्हारा ही है इस 'दीन' का आधार ॥

इस हिन्दकी अबलाओंको मति ऐसी दे भगवान।
निज धर्मकी रक्षाका करें चित्तसे अभिमान ॥ ३२ ॥

जसमा

जिस सुदेवकी लीला जगमें अति विचित्र दिखलाती है।
बड़े-बड़े पण्डित-गणको भी नहीं समझमे आती है॥
पथरीले प्रदेश काबुलमें मेवे मधुर पकाती है।
पावन और सरस ब्रज भूपर कुंज करील उगाती है॥१॥
नीच कीचसे स्वच्छ कुमुदिनीके शुभ फूल खिलाती है।
अति प्रकाशमय दीप-शिखासे कारिख ही निकलाती है॥
नीच वंशमें भी अति उत्तम नारि रत्न उपजाती है।
उच्च और अभिमानी कुलमें अधम पुरुष जनमाती है॥२॥
उस लीलामय भुवनेश्वरको सादर शीश नवाता हूं।
एक अनोखी लीला उसकी तुमको आज सुनाता हूं॥
लीला लेखन-मिस भारतका वीर-सुयश कुछ गाता हूं।
"एक पंथ दो काज" कहावत अब कर सत्य दिखाता हूं॥३॥
भारत-भूमि सदासे ऐसे गुण दरसाती आती है।
जिनके हेत सकल जग-जनसे अद्भुत आदर पाती है॥
वीर-प्रसूता होना इसका जगमें माना जाता है।
सर्व-श्रेष्ट इस गुणके आगे सब जग शीश नवाता है॥४॥
पुरुषोंकी तो बात कहूं क्या जो अबला कहलाती है।
वे भी विकट वीरता करके इसका सुयश बढ़ाती हैं॥

दुर्गा और द्रौपदीकी तो गाथा बहुत पुरानी है ।
सुनो हालकी बात सुनाऊँ जो सब जगकी जानी है ॥ ५ ॥
ओड़-पटेल*मालवा-वासी जो 'टीकम' कहलाता था ।
कई सहस ओड़ लोगोंका मुखिया माना जाता था ॥
'जसमा' एक षोडशी बाला उसकी प्रिय घरवाली थी ।
नीच जातिकी होनेपर भी उसकी छटा निराली थी ॥ ६ ॥
उस जसमाके नेत्र देखकर पंकज भी सकुचाते थे ।
उसका मुख-मंडल विलोक कर द्विजपति चक्कर खाते थे ॥
रूप, शील, लावण्य, पतिव्रत उसके बहुत अनोखे थे ।
सारे शुभ-गुण-नारि-जातिके उसमें अतिशय चोखे थे ॥ ७ ॥
ऐसी होनेपर भी जसमा पतिका हाथ बँटाती थी ।
उसके साथ मृत्तिका ढोने रहा कामपर जाती थी ॥
थी सुकुमार, किन्तु श्रम कर-कर अपना स्वेद बहाती थी ।
हुक्का-पानी भी भर-भर कर पतिको सुख पहुँचाती थी ॥ ८ ॥
मिट्टी ढोते जो लम्पट जन जसमाको लख पाता था ।
वही हवाई किले बनाना निज मनमें ठहराता था ॥
बुद्धिमान जन उसी रूपमें जब उसको लखपाते थे ।
धूर-भरी हीरोंकी माला टीकम-कण्ठ बताते थे ॥ ९ ॥
सिद्धराज पाटनका राजा, जो गुजरात-निवासी था ।
था तो उच्च वंशका वह, पर लम्पट और विलासी था ॥

---

* ओड़-पटेल—मालवा देशकी एक जाति, जो कुँआ-तालाब खोदती है ।

'सहसलिङ्ग' प्रख्यात सरोवर पाटनमें बनवाता था।
अन्य प्रान्तके मज़दूरोंको आदरसे बुलवाता था ॥१०॥
दो सहस्र ओड़ोंको लेकर टीकमको बुलवाया था।
बड़ी कृपासे सब ओड़ोंको दे निवास ठहराया था॥
यथा योग्य मज़दूरी देकर सबको काम बताया था।
सबसे अधिक इन्हीं लोगोंका काम उसे मन भाया था ॥११॥
अपने पुत्र, कलत्र साथमें ओड़ लोग सब लाये थे।
इसी हेतु राजाका कारज करते चित्त लगाये थे॥
टीकम था सरदार सबोंका, पूरी मेहनत करता था।
जसमाकी सेवासे खुश हो, महा मोद मन भरता था ॥१२॥
टीकमकी खोदी मिट्टीको जसमा लपक उठाती थी।
भर डलिया माथेपर रखकर फेंक दूरपर आती थी॥
श्रम-कण-सहित स्वपतिका आनन देख-देख लहराती थी।
तब टीकमका श्रम हरनेको तान-तरङ्ग उड़ाती थी ॥१३॥
रूपवती षोड़शी सुबाला जब तरङ्गपर आती थी।
निज पतिके प्रमोदके कारण अमित भाव दरसाती थी॥
सरस व्यंगयुत वचन बोलकर पतिको कभी हँसाती थी।
सखियों संग ठठोली करके कभी प्रमोद बढ़ाती थी ॥१४॥
इसी भाँति आनन्द भावसे मास एक ही बीता था।
विपति-वज्र आपड़ा अचानक जो सबका अनचीता था॥
सदा एक रस समय किसीका जाते सुना न देखा है।
इस दुनियामें दुष्ट दैवका यही अजूबा लेखा है ॥१५॥

काम देखने हित पाटन-पति एक दिवस चल जाता है ।
रूपवती जसमाका यौवन लख लम्पट ललचाता है ॥
दिवस दूसरे एक दूतिका उसके निकट पठाता है ।
निज घरनी करने हित उसको साम-दाम दिखलाता है ॥१६॥
नित्य चाव बढ़ता है उसका पर कुछ पेश न जाती है ।
दूतीके फन्दोंमें जसमा रञ्चक मात्र न आती है ॥
अमित गुरिन्दे कोतवालके जसमाके ढिग जाते थे ।
विविध भाँतिसे उस अबलाको बहकाते-धमकाते थे ॥१७॥
इसका भी फल हुआ न जब कुछ सिद्धराज अकुलाता है ।
निज गौरव-मर्याद त्याग कर जसमाके ढिग जाता है ॥
मकर-केतु अपने दासोंको कैसा नाच नचाता है ।
देखो, एक मजूरिनको यों राजा विनय सनाता है ॥१८॥
"प्यारी जसमा ! विनय मानले, बन जा तू मेरी रानी ।
अभी एक ही दिनमें तेरी भग जावे सब हैरानी ॥
त्याग झोपड़ी, महलोंमें बस, पहिन रेशमी बाना तू ।
रत्नोंसे आभूषित हो कर, कर प्रमोद मनमाना तू" ॥१९॥
अति सँकोचसे बोली जसमा "मुझे न रानी होना है ।
मेरा ओड़ स्वपतिही मुझको सुखप्रद श्याम सलोना है ॥
उसके सङ्ग झोपड़ीहीमें महलोंका सुख पाती हूँ ।
गजी पाट सम, काँस रत्न सम, जान प्रमोद मनाती हूँ ॥२०॥
सिद्धराज फिर यों जसमाको प्रेम सहित समझाता है ।
"कोमल तन तेरा इस श्रमसे भारी क्लेश उठाता है ।'

स्याह हुआ जाता है मुखड़ा, बहुत पसीना आता है ।
रानी बन सुख अमित भोगना तुझे नहीं क्यों भाता है ?" ॥२१॥
तब सलज्ज जसमा यों बोली, "राजाजी ! बलि जाती हूँ ।
रानी होने हित अपनेको मैं अयोग्य अति पाती हूँ ॥
तुम राजा, मै ओड़-जातिकी नारी नीच कहाती हूँ ।
मुझे न छेड़ो, मैं अमहोमें मनमाना सुख पाती हूँ" ॥२२॥
कुछ सक्रोध हो सिद्धराज तब ऐसे वचन सुनाता है ।
"सीधे समझानेसे तुझको राज्यानन्द न भाता है ॥
देख, अभी फौरन टीकमको पकड़ शीश उड़वाता हूँ ।
तुझे पकड़, महलों ले जाकर, रानी अभी बनाता हूँ" ॥२३॥
बोली जसमा तब चण्डी हो, कहाँ कुबुद्धि कमाई है ?
राजा होकर ऐसी बातें, धो-धो लाज बहाई है !
कहाँ पवित्र राज-मर्यादा, कहाँ तुम्हारी बातें ये !
रक्षक कहलाकर करते हो भक्षककी सी घातें ये ॥२४॥
वज्र परे रानीके पदपर, राज्य पड़े भरसाईमें ।
दासी-दास, भोग-सुख-सम्पति पड़े नरककी खाईमें ॥
आग लगे ऐसे महलोंमे, जहाँ कुबुद्धि समाती है ।
ऐसे अनुचित वचन बोलते तुमको लाज न आती है ! ॥२
अग्नि देवको साखी करके जिस पतिको स्वीकारा है ।
उसी पूज्य पतिके सेवा हित यह मेरा मन सारा है ॥
अन्य पुरुष चाहे जो छूना, उसके हेत अँगारा है ।
मुझे छू सको तुम हाथोंसे, गुरदा नहीं तुम्हारा है ॥२६॥

जसमा ओड़िन, रानी-पदकी नहीं तनक भी भूखी है ।
उसके आगे राज्य-सम्पदा एक उपरिया सूखी है ॥
अपने पातिव्रत पावकसे उसे जला दे सकती है ।
राज-रानियाँ दुख भोगेंगी, इससे तनक झिझकती है ॥२७॥
अनुचित वचन बोल निज जिह्वा क्यों अपवित्र बनाते हो ?
ओड़ भुक्त जूठी पत्तलपर नाहक चित्त चलाते हो ॥
तुम बलवान् पुरुष राजा हो, तुम्हें न कुछ कर पाऊँगी ।
तो देखो, कटार यह तीक्ष्ण अपने पेट धसाऊँगी" ॥२८॥
जसमाकी प्रचण्डता लखकर सिद्धराज घबराता है
अपना-सा मुँह लेकर फौरन निज महलको जाता है ॥
पातिव्रत-बलके आगे यों सब जग शीश नवाता है ।
प्रबल नरेश मजूरिनको भी नहीं स्ववश कर पाता है ॥२९॥
तब जसमा निज पति ढिग जाकर सारा हाल सुनाती है ।
उसी रातमें घर भगनेकी निज सम्मति ठहराती है ॥
ओड़ पचासक लेकर टीकम जसमा सहित पलाता है ।
होत भोर ही पाटन-पति भी समाचार सुन पाता है ॥३०॥
एक सहस्र सवार साथ ले उनके पीछे जाता है ।
पाटनसे दस कोस दूरपर उनको पकड़े पाता है ॥
जसमाने देखा अब सिरपर घोर विपति घहराती है ।
कालेश्वरका नाम सुमिर कर काली सी बन जाती है ॥३१॥
कसकर लाँग, लपक लै तेगा, यों हुंकार सुनाती है ।
"सुनो ओड़ सब, आज तुम्हारे सिरकी पगड़ी जाती है ॥

तुम सबहीके अछत तुम्हारी पकड़ पटेलिन जावैगी ।
तब क्या तुमको ओड़ कहाते लज्जा तनक न आवैगी ? ॥२२॥
क्या तुम मेरे हेत समर कर अपना सुयश बढ़ाओगे ?
एक पटेलिनकी रक्षामे अपने प्राण गँवाओगे ?"
ऐसी बात पटेलिनकी सुन, सब तयार हो जाते हैं ।
राजाकी सवार सेनासे लोहा विकट बजाते हैं ॥२३॥
ऐसा देख, पटेलिन जसमा पटेबाज़ बन जाती है ।
'हु' 'हुं' कर कराल काली-सी रणमें रक्त बहाती है ॥
किसी अश्वका शीश उड़ाकर धड़ धरती टपकाती है ।
किसी ज्वानकी कमर कतरकर यमपुर उसे पठाती है ॥२४॥
पैर पकड़ कर किसी ज्वानको भूपर खींच गिराती है ।
गर्देपर गिरते ही उसकी गर्दन भी उड़ जाती है ॥
सिद्धराजकी खोज लगाते जिधर लपक कर जाती है ।
उसी ओरकी सारी धरती रक्त-रँगी दरसाती है ॥२५॥
कहाँ स्वपति है, कहाँ ओड़ है, इसका ध्यान न करती है ।
फ़क़त एक पाटन-नरेशको लपक ढूँढ़ती फिरती है ॥
जो करता है रोक राहमें, उसे कतरही धरती है ।
इसी भाँति सारे रण-थलमें बनी बवण्डर फिरती है ॥२६॥
जसमाकी तलवार समरमें अद्भुत कृत्य दिखाती है ।
छू जाती है, जिसके तनसे यमपुर उसे झँकाती है ॥
जसमाका है खड्ग, किधौं है अग्नि-ज्वाल झहराती सो ।
किधौं जीभ कालीकी, अथवा बिज्जुलता लहराती सो ॥२७॥

टीकम सहित ओड़ सब मिलकर विकट युद्ध दिखलाते है ।
किन्तु कहांतक लड़ सकते थे, आखिर मारे जाते हैं ॥
जसमाने यह हाल देखकर मरना ही अच्छा जाना ।
मार कटार पेटमें ! रक्खा सत्य पतिव्रतका बाना ॥३८॥
मरते समय कड़क कर बोली 'देखैं भारतकी नारी ।
सत्य पतिव्रतमें रहती है कैसी शक्ति महा भारी ॥
बड़े धराधिपकी इच्छा भी अबला एक नसाती है ।
अपनी इच्छा रख, सुरपुर जा पतिको कण्ठ लगाती है" ॥३९॥
धन्य, धरा भारतकी, जिसमे ऐसी अबला होती हैं ॥
प्राण-नाशसे भी अपने नहीं पातिव्रतको खोती हैं ॥
धन्य जाति, कुल, ग्राम, धाम वह जहँ उपजैं ऐसी नारी ।
ऐसी नारीका गुन गाकर सुख पाते है संसारी ॥४०॥
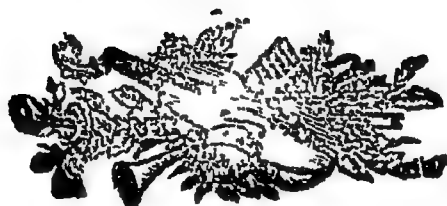
नीला वा नीलदेवी

भारतके पंजाब प्रान्तमें नूरपूर बस्ती थी एक
सूरजदेव वहांका ठाकुर, रखता था विरोचित टेक ॥
साधारण ग्रामीण ढङ्गसे खेती करता चित्त लगाय।
जितना पृथ्वी-माता देती, लेता उतना सीस नवाय ॥१॥
छोटासा कच्चा घर उसका क़िला समझ लो चाहे कोट।
लड़के-बाले, धन-सम्पति सब रहते थे उसकी ही ओट ॥
द्वारे नीम पेड़के नीचे, था चबूतरा एक सुढार।
वहीं बैठकर वह करता था अपना देहाती दरबार ॥२॥
आमिल सूबेदार, गवर्नर, जिमींदार, चौधरी, अमीर।
इनमेंसे कोई भी उसको मिली न थी पदवी गम्भीर ॥
तब भी अपने क्षात्र-तेजसे धर्म-सहित करके सब काम।
निज पुरजनका प्रेमपात्र हो, पाया था 'राजाजी' नाम ॥३॥
दीनोंकी सहायता करना और रोकना अनुचित कर्म।
देना दण्ड उद्दण्ड जनोंको वह समझे था अपना धर्म ॥
इसी हेतु दो-चार ग्रामके वासी थे उसके आधीन।
जो वह कहता सोई करते ग्राम-निवासी अपढ प्रवीन ॥४॥
नौकर, चाकर, दास, टहलुआ, रक्षक ड्योढीदार।
जो समझो सो सोमदेव था, पुत्र-रत्न जीवन आधार ॥
हृदयेश्वरी, मालकिन घरकी, दासी, लौंड़ी, बांदी, सर्व।
एक "नीलदेवी" ही सब कुछ बन जाती सदैव सह-गर्व ॥५॥

'सोमा ज़रा यहाँ तो आना' कहकर जब पुकारता सूर।
बालक "सोमदेव" तब पाता, अपने चित्त मोद भरपूर॥
'नीला थोड़ा जल तो लाना' यों पुकार पतिकी सुनि कान।
झपटि प्रेमयुत शीतल जल लै देती सहित मन्द मुसकान॥ ६॥
अवसर परे प्रेमयुत पतिकी नीला करती बहुत सहाय।
जिसको पाकर घर गृहस्थका सच्चा इन्द्र-भवन बन जाय॥
पुत्र-प्रेम, पति-प्रेम शूरता, वीराङ्गना-उचित गुण सर्व।
इनके सिवा गान-विद्यामें नीला रखती थी कुछ गर्व॥ ७॥
किसी पड़ोसीके घर कोई उत्सव हरता मङ्गल मूल।
आदर-सहित बुलाई जाती नीला युत मङ्गली दुकूल॥
मधुर तानसे गाना गाकर गृहदेवता रिझाती खूब।
इसी हेतु सब ग्राम बधूटी उसे समझती थी महबूब॥ ८॥
सोमदेव नीलाका बालक मित्रोंसे रखता अति प्रेम।
सभी ग्राम-गुरुजनकी आज्ञा-पालन था बस उसका नेम॥
भर्त्ता, पुत्र समेत सदाही नीला रहती हर्ष समेत।
वैसे ही निज धर्म-कृत्यमें सूरज रहता सदा सचेत॥ ९॥
इस परिवर्त्तनशील जगतमें देखो एक अनोखी बात।
सदा एकसे रहे न कबहूँ काहूके सारे दिन रात॥
इसी नियमसे नीलाका भी भाग्य-चक्र पलटा इस ओर।
पर नीलाने साहस करके सहे सभी दुख महा कठोर॥ १०॥
रहा एक अब्दुल शरीफ़ औ सूर, जातिका यवन सुवीर।
विजय-हेतु पञ्जाब देशमें आया लिये सेन रणधीर॥

लूटा, किसी नगरको फूँका, किसी ग्रामको दिया उजाड़ ।
निर्दय-धन-लोलुपको लगती नर-हत्या मानो खेलवाड़ ॥११॥
किसी वीरको काट गिराया, लिया किसी योधाको बाँध ।
किसी-किसी हेकड़ क्षत्रीको दिया लोह-पिँजरेमें धाँध ॥
कई एक क्षत्री वीरोंकी बहू-बेटियाँ लीं सब छीन ।
अत्याचार मचाया दिल भर, किये सैकड़ों कर्म मलीन ॥१२॥
यह दुर्दशा देशकी लखके नीला मनमें हुई अधीर ।
क्रोध-सहित पतिको ललकारा "नाहक बनता है तू वीर ॥
क्षत्री-रक्त नसोंमें तेरे तनक नहीं खाता है जोश ।
सुनता नहीं यवन क्या करते, कहाँ गया है तेरा होश ? ॥१३॥
वीर कुमारी, वीर-बधूटी और वीर-जननीकी लाज ।
जन्म भूमि, कुलकी मर्य्यादा रखना है क्षत्रीका काज ॥
रजपूतोंकी कन्या, नारी, यवन लोग लेते हैं छीन ।
इसे देख, लज्जासे तेरा मुखड़ा होता नहीं मलीन ? ॥१४॥
चाहें तो मुझको भी आकर यवन लोग ले जावें छीन ।
तेरा किया न कुछ भी होगा, रह जावैगा बनकर दीन ॥
रे कायर ! तू जाति वंशका रखता नहीं तनक अभिमान ।
ऐसे कायर ! नरकी नारी नाहक किया मुझे भगवान् !" ॥१५॥
ऐसे वचन नारिके सुनके, गुनि यवनोंके अत्याचार ।
सत्यवीर सूरजके तनमें हो आया रिसका संचार ॥
अधर और भुजदण्ड फड़कने लगे वीरके बारम्बार ।
दमक उठा मंगल-सा चेहरा, चमक उठे नैना अङ्गार ॥

'देवासिंह' एक नेही था उसको झटपट लिया बुलाय ।
'मेरे सब मित्रोंसे कह दो आज पड़ा है अवसर आय ॥
वीर-धर्मकी रक्षा करना यदि वे समझैं अपना काम ।
आवैं मेरे साथ, करैं चल यवन-सैनिकोंसे संग्राम" ॥१७॥
ख़बर पाय ग्रामीन वीरवर यथाशक्ति लै-लै हथियार ।
सूरजके द्वारे जुड़-जुड़ कर हुए एकट्ठे एक हज़ार ॥
सुत-समेत सूरज हर्षित हो हुआ लड़ाईको तैयार ।
कसे कटारी, बाँक, बिगुरदा, नेज़ा, तबर, ढाल, तरवार ॥१८॥
नीलाने यह हाल देखके कहा सबोंसे यों ललकार ।
"क्षात्र-धर्मपर मरना होगा, लीजे चितमें सोच-विचार ॥
चित कदराता हो मरनेसे जिसका वह अबही घर जाय ।
क्षत्री होकर रणसे भागै उसकी माँका दूध लजाय ॥१९॥
मरना है अवश्यही जगमें धर्म हेत क्यों देहु न प्रान ।
प्रलय कालतक नाम रहैगा राजी होंगे श्रीभगवान् ॥
जननी-जन्मभूमिकी इज़्ज़त, बेटी, बहिन, नारिकी लाज ।
सुख-सम्पति-धन-प्राण झोंककर रखना है क्षत्रीका काज ॥२०॥
इतना करनेका बल-साहस जिस क्षत्रीके अङ्ग न होय ।
बस, जानो उसकी माताने नाहक यौवन डारा खोय ॥
जन्मभूमिकी मर्यादाको जो क्षत्री नहिं सकै रखाय ।
निज नारीके सती-धर्मको कब सकि है वह क्रूर बचाय ॥२१॥
आगे चलो, करो रण बढ़कर, मैं भी आती हूँ उस ओर ।
रणसे जिसे विमुख पाऊँगी मारूँगी शमशेर कठोर ॥

कभी किसीने किया न होगा सो करके दूँगी दिखलाय ।
देखूँगी कैसा शरीफ है जो सन्मुखसे भाग न जाय" ॥२२॥
ऐसे वचन नील-देवीके सुन सब वीर उठे हुलसाय ।
उठे फड़कि भुजदण्ड सबनके मुखपै रही ललाई छाय ॥
कोऊ लगे उछारन नेज़ा, कोऊ खाँड़ा रहे थहाय ।
कोऊ कहैं "चलो, अरि मारैं, चलो-चलो वह भाग न जाय" ॥२३॥
यों उत्साहित हो सब क्षत्री यवन-सेनके सम्मुख जाय ।
सूरजके आज्ञानुसार ही गिरे यवन-दल पै हहराय ॥
मारे, मरे, कटे, बहु काटे, चले तीर, तरवार, कटार ।
रण-उन्मत्त भये सब क्षत्री जय-धुनि करैं पुकार-पुकार ॥२४॥
पहले दिन पचास क्षत्री कटि, मारे यवन तीन सौ वीर ।
यवनोंके बहु सेना-नायक छिन्न-भिन्न हो गये शरीर ॥
सूरजने शरीफ-सेनाके नायक तीन हने ललकार ।
सोमदेवने सुत शरीफका रण-दङ्गलमें दिया पछार ॥२५॥
पुत्र पतन सुनकर शरीफखाँ, सोमदेवके सम्मुख आय ।
चारों दिशिसे ऐसा दाबा जैसे चन्द्र-गहन घिर जाय ॥
बेचारा नवयुवक अकेला पहले तो कुछ गया डराय ।
फिर, माताके वचन याद कर, लगा झाड़ने असि हरषाय ॥२६॥
रण-कौशलमें पका यवनवर सोमदेवके निकट सिधाय ।
झपट चाहता था नेज़ा हनि उसे भूमिपर देय गिराय ॥
इतनेमें देवाने आकर नेज़ा काट किया दो खण्ड ।
भंग-मनोरथ हुआ यवन यों, निकल गया सीमा बरिबंड ॥२७॥

इसी भाँति अवसर पानेपर सूरज लै क्षत्रिनको भीर ।
कभी दिवसमें, कभी रात्रिमें, हनता यवन-सेनके वीर ॥
कई मासतक यों सूरजने, किया यवन-सेनाको तङ्ग ।
सब सूरोंकी सिट्टी भूली, मारी सारी गई उमङ्ग ॥२८॥
एक रात्रि यवनोंने छिपकर, सूरजके डेरों ढिग जाय ।
समय पाय छापा इक डाला, क्षत्री सकल दिये बिडराय ॥
पकड़ लिया सूरजको ज़िन्दा, लाये अपने दलके बीच ।
क़ैद किया पिंजरेमे उसको, कहे वचन कुछ अतिशय नीच ॥२९॥
'बन्दी हुए यवनके सूरज' सुनी सोमने जब यह बात ।
यवनोंपर धावा करनेको निश्चित की भविष्य-अधरात ॥
पुत्र-क्रोध लखि नोला बोली "बेटा ! तू है अभी अजान ।
यवनोंसे तू पार न पैहै, क्यों देता है अपने प्रान ? ॥३०॥
जबतक मैं जीती हूँ तबतक तुझे न करना चहिये सोच ।
कल ही तेरे पितुको लाऊँ मारि यवन-सेनापति पोच ॥
बिना गहे तरवार-तमञ्चा बिना लिये सँगमें कुछ सैन ।
देख वीर-छत्रानी कैसे पूरा करती है निज बैन" ॥३१॥
शत्रुहिं बन्दी लखि शरीफ़खाँ, सेना-नायक लिये बुलाय ।
"आज विजयका उत्सव होगा, सब सेनाको देहु सुनाय ॥
साजौ सब जुलूसके सामाँ, मद्य-मांस हो गज़क तयार ।
कुछ तवायफ़ैं नाच-गान हित बुलवाओ अब्दुलसत्तार ॥३२॥
भाँड़ भगतिये, नट बेड़िनियाँ बुलवालो, नचवाओ ख़ूब ।
तीन रोज़ आनन्द उड़ाओ लिये बग़लमे निज महबूब ॥

पाँच सात , उमदा कञ्चनियाँ मेरे ढिग देना पहुँचाय ।
उस काफिर क़ैदीका पिँजरा द्वारेपर देना रखवाय ॥३३॥
मद्य-पानकर नाच-गानसे जब हो जाऊँगा अलमस्त ।
तब कञ्चनियोंसे जूतोंसे पिटवा उसे करूँगा पस्त ॥
क्षत्री-कन्याओंका सत् भी उसके सम्मुख होगा भङ्ग ।
तब देखूँ उल्लूका पट्ठा दिखलाता है कैसा रङ्ग" ॥३४॥
इस जलसेकी ख़बर पायके नीला बनी कञ्चनी-रूप ।
सङ्ग सफ़रदाई लै सातेक सच्चे छत्री वीर अनूप ॥
पहुँची यवन-सेनमें जाकर ख़ाँ शरीफके डेरे-द्वार ।
नैन सैन दै रक्षक मोहे, पहुँची जहाँ भरा दरबार ॥३५॥
"बहुत दिनोंसे इश्तियाक़ था कब हुज़ूरका होय नियाज़ ।
बेनियाज़ने मक़सद मेरा पूरा किया, बड़ा एजाज़(१) ॥
सुनती हूँ हुज़ूरको अज़हद (२) गाना सुननेका है शौक़ ।
बन्दी भी इस अपने फ़नमें रखती है औरोंसे फौक़ (३) ॥३६॥
हुक्म होय तो बन्दी भी कुछ अपना फ़न दिखलावै आज ।
नज़र-इनायत (४) से हुज़ूरको मेरा बन जावेगा काज ॥
ख्वाहिश कुछ इनाम-बख़शिशकी मुझे नहीं करती हूँ अर्ज़ ।
सिर्फ़ आपका दिल ख़ुश करना समझी हूँ मैं अपना फ़र्ज़" ॥३७॥
सुनकर ऐसी मीठी बातें लख नीलाका रूप अपार ।
आनबान,सजधज अंगोंकी, लख शरीफ होगया शिकार ॥
"हाँ हाँ जानी ! आओ गाओ, सुनें तुम्हारी मीठी तान ।

१—सम्मान २—अत्यधिक ३—बड़ाई ४—कृपादृष्टि

है; इनाम-इकराम कौन शै(१)तुमपर है निसार(२)यह जान ॥३८॥
लो, यह लो शराबका प्याला, लो यह गजक (३) ज़ायकेदार।
खा-पी मस्त नशेमें होकर, फिर गानेकी उड़े बहार" ॥
"मै हुजूर पीकर आई हूँ, खुब नशेमे हूँ मखमूर (४)।
ज्यादासे गाना बिगड़ेगा, शौक करैं आपही हुजूर" ॥३९॥
खाँ शरीफके चले पियाले, नीला लगी अलापन राग।
देश-रागको ठुमरी गाई, फिर कुछ गाया राग-बिहाग ॥
सोरठ और झिंझौटी गाकर मजलिस सबै मस्तकर दिन।
स्वारथ-हित कुछ हावभाव करि खाँ शरीफ मनमोहित कीन ॥४०॥
'वला' औ 'शाबाश वाह वा' चारों दिशि गूंजा यह शोर।
"वाह खुब क्या खूब कहा है"—की छा गई घटा घनघोर॥
मदसे मस्त मदनसे मोहित, खाँ शरीफ मुद्रिका उतार।
देने लगा नीलदेवीको, नीलाने यों कहा संभार ॥४१॥
"इसको अभी पासहो रखिये, अभी और कुछ गाकर तान।
दिल हुजूरका पूरा खुशकर इकदम कर लूँगी भुगतान" ॥
यों कह कुछ वियोग-रस अपना गाकर विरह जताया खूब।
सूरजदेव तान-सुर सुनिके समझा, "है मेरी महबूब (५) ॥४२॥
नीला भला यहाँ क्यों आई, कैसे आई किसके साथ ?
पकड़ी गई खुशीसे, अथवा सोता हूं या जगता नाथ !" ॥
यों विचार पिंजरेके भीतर सूरज सोचि-सोचि रह जाय।
सत्य बात कुछ बूझ न पड़ती, कैसे कोई करै उपाय ॥४३॥

१—वस्तु २—निछावर ३—चिखना (नमकीन) ४—मस्त ५—प्रियतमा

खान शरीफ नीलदेवीपर मोहित हुआ हजारों जान ।
बोला, "आ नज़दीक बैठ जा, तेरे क़दमोंपर कुरबान ॥
जान-माल सब अपना समझो, लो यह गजमोतीका हार ।
आ नज़दीक बैठ जा जानो ! कर लेने दे मुझको प्यार" ॥४४॥
यों मौक़ा पाकर नीला भी धोरे ढिग शरीफके जाय ।
बैठ गई चुपके दच्छिण दिश, तब शरीफ बोला हरषाय ॥
"लो जानो ! बोसा तो दैदो" यों कहि लपक बढ़ाया हाथ ।
हाथ रोकि, नीला मन-ही-मन हरि-पद कमल नवाया माथ ॥४५॥
खींचि कटारी निज चोलीसे, झपटि शरीफहिं दिया पछार ।
सबके देखत आनन्-फानन् छातीमें धँस गई कटार ॥
छाती फार रक्तसे रंजित मुखमें दिया कटारहि डाल ।
बोली 'इसका बोसा लेकर निजमनका अरमान निकाल' ॥४६॥
साज़िन्दे-रूपी चत्रीगण तबला और सारँगी डार ।
खैंचि सिरोही निज कमरनसे छप-छप करन लगे तलवार ॥
सूरजदेव हाल यह लखिकै समझ गया नीलाका भेद !
पिंजरा तोड़-लोह-छड़ लेकर किये बहुत यवनन शिर-छेद ॥४७॥
नीला लै शरीफका खाँड़ा काटत शत्रु चली पति ओर ।
सूरज भी बैरिन बिड़रावत नीला ओर चला करि ज़ोर ॥
अहमद नामक एक यवनने सूरजका सिर दिया उड़ाय ।
नीलाने फुरतीसे आकर पति-मस्तकको लिया उठाय ॥४८॥
दहिने हाथ नाथ-सिर लीन्हें बायें हाथ करत तरवार ।
काटत शत्रु बचावत वारन, पहुँची जाय शिविरके द्वार ॥

देवासिंह अश्व द्वै लीन्हे, खड़ा यवन-सैनिकके वेश ।
एक अश्व पै बैठि तुरन्तहि, पहुँचो झपटि आपने देश ॥४९॥
क्षत्री-धर्म सिखाय पुत्रको, धीरज सहित चिता बनवाय ।
पति-सिर-साथ सती ह्वै नीला पहुँचो मर्त्यलोकमें जाय ॥
देश-प्रेम और जाति-नेम-हित दिये नील देवाने प्रान ।
जैसा कहा, किया वैसाही, यही सत्य वीरोंकी बान ॥५०॥
नमस्कार है नीला तुझको धन्य धाम जहँ किया निवास ।
धन्य वंश पितु, मातु धन्य वे, जिनके घरमें किया प्रकाश ॥
तेरा प्रेम-पात्र सूरज भी धन्यवादका पात्र लखाय ।
सोमदेव सब भाँति धन्य है जो कहता था तुझको माय ॥५१॥
अब तो भारतकी सब नारी डरती हैं लखिकै तरवार ।
इसी हेतु सब पुरुष यहाँके कायरपनके हुए शिकार ॥
हे ईश्वर ! मेरी इक विनती है तुझसे यह बारम्बार ।
दया कर फिर वीर नारियाँ पैदाकर इस हिन्द-मँझार ॥५२॥

गङ्गा-यमुना मध्य ग्राम इक मोहनपूर कहाता है।
ज़िला बुलन्दशहरमें अब भी बसता पाया जाता है॥
इसी ग्रामका एक निवासी 'रामनाथ' कहलाता था।
जो अपनेको रामचन्द्रका वंशज वीर लगाता था॥ १॥
उस मौज़ेके दशम अंशका जिमींदार सरकारी था।
थोड़े धन, अच्छे प्रबन्धसे बना असामी भारी था॥
'कमला देवी' उसकी गृहिणी बड़ी प्रवीणा नारी थी।
सुन्दर, सती, साहसी, शूरा, पतिको परम पियारी थी॥ २॥
मोहनपुर-भरमें यह कमला मधुर-भाषिणी भारी थी।
कुलका अहङ्कार रखनेमें पतिसे नहीं पिछारी थी॥
गृह-प्रबन्ध, पति-सेवा करना अपना धर्म विचारे थी।
निश्चय यही मोक्ष-द्वारा है, यह मनमे निरधारे थी॥ ३॥
इसके रूप, गुणोंकी चर्चा चारो ओर सुनाती थी।
कामी यवन-गणोंके चितपर अत्याचार मचाती थी॥
चर्चा सुन मेरठका हाकिम जो नवाब कहलाता था।
निज निकाहमें लानेके हित मन-ही-मन ललचाता था॥ ४॥
निज सूबेमे दौरा करना तब नवाब ठहराता है।
इधर-उधरसे घूम-घाम कर मोहनपुर ढिग जाता है॥
'बन्दी करलूँ रामनाथको' यह विचार मन लाता है।
इसी काज हित कपट रूपसे इक दरबार रचाता है॥ ५॥

ईद-गिर्दके ज़िमींदार सब न्यौता दे बुलवाता है।
मोहनपुरका ज़िमींदार वह रामनाथ भी आता है॥
नज़रैं लै नवाब साहेब भी सबका आदर करते हैं।
मीठी-मीठी बातैं कर-कर सबहीका मन भरते हैं॥ ६॥
सन्ध्या समय विदा हो-हो कर सब छत्री घर जाते हैं।
फिर मिलनेकी आशा उनसे श्रीनवाब दर्साते हैं॥
'रामनाथ' जब बिदा माँगता तब नवाब टरकाते हैं।
'ज़रा ठहरिये, मुलाक़ातसे जी नहिं भरा' सुनाते हैं॥ ७॥
टरकाते-टरकाते योंही अर्द्ध रात्रि हो जाती है।
कमला देवी पति-चिन्तामें मन-ही-मन घबराती है॥
"सम्भव नहीं, भूलना रस्ता, क्या उसने ठहराया है?
अनबन हुई यवनसे अथवा आये नहीं बात क्या है? ॥ ८॥
हीरासिंह, रामका भाई, दुर्गापति सब आये हैं।
मेरे ही जीवनाधारको क्यों नवाब अटकाये हैं?
घोड़ेपर चढ़नेके फनमें क्या उनको अज़माता है?
रात्रि-समय, यह हो नहिं सकता, क्या शतरंज खिलाता है?॥९॥
इसी भाँति आशङ्का करते सारी रात बिताती है।
कुछ कुस्वप्नसा भी देखा है, चितमें अति घबराती है॥
उठी भोर हरि-सुमिरन करते द्वार खोलने जाती है।
अपने प्राणाधार 'राम' को द्वार खड़ा यों पाती है॥१०॥
दश हबशी तलवारें खींचे चारों दिशिसे घेरे हैं।
कुछ चिन्तितसे, कुछ क्रोधितसे, हेरैं नैन तरेरे हैं॥

'जा भीतर औरतको ला दे' रामनाथसे कहते हैं।
'वर्ना अभी धाम यह तेरा एक घड़ीमें दहते हैं' ॥११॥
रामनाथ भीतर जाता है, कमला आदर करती है।
हुक्का, पानी, पान, तमाखू झट ला सम्मुख धरती है॥
हाथ जोड़, धीरे मुसुका कर पूछा, "क्यों घबराये हो ?
यह कैसा नवाबका आदर बन्दी बन घर आये हो ?"॥१२॥
कमलाको आलिङ्गन करके आँसू बहुत बहाता है।
यवन शिविरमें गुज़रा जो कुछ सो सब हाल सुनाता है॥
"हे कमला ! तुझको नवाबजो अपने पास बुलाते हैं।
निज बेगम करके तुझको अब मेरा संग छुड़ाते हैं ! ॥१३॥
जानेसे इनकार करेगी, जीता मुझे न पावेगी।
राज़ीसे उसके ढिग जाकर, फिर घर लौट न आवैगी॥
दोनों तरह छूटता हूँ मैं, इससे राय हमारी है।
जाकर बेगम बन राज़ीसे, इसमें कुशल तिहारी है॥१४॥
मैं छोटा सा जिमींदार हूँ, वह नवाब सरकारी है।
उसके सँग रहनेमें तुझको लख पड़ता सुख भारी है॥
तेरे पुत्र नवाब बनैंगे तू बेगम कहलावैगी।
मुझ-से छोटे पुरुष संग रहि तू क्या गौरव पावैगी ?॥१५॥
"प्राणाधार ! हुआ क्या तुमको, क्या शराब पी आये हो?
या नवाबका रोब देखकर यों दिलमें घबराये हो ?
रात जागते बीत गई है, क्या इससे गरमाये हो ?
किसी सवतिके फन्दे पड़कर, अथवा गये ठगाये हो ? ॥१६॥

किसी भाँतिके क्या कुयोगसे निज पुरुषत्व गमाया है ?
अथवा कुल-कलङ्क बननेका कुछ कुयोगसा आया है ॥
मेरा प्रेम, सतीत्व. जाँचनेको क्या मन लहराया है ?
अथवा अपने क्षत्रीपनको बिलकुल धोय बहाया है ॥१७॥
समझ नहीं पड़ती, हे ईश्वर! कैसी तेरी माया है ?
क्षत्री अपने निज नारी-ढिग जार-दूत(१) बनि आया है !
राम-वंशका 'रामनाथ' सो मुझसे नाथ! छुड़ाते हो।
यवन-वंशके क्रूर, कुपन्थीसे सम्बन्ध जुड़ाते हो ॥१८॥
अपने मुखसे निज नारीको कैसे वचन सुनाते हो!
गौरवताका लोभ दिखाकर यवन-पास पठवाते हो !!
जो कुछ चाहो सो सब कह लो यह अधिकार तुम्हारा है।
"प्रणय-पाश (२)आजन्म निभाना" यह दृढ़ नेम हमारा है॥१९॥
क्षत्रानीके प्रणय-पाशका काटे कौं मर्दाना है ?
सती-नारिका पति बिलगाना टेढ़ी खीर पचाना है॥
सौ शङ्कर, सहस्र नारायण, नाहक जोर लगावेंगे।
तब भी मुझको नाथ-चरणसे विलग न करने पावेंगे ॥२०॥
क्या जीवन-भयसे निज पत्नी दे देना स्वीकारा है ?
थोड़ेसे जग सुखके कारण यह प्रबन्ध निरधारा है॥
मेरी सासु गुँसाइनजूने नाहक तुमको जाया है!
अथवा किसी चक्रमें पड़कर भारी धोखा खाया है ॥२१॥

(१) जार-दूत—यारका दूत।
(२) प्रणय-पाश—प्रेमका फन्दा।

यदि सिवाय पत्नी देनेके और न कुछ बन पड़ता है।
मेरा यौवन, रूप, दुष्टके दिलमें हरदम गड़ता है॥
तो ठहरो, मैं इन चरणोंपर प्राण निछावर करती हूँ।
तुमको जगमें बेखटके कर मैं सुरपुर पग धरती हूँ॥२२॥
मेरे मरनेसे तुम जगमें बेखटके हो जाओगे।
बच जावैगी कुल-मर्यादा, सुखसे सोने पाओगे"॥
यों कहते-कहते कटार लै छाती-ओर बढ़ाया ज्यों।
"हैं! कदापि ऐसा मत करना" रामनाथ चिल्लाया यों॥२३॥
हाथ पकड़ अत्यन्त प्रेमसे छातीसे चिपकाता है।
प्रेम सिन्धुमे गहरे धँस कर डुबडुब डुबकी खाता है॥
हुलसा हृदय, गलाभर आया, वचन न बाहर आता है।
बड़े-बड़े आँसुनके मोती प्यारीपर छिड़काता है॥२४॥
देरी देख, द्वारके हवशी बोले, "बे, क्या करता है?
चलता है या हाथ हमारे अभी यहींपर मरता है?"
स्वामीपर संकट विचारकर बोली, "अभी निकलती हूँ।
न्हा धोकर, कपड़े सिंगारकर फिर नवाब ढिग चलती हूँ"॥२५॥
दरबारी कपड़े उतारकर सादे कपड़े लाती है।
मनमें अति उत्साहित होकर निज पतिको पहनाती है॥
सीने तवा, * ढाल काँधेपर, कमर कटार लगाती है।
"नागिन' नाम सिरोही लाकर बाम ओर लटकाती है॥२६॥

---

*प्राचीन-कालके वीर तीर, तलवार आदिका वार बचाने लिये अपने कलेजेपर तवा बाँध लिया करते थे।

पतिका ऐसा साज बनाकर, अपना साज सजाती है।
जूड़ेमें तीक्ष्ण सा बिछुआ ※ और कटार छिपाती है॥
कमरबन्दमें कसी सिरोही, खञ्जर खोंसा चोलीमें।
प्रगट एक तलवार ढाल लै बोली अजब ठठोलीमें ॥२७॥
"अच्छा है, यदि मुझको रखना तुम्हें नहीं अब भाता है।
मेरे हित, तुमको नवाब यह यम-स्वरुप दिखलाता है॥
पत्नी देकर राज्य भोगना यदि तुमने ठहराया है।
मेरे सुख, गौरवका अच्छा शुभ विचार चित आया है ॥२८॥
एक रामने पत्नी-कारण हठि समुद्रको बाँधा था।
उसी वंशके एक रामने पत्नी दै सुख साधा था॥
एक रामने पत्नी कारण बीस-बाहुको मारा था।
एक रामने पत्नी देकर निज उधार निरधारा था ॥२९॥
एक रामने पत्नी कारण लाखों शीश उड़ाये थे ※।
एक रामने पत्नी देकर अपने प्राण बचाये थे॥
राम वंशकी ऐसी कीरती सारी दुनिया गावेगी।
उसी वंशकी बधू यवन-घर बैठी मज़ा उड़ावेगी!! ॥३०॥
जिस करसे मेरा कर धरकर पिता-भवनसे लाये हो।
एक बार मैं चूम लॅ, लाओ, क्यों लटकाये हो ?

※ 'बिछुआ, एक प्रकारका छोटासा शस्त्र, जो विषका बुझाया होता है।
※ यदि आपको मर्य्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रका पूरा जीवन चरित्र हिन्दीकी सुन्दर, सरल भाषामें पढ़ना हो, तो हमारे यहां से रंग-बिरंगे ३० चित्रोंवाला "श्रीरामचरित्र" अवश्य मंगा देखिये। दाम ५॥) रुपया।

यही हाथ मेरे इस करको यवन-हाथ धर आवेगा।
तब दुनियामें क्षत्रीका कर अधिक बड़ाई पावेगा ॥३१॥
चलो चलें अब यवन-शिवि में चितमें चिन्ता धारौ ना।
कहना है सो वहीं कहूँगी, तुम अपना मन मारौ ना" ॥
वज्राहत सा होकर क्षत्री मनमे अधिक लजाता है।
चुपकेसे कमलाको लेकर यवन-शिविरमें जाता है ॥३२॥
'रामनाथ कमलाको लाया' जब नवाब सुनि पाता है।
बड़े प्रेमसे तब दोनोंको भीतर-भवन बुलाता है ॥
'वे दोनों हथियार सहित हैं' नौकर एक सुनाता है।
'कुछ डर नहीं, सामने लाओ' कह उसको दबकाता है ॥३३॥
अद्भुत रूप देखि कमलाका यों नवाब ठगि जाता है।
अच्छी सुन्दर सुरा देखि ज्यों मद्यप बुद्धि गँवाता है ॥
पहले धन फिर तनहू देकर उसे उड़ाना चहता है।
उसी भाँति कमलाको भी वह 'आओ जानो' कहता है ॥३४॥
"मुद्दतसे फिराकमे जानी! यह दिल तड़पा जाता है।
आओ, आओ इसे संभालो, देखो निकला आता है ॥
आकर यहाँ बग़ल गरमाओ तब यह ठण्ढक पावैगा।
लो यह गजमुक्तोंका गजरा खूबी बहुत बढ़ावेगा" ॥३५॥
इतनेमे कमला निज पतिको कनखो एक चलाती है।
कमला-नाम-धारिणी देवी दुर्गा सी बन जाती है ॥
सिंहासनसे पटकि यवनकी छाती पर चढ़ जाती है।
गर्दन दाबि, कटार खींचकर छाती निकट अड़ाती है ॥३६॥

"रे पापी ! तू वीर-नारिसे बिहँसि बिहँसि अठिलाता है ।
ले अब देख, कलेजा तेरा कैसी ठण्डक पाता है ॥
हिन्द देशकी क्षत्रानीको 'जानी' भाषि बुलावैगा ।
कौवा मोहन-भोग खायगा ! भाग्य कहाँ यह पावैगा ? ॥३७॥
ठण्डा करूं कलेजा तेरा, बग़ल अभी गरमाती हूँ ।
अबतक तो दिलही तड़पा था, अब तुझको तड़पाती हूं ॥
गला काटि सोना चिरूंगी, टुकड़े जिगर उढ़ाऊँगी ।
पातिव्रत-भञ्जी विचारका तुझको मज़ा चखाऊँगी ॥३८॥
हिन्द-देशकी सती नारिका जो व्रत-भङ्ग विचारैगा ।
उसी नारिका वह सतीत्व ही उसको वहीं पछारैगा ॥
भरत-भूमिमें * यही नियम है, सत्य बात बतलाती हूं ।
उसका उदाहरण भी पापी ! देख तुझे दिखलाती हूं ॥३९॥
नैनोंसे तूने मुझको बुरी नज़रसे देखा है ।
इनको खोच कागको दूँगी, इसमें नहीं परेखा है ॥
इस ज़बानसे 'जानी' कहकर तूने मुझे पुकारा है ।
चारा करूं गीधका इसकी, चितमें यही विचारा है ॥४०॥
इस छातीसे मुझे लगाना तू अपने मन ठाने था ।
इसे कूट कीमा कर डालूं मानो भाग्य ठिकाने था ॥
अब भी किसी वीर-नारीको 'जानी' भाषि पुकारैगा ?
अब भी किसी आर्य-ललनाका पतिव्रत-भङ्ग विचारैगा ? ॥४१॥

---

* इस देशका नाम "भरत-भूमी" क्यों पड़ा ? यदि इसका पूर्ण वृत्तांत जानना चाहते हों, तो हमारे यहांसे रंग-बिरंगे १३ चित्रोंवाला 'शकुन्तला' उपन्यास मँगा देखें । दाम बिना जिल्द २), सुनहरी रेशमी जिल्द २॥) रु०

ले, कटार धंसता हैं नोचे कहले जो मन धारे है।
बचना अथवा अभी निबटना, अब भी हाथ तिहारे है॥
करि सौगन्द अगर तू अबसे यह विचार तजि देवैगा।
क्षत्रानीसे क्षमा माँगके प्राण बचा निज लेवैगा" ॥४२॥
"हाँ, मादर! मैं बड़े अदबसे अपनो अर्ज़ सुनाता हूँ।
अबसे ऐसा नहीं करूँगा, क़सम खुदाकी खाता हूँ॥
राहेखुदापर (१) मुझे छोड़, मैं अभी कूच कर जाता हूँ।
रामनाथको पाँच गाँवका मालिक अभी बनाता हूं॥४३॥
समझ गया मैं क्षत्रानी भी बड़ी बहादुर होती हैं।
जान चाहे जावे पर अपनी इज्जत कभी न खोती हैं॥
बदमाशोंके कहनेमें लगा यह ज़क (२) आन उठाई है।
नहीं जानता था पहले,से इसमें बड़ी बुराई है॥४४॥
अच्छा' अब सीनेसे उतरो, तेरे सिदके (३) जाता हूँ।
ताहयात (४) ममनून (५) रहूँगा, क़सम खुदाकी खाता हूँ॥
किसी क्षत्रानी पर अब बुरी निगाह न डालूँगा;
जो तू फरमावेगी मादर! (६) उसको कभी न टालूँगा॥४५॥
कमला उतर पड़ी छातीसे बिनती यवन सुनाता है।
दुर्गा-रूप देखि कमलाका थर-थर काँपा जाता है॥
"यह माजरा किसीको मादर भूल न कभी सुनाना तू।
हो दरकार चीज़ जो तुझको, मुझसेही फरमाना तू॥४६॥

---

(१) राहेखुदापर—ईश्वरके नामपर। (२) ज़क—पराजय, हार।
(३) सिदके—निछावर होना। (४) ताहयात—जीवन भर।
(५) ममनून—कृतज्ञ। (६) मादर—माता।

फौरन हुक्म बजा लाऊँगा, देर न होने पावैगी।
भेद खोलनेसे मेरो यह नव्वाबो छिन जावैगी॥
शाहंशाह खफ़ा हैं मुझसे दुश्मन डांट लगाये हैं।
इसी वजहसे मादरे-मन् (१) ये कलमे चार सुनाये हैं॥४७॥
कपड़े, जेवर, लाख अशरफी, कमज़ा तुरत मँगाती है।
इसी जगह सब लुटा-पुटाकर, पति ले घरको जाती है॥
घरमें पहुंच भक्ति-युत हरि-पद सादर सीस नवाती है।
इसी तरह कुलको मर्यादा रखना यही मनाती है॥४८॥
धन्य धन्य! भारत क्षत्रानो! सुयश तुम्हारा गाता हूं।
फिर भारतमें वीर नारियाँ जन्में यही मनाता हूं॥
वीर नारियाँ माता बन-बन वीर पुत्र उपजावैंगी।
तब भारतकी सब विपत्तियां, दुम दबाय भग जावैंगी॥४९॥

समाप्त